जनपदीय भाषाओं का साहित्य

सम्पादक :
रमण शाण्डिल्य

साहित्य प्रकाशन
नई सड़क - मालीवाड़ा : दिल्ली—६

प्रकाशक : साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-६

सम्पादक : रमण शाण्डिल्य

आवरण शिल्पी : श्री करुणादास, दीहू (असम)

प्रथम संस्करण : १९७५ ई०

मुद्रक : अजन्ता फाइन आर्ट प्रिन्टर्स
हनुमान गली, मथुरा.

जनपदीय भाषाओं का साहित्य

मूल्य बीस रुपया मात्र

अनुक्रम

रमण शांडिल्य

सम्पादक

प्राक्कथन

जनपदीय भापाओं के नाम पर आज नाक-भौ सिकोड़ने से काम नहीं चलेगा यानी यह कह कर कि जनपदीय भापाओं के उत्थान से हिन्दी का अहित होने वाला है हम उसकी उपेक्षा नही कर सकते। लोकभापा शास्त्र के मर्मज्ञ स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व० महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, स्व० डॉ० रामनरेश त्रिपाठी एवं जीवितों में डॉ० सत्येन्द्र, पत्रकार प्रवर पं० वनारसीदास चतुर्वेदी, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि धुरीन विद्वानों ने लोकभापाओं के पक्ष में प्रवल तर्क उपस्थित कर इनका समर्थन किया है।

'सूर्य के समान तपते हुए इस सत्य' से कौन खिलवाड़ कर सकता है। अन्तरजनपदीय हिन्दी परिषद् के संयोजक वावू वृन्दावनदास, जो स्वयं लोक-भापाओं के मर्मज्ञ हैं, ने अभी-अभी अखिल भारतीय व्रज साहित्य मण्डल के १६वे अधिवेशन (भरतपुर) मे अध्यक्ष पद से वोलते हुए इस महान् सत्य को इस रूप में प्रकाशित किया है—

"व्रज भापा ही नही अपितु अन्य लोकभापाओ के क्षेत्र मे भी आज उनके साहित्य के परिष्कार की एक लहर सी चल पड़ी है। लोकभापाओं के साहित्यकार अपनी-अपनी लोकभापा के साहित्य को परिष्कृत करना चाहते है। ऐसा करने से हम उन्हें रोक नही सकते। यह धारणा निर्मूल है कि इस प्रकार के आन्दोलन से हिन्दी का अहित होगा। लोकभापाओ का सरक्षण, संवर्द्धन और उन्नयन हिन्दी के हित की वात है अहित की नही।

इस महान् देश की राष्ट्रभापा हिन्दी भी महान् है। वह एक विशाल वट वृक्ष के सदृश है और लोक भापाएँ उसकी शाखा-प्रशाखाये है। हिन्दी की सभी वोलियाँ उसके अंग-प्रत्यंग है। इन अंग-प्रत्यंगो के सुदृढ़ होने से हिन्दी स्वस्थ वनेगी।

यह धारणा भ्रान्त है कि लोक भापाओ का उन्नयन हिन्दी के हित मे वाधक होगा। लोक भापाये स्थानीय भापायें है वे कभी राष्ट्रभापा हिन्दी का विकल्प नही हो सकती। वे कितनी भी समुन्नत हो जाँय हिन्दी को अपदस्थ नही कर सकती।"

वे आगे 'जनपदीय आन्दोलन' पर विचार व्यक्त करते है - "लोक भाषाओ और हिन्दी की कडी को सुदृढ़ बनाने के लिये जनपदीय आन्दोलन एक अमोघ अस्त्र है। जनपदीय आन्दोलन हिन्दी और लोक भाषाओं में तारतम्य स्थापित करने को ही चलाया गया था। लोक भाषाओ के शब्दों, मुहावरो, कहावतों, आख्यायिकाओं, नाटिकाओ और प्रहेलिकाओ आदि से हिन्दी को पुष्ट करने का नाम ही जनपदीय आन्दोलन है।"

अब से ३३-३४ वर्ष पूर्व जिस जनपदीय कार्य का श्रीगणेश हिन्दी मे हुआ था उसकी लोकगंगा अब काफी आगे निकल आई है। एक समय था जब आज की ही तरह उस समय भी मतैक्य नही था इस जनपदीय दृष्टिकोण को लेकर विद्वानो मे। किन्तु इस महानाद को कहाँ रोका जा सका? आज तो जनपदीय भाषाओं का प्रत्येक क्षेत्र आन्दोलित है।

स्व० अग्रवाल जी अपनी कृति 'पृथिवी-पुत्र' के पृ० ६७-६८ पर लिखते हैं—"व्यास और वाल्मीकि, कालिदास और तुलसी, चरक और पाणिनि—इन सबका अध्ययन जनपदीय दृष्टिकोण से हमें फिर से प्रारम्भ करना है। किसी समय इन महासाहित्यकारों की कृतियाँ जनपदों के जीवन मे बद्धमूल थी। जिस समय वेदव्यास ने द्रौपदी की छवि का वर्णन करते हुए तीन वर्ष की श्वेत रंग वाली गौ को (सर्वश्वेतेव माहेयी वने जाता त्रिहायनी—विराट १७-११) उपमान रूप मे कल्पित किया, जिस समय वाल्मीकि ने अराजक जनपद का गीत गाया, जिस समय कालिदास ने मक्खन लेकर उपस्थित हुए ग्रामवृद्धो से राजा का स्वागत कराया (हैयगवीनमादाय घोष वृद्धानुपस्थितान्) और जब पाणिनि ने अष्टाध्यायी मे सैकडो छोटे-छोटे गाँवों और बस्तियो के नाम लिखे और उनके बहुमुखी व्यवहारो की चर्चा की, उस समय हमारे देश मे और जनपद-जीवन के बीच एक पारस्परिक सहानुभूति का समझौता था। दुर्भाग्य से रस-प्रवाह के वे तन्तु टूट गये। हमारे साहित्य का क्षेत्र भी संकुचित हो गया और हम अपनी जनता के अधिकाश भाग के सामने परदेशी की भाँति अजनबी बन बैठे। आज जब चेतना के फगुनहटे ने राष्ट्रीय कल्पवृक्ष को झकझोर कर पुराने विचार रूपी पत्तों को धराशायी कर दिया है सर्वत्र नये विचार, नये मनोभाव और नयी सहानुभूति के पल्लव फूट रहे है। गाँव और नगर दोनों एक ही साधारण जीवन की परिधि मे सहज ततुओ से एक-दूसरे के साथ गुँथ कर फिर एक ज्ञान की भूमि में अपना पोषण प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे की ओर बढ़ रहे है, यही वर्तमान साहित्यिक प्रगति की सबसे अधिक स्पृहणीय विशेषता और आशा है। हम गाँवो के गीतो मे काव्य-सुधा

का पान करने लगे हैं, जनपदों की बोलियाँ हमारे लिए वैज्ञानिक अध्ययन की सामग्री का उपहार लिए खड़ी हैं। कहीं लुधियानी के उच्चारणों का अध्ययन हो रहा है, कहीं हरमुकुट पर्वत पर बैठकर भाषा-विज्ञान के वेत्ता सिन्धु नद की उपत्यका के एक छोटे गाँव की बोली का अध्ययन कर रहे हैं, कहीं दरद देश की प्राचीन पिशाच वर्गीय भाषा की छान-बीन हो रही है, कहीं प्राचीन उपरिगियेन (हिन्दूकुश) पर्वत की तलहटी में बसने वाले छोटे-छोटे कबीलों की मुंजानी और इश्काश्मी बोलियों का व्याकरण बन रहा है।

...... इस कार्य का अधिकांश सूत्रपात और मार्ग-प्रदर्शन तो विदेशी विद्वानों के द्वारा हुआ है और हो रहा है। हम हिन्दी के अनुचर तो अभी बड़े सतर्क होकर फूँक-फूँक कर पैर रख रहे हैं।

प्रचण्ड शक्तिशालिनी हिन्दी भाषा की विभूति का विशाल मन्दिर जनपदी भाषाओं को उजाड़ कर नहीं बन सकता, वरन् इस पंचायतनी प्रासाद की दृढ़ जगती में सभी भाषाओं और बोलियों के सुगढ़ प्रस्तरों का स्वागत करना होगा।"

पंडित श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी के नाम अपने २३-१-४४ के पत्र में पूज्यपाद अग्रवाल जी ने लिखा था—" 'जनपद' शब्द को लेकर कुछ खींचा-तानी इधर हिन्दी में हुई है। मुझे इस शब्द से बिलकुल भय नहीं लगता। प्राचीन ग्रन्थों में जो अनेक जनपदों के नाम हैं, वे सब देखे जाँय तो कुछ जनपद जिलों के बराबर होंगे, कुछ आजकल की कमिश्नरी जैसे। महाजनपद कुछ-कुछ प्रान्तों का रूप धारण किये हुए हैं। राजनैतिक पहलू और पार्थक्य के भाव की ओर हमें कुछ नहीं कहना है। हमें तो जनपदो मे बसने वाली जनता की भाषा और संस्कृति का अध्ययन करके हिन्दी भाषा के भण्डार को भरना है, और उस जनता को आत्म-स्मृति करानी है।...... ग्रामों मे बसने वाली जनता की दृष्टि से साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्य आरम्भ होना चाहिये—शेष विवाद स्वयं शांत हो जायंगे।... " आइए, नाना भावों की उलझनों मे बचकर वास्तविक कार्य मे लगें।"

तो उपर्युक्त उद्धरणो की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि बहुतेरे विद्वान् अब भी इस भ्रान्ति को पालने मे सहायक हो रहे हैं कि जनपदीय भाषाओ के उत्थान से हिन्दी का अहित होने वाला है। डॉ० अग्रवाल जैसे महान् हिन्दी-सेवी का उद्घोष—'हमारे भावी जीवन के पचास वर्षों का दिक्तन्त्र जनपदीय कार्य मे समवेत है' आज अक्षरशः सत्य निकला है।

यह जो पुस्तक है बिहार की जनपदीय भाषाओं की उपलब्धियो पर प्रकाश डालने की दृष्टि से ही सम्पादित की गई है। प्रस्तुत पुस्तक में छः जनपदीय भाषाओ—अंगिका, नागपुरी, वज्जिका, भोजपुरी, मगही और मैथिली—पर लेख है। प्रत्येक जनभाषाओं पर ५-५ लेख देने का विचार था किन्तु वर्तमान लेखो की उत्कृष्टता देख कर संख्या का विचार न कर गुण को ही ध्यान में रखा है।

इसका दूसरा खंड बिहार की अन्य सभी जनभाषाओ पर रहेगा।

अन्त में अथर्ववेद की इन्ही पंक्तियों के साथ—

'जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं;
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।' (४५)

—रमण शाण्डिल्य

बाबू वृन्दावनदासजी

भारत की जनपदीय भाषा-संस्कृति के अद्वितीय प्रतिष्ठाता, संरक्षक और उन्नायक आचार्य बाबू वृन्दावनदास जी के करकमलों में समर्पित

रमण शांडिल्य

भूमिका

भारतमाता ग्रामवासिनी है। भारतीय ग्रामों में लोकभाषाएँ प्रचलित हैं। लोकभाषाएं जनता जनार्दन की मातृभाषाएँ हैं। जिस प्रकार माता से पुत्र विलग नहीं हो सकता उसी प्रकार जनता से उसकी मातृभाषा को पृथक् नहीं किया जा सकता। मातृभाषाएँ क्षेत्रीय भाषाएँ है, उनका आंचलिक स्वरूप उनको एक सीमित परिधि में ही स्थिर रखता है। लोकभाषाएँ लोक जीवन से अविच्छिन्न हैं, अविभाज्य हैं। लोक जीवन से उनके पृथक्करण अथवा निष्कासन की बात कल्पनातीत है। हम राष्ट्रोन्नति एवं व्यापक एकता की दुहाई देकर भी लोकभाषाओं को अपदस्थ नहीं कर सकते। लोक जीवन से अनिवार्यतः सम्बद्ध होने के कारण उनके उन्मूलन अथवा उनकी अपदस्थता के सभी प्रयास सर्वथा विफल होंगे। जिस प्रकार शिशु जन्म लेते ही माता का दूध पीना जान लेता है उसी प्रकार मातृभाषा के बीज भी उसके मस्तिष्क में जन्म लेते ही अंकुरित हो जाते हैं। लोकभाषाओं की लोक जीवन के साथ इस अनिवार्य स्थिति के परिप्रेक्ष्य में हमारे हिन्दी-प्रेमी वे बन्धुगण जो लोकभाषाओं के विरोध में ही हिन्दी का हित देखते हैं भारी भूल करते हैं। लोकभाषाओं का विरोध करके वे हिन्दी के हितों पर कुठाराघात ही करते हैं। वे लोक-भाषाओं के कार्यकर्ताओं में हिन्दी के प्रति दुर्भावना ही उत्पन्न करते हैं। लोकभाषाओं का विरोध चट्टान से टक्कर मारने के अतिरिक्त कुछ भी नही है। जिस कार्य से कुछ लाभ ही नही है उसको करके हम अपने प्रति सहानुभूति भी खो बैठे यह कोई बुद्धिमानी की बात नही है।

लेखक दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे जो अपनी मातृभाषा में ही लिखते हैं और दूसरे वे जो हिन्दी मे। कुछ लेखक ऐसे होते हैं जो अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा दोनो में ही लेखन अथवा साहित्य-सृजन की क्षमता रखते हैं। हम किसी को किसी भाषा मे लिखने से रोक नहीं सकते। आज लोकभाषाओं में साहित्यिक परिष्कार की एक लहर सी चल पड़ी है। लोक-भाषाओं के लेखक अपनी-अपनी लोकभाषाओं का साहित्यिक उन्नयन करना चाहते हैं। जनतन्त्र में इस प्रकार के कार्य पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता।

हिन्दी के अनेक धुरन्धर विद्वान् असंदिग्ध रूप से यह मत प्रकट कर चुके हैं कि लोकभाषाओं का संरक्षण, संवर्द्धन और उन्नयन हिन्दी के अहित

में कदापि नहीं है। हिन्दी की लोकभाषाओ से कोई प्रतिद्वन्दिता नही है। यदि लोकभाषाएँ अपने-अपने क्षेत्र मे फलती-फूलती है तो इससे हिन्दी को तनिक भी क्षति नही पहुँचती है।

हिन्दी इस देश की राष्ट्रभाषा है, वह प्रत्येक भारतवासी की भाषा है। हिन्दी जिस प्रकार उत्तर प्रदेश, विहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश की भाषा है उसी प्रकार आंध्र, तमिलनाड और केरल की भी। भारतीय भाषाओ के विभिन्न क्षेत्रो मे लोग अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं का ही व्यवहार अधिक करते है परन्तु जब विभिन्न भाषा-भाषियों का आपस मे एक-दूसरे से वार्तालाप का अवसर आता है तब तो हिन्दी-व्यवहार के अतिरिक्त कोई विकल्प ही नही है। बम्बई नगर में वहु भाषा-भाषियो की बहुतायत है। गुजराती लोग आपस मे गुजराती का, महाराष्ट्रियन मराठी का, दक्षिण के लोग दक्षिणी भाषाओं का प्रयोग करते है परन्तु जब गुजराती महाराष्ट्रियन से अथवा तमिलनाड निवासी से अर्थात् विभिन्न भाषा-भाषीजन जब एक-दूसरे से बात करते है तो वार्तालाप का माध्यम केवल हिन्दी ही होता है। इस प्रकार भारतीय भाषाओ और लोकभाषाओं के साथ हिन्दी की अनिवार्यता स्पष्ट एव स्वयं सिद्ध है।

यह तो सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट है कि प्रत्येक भारतवासी चाहे वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित दो भाषाएँ जन्म से ही जानता है। एक तो अपनी मातृभाषा के रूप मे कोई भी भारतीय भाषा अथवा लोकभाषा और दूसरी हिन्दी। यह कहना भारी भूल है कि यदि लोकभाषा-भाषियों की पृथक्-पृथक् गणना की जायगी तो हिन्दी के लिए रह ही क्या जायगा। लोकभाषाओं के वोलने वालो की गणना से हिन्दी बोलने वालो की गणना का कोई सम्बन्ध नही है। प्रत्येक लोकभाषा के बोलने वालो की सख्या सीमित होती है जबकि हिन्दी भारत के ९५ प्रतिशत से भी अधिक निवासी वोल और समझ सकते है। वास्तविकता के आधार पर हमे यह मानकर चलना है कि प्रत्येक भारत-वासी हिन्दी जानता है। हिन्दी वोलने वालों की गणना में केवल वे ही भारत-वासी पृथक् किये जा सकते है जो हिन्दी कतई नही समझ या वोल सकते हैं।

जव एक तरह से यह स्पष्ट है कि लोकभाषाओ के उन्नयन से हिन्दी को कोई वाधा नही पहुँचती तो फिर निराधार आशंकाओं से ग्रस्त होकर हिन्दी-सेवा के कार्य मे हतोत्साह हो जाना उचित नही है। लोकभाषाओ के उन्नयन से ग्रामवासिनी जनता का जीवन-स्तर ऊँचा होगा, उनकी चिन्तन शक्ति वढ़ेगी, उनका मनोवल वढ़ेगा। भारत के सर्वाङ्गीण अभ्युत्थान के लिए हमे अपनी लोकभाषाओं को पुष्ट वनाना होगा।

ग्रामवासिनी जनता का पिछड़ापन राष्ट्रोन्नति के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध है। हमें ग्रामवासियों को उनकी लोकभाषा में ही शिक्षित करके ऊँचा उठाना है। जब भिन्न-भिन्न अगणित घटक शिक्षित, स्वस्थ एवं पुष्ट होकर आगे बढ़ेंगे तो समूचा देश एक सबल एवं सशक्त राष्ट्र के रूप में उदित होगा। जनपदीय आन्दोलन का यही लक्ष्य है।

इस देश में अगणित जनपदीय भाषाएँ हैं। अनेक जनपदीय भाषाएँ उपेक्षित पड़ी हैं। इन जनपदीय भाषाओं को उनका न्याय मिलना चाहिये। इनके साहित्यिक विकास का हमें स्वागत करना चाहिये। सभी जनपदीय भाषाएँ हिन्दी की ही शाखा-प्रशाखाएँ हैं। जितना-जितना इनका साहित्यिक परिष्कार होगा उतने-उतने ही यह हिन्दी के निकट आवेंगी, कारण इन भाषाओं को सौष्ठव तो हिन्दी से ही प्राप्त होगा। समय की सबसे बड़ी माँग यह है कि इन भाषाओं के हिन्दी-कोष बनें। इन कोषों के समुच्चय से हिन्दी का एक ऐसा महाकोष बनेगा जिसकी समता विश्व की किसी भी समृद्ध से समृद्ध भाषा का कोश न कर सकेगा।

हिन्दी-सेवियों को जनपदीय भाषाओं में रुचि लेनी चाहिये। जनपदीय भाषाओं के माध्यम से हमें हिन्दी की शब्द सम्पदा और अभिव्यक्ति सामर्थ्य को बढ़ाना है। स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने तो इस दिशा में हमारा विपुल मार्गदर्शन किया था। वे जनपदीय आन्दोलन के जनक थे। उन्होने स्वयं ग्रामो मे भ्रमण करके अनेक शब्दों का सन्धान किया और उन शब्दो की व्याख्याएँ प्रस्तुत की। उन्होंने उन शब्दों को अपनी भाषा में स्वयं प्रयुक्त भी किया। जो कुछ उन्होंने कहा उसे व्यावहारिक रूप से करके भी दिखा दिया।

अब हम कतिपय उन साहित्य महारथियों के वाक्यो को उद्‌धृत करना चाहते हैं जिन्होने जनपदीय भाषाओ के प्रति उदारता प्रदर्शित करने का आह्वान किया है। सर्व प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति डा० अमरनाथ झा का मत ही लीजिये। वे कहते हैं – "जनपदीय भाषाओं के प्रति अनुदार होने का अर्थ है हिन्दी की अवनति। राष्ट्रभाषा तो हमारी हिन्दी ही है। हिन्दी में एक बगाली पजाबी की बात समझ सकता है। एक पंजाबी अथवा गुजराती को किसी दूसरे प्रान्त के निवासी से बात-चीत करने के लिए हिन्दी का ही आश्रय लेना पड़ेगा। पर साथ ही साथ एक जनपदीय भाषा-भाषी को उसकी भाषा मे ही बोलने-चालने मे सुविधा होगी। आरा में मुझे अभिनन्दन-पत्र देते समय कई कविताएँ पढ़ी गई। एक व्रजवासी के लिये व्रजभाषा ही सबसे सरल और मीठी भाषा है। यही बात दूसरी जनपदीय

भाषाओ के लिए भी लागू है। किसी भी भाषा के बारे में तुलनात्मक रूप से अच्छी या बुरी कहने का अधिकार किसी को नही। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति होने के कारण मैने कितनी ही जगह भ्रमण किया। मै बनारस, नागपुर, ओरछा, आरा, जलधर आदि स्थानो पर गया था। सभी जगह मेरा यही सदेश था कि आप लोग अपनी-अपनी जनपदीय भाषाओ की उन्नति करिये। इसी मे हिन्दी का कल्याण है।।"

जनपदीय भाषाओ के प्रति हिन्दी के कार्यकर्ताओं को मधुर सम्बन्ध स्थापित करने मे कोई संकोच कदापि न होना चाहिये। डॉ० अमरनाथ झा ने बडी तर्कसगत शैली मे जनपदीय भाषाओ की उन्नति हेतु हिन्दी के कार्यकर्ताओं को सम्बोधित किया है।

अब लीजिये साहित्य और सस्कृति के क्षेत्र मे युगपुरुष कहे जाने वाले कवीन्द्र रवीन्द्र का स्पष्ट मत जिसके आगे किसी शका की सम्भावना ही नही रहती। "आधुनिक भारत की संस्कृति एक शतदल कमल के साथ उपमित की जा सकती है जिसका एक-एक दल प्रान्तिक भाषा और उसकी साहित्य संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा की हानि होगी। हम चाहते है भारत की सब प्रान्तिक बोलियाँ जिनमे साहित्य-सृष्टि हुई है अपने घर मे रानी बनकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि होकर हिन्दी विराजती रहे।"

राहुल जी तो यहाँ तक कह गये है कि—"जनपदीय बोलियाँ सजीव भाषाएँ है, उनके बोलने वाले कर्मठ किसान मजदूर है, आज भी उनमे लोक साहित्य की रचना हो रही है। अतः जब हम इस असख्य जनता को शिक्षित बनाने की बात करे तब हमे यह भी सोच-समझ लेना चाहिये कि इन जनपदीय भाषाओ का विकास करना है ताकि वे भविष्य मे जनपदीय पार्लियामैण्टो मे बोली जाँय, कचहरियों मे लिखी जाँय, प्राइमरी पाठशालाओ से लेकर विश्वविद्यालयों तक शिक्षा का माध्यम बने उनमे पत्र-पत्रिकाएँ निकले, फिल्म तैयार हो और उनके अपने रेडिओ स्टेशन हो।"

आशय यह है कि लोकभाषाओं को हौआ समझ कर उनके उन्नयन से अथवा उनसे उत्पन्न जातीय चेतना से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। उनकी हिन्दी से किसी प्रकार की प्रतिद्वन्दिता नही है अपितु यदि जातियाँ जनपदीय भाषाओ मे शिक्षित होकर उठ खड़ी होंगी तो समग्र राष्ट्र हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप मे शिरोधार्य करके आगे बढ़ेगा। राष्ट्रभाषा को समग्र रूप

से अपनाने की राष्ट्रीय चेतना तो तभी जाग्रत होगी जब सम्पूर्ण राष्ट्र चेतना सम्पन्न होकर प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। एक शिक्षित, समुन्नत राष्ट्र के अस्तित्व में हमें सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान दृष्टिगोचर होता है। इसलिये यदि राहुल जी सदृश कुछ मनीषी क्षेत्रीय आधारों पर बँटे जन-समूह को उनकी विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षित करने की बात कहते हैं तो इसमें हिन्दी के हित में कोई बाधा उपस्थित होने की सम्भावना नहीं है। **(अन्तर्जनपदीय परिषद् के हरिद्वार अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण से उद्धृत)**

पुस्तक में अनेक निबन्ध संगृहीत हैं। सम्पादक महोदय श्री रमण शाण्डिल्य ने बड़ी उत्कृष्ट सामग्री का चयन किया है। प्रत्येक लोकभाषा पर लिखा हुआ लेख शोधपरक एवं तथ्यों से परिपूर्ण है। प्रत्येक लेख लोकभाषा के विगत इतिहास और उसकी वर्तमान स्थिति पर पुष्कल प्रकाश डालता है। पुस्तक में अंगिका पर चार लेख हैं जिनमें दो प्रारम्भ में और दो पुस्तक के अन्तिम भाग में उपलब्ध हैं। "अंग जनपद और अंगिका भाषा साहित्य" लेख में पं० परमानन्द पाण्डेय ने अंग जनपद के गौरवपूर्ण इतिहास को पौराणिक एवं बौद्ध साक्ष्य के आधार पर बड़े सुन्दर ढंग मे प्रस्तुत किया है। राजा बलि की रानी सुदेष्णा के महर्षि दीर्घतमा से पाँच पुत्रों की उत्पत्ति हुई जिनमें अंग ज्येष्ठतम थे। महाराज अंग को ही अंग देश का संस्थापक माना गया है। इन्होंने एक बार समस्त विश्व की विजय करके अश्वमेध महायज्ञ रचाया था। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार मदन दहन भी इसी क्षेत्र में हुआ था और इसी कारण इस देश का नाम अनंग अथवा अंग पड़ गया। अंग देश विद्या का भी केन्द्र रहा है। यहाँ पर विक्रम विश्वविद्यालय नाम का एक महान् शिक्षा केन्द्र था जिसने अनेक बौद्ध धर्म प्रचारको और हिन्दी के ८४ सिद्धों मे से अधिकाश को अपनी देन के रूप में देश को दिया।

ऐसे गौरवपूर्ण इतिहास से युक्त अगिका यदि देश की एक सशक्त एव समृद्ध लोकभाषा हो तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? अन्य लोकभाषाओं की भाँति इसका मूल्यवान् साहित्य भी अप्रकाशित पड़ा है। अब अंगिका के क्षेत्र मे पुनर्जागरण के चिह्न दिखाई दे रहे हैं और अनेक अंगिका-सेवी अपनी लोक-भाषा का प्रचार प्रसार और साहित्यिक परिष्कार करने को उठ खड़े हुए हैं। संप्रति श्री नरेश पाण्डेय चकोर के सम्पादन मे अंग माधुरी (मासिक) और श्री परमानन्द पाण्डेय के सम्पादकत्व में त्रैमासिक अगिका का प्रकाशन हो रहा है। श्री रमण शांडिल्य ने अपनी टिप्पणी में लिखा है कि इन दिनों बड़ी तेजी

से अंगिका की कृतियों का प्रकाशन होने लगा है। अकेले शेखर प्रकाशन ने ही अद्यतन दस पुस्तकों का प्रकाशन कर दिया है। यह बड़े सन्तोष की बात है अंगिका के विकास में हिन्दी के धुरन्धर विद्वान् स्वर्गीय श्री लक्ष्मीनारायण जी सुधांशु और राष्ट्र-कवि स्व० रामधारीसिंह दिनकर का सहयोग एवं आशीर्वाद प्राप्त रहा था।

श्री नरेश पाण्डेय चकोर ने अपने लेख 'अंगिका के साहित्यकार' में लिखा है कि बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तर' में अंग-लिपि का लिपियों में चौथे स्थान पर उल्लेख मिलता है। अंगिका में बिहुला लोकगाथा काव्य तो अंगिका का रस स्रोत ही है और अत्यन्त लोकप्रिय है। बिहुला काव्य की भाँति और भी बहुत-सा काव्य कागज पर तो नहीं अंगिका भाषियों के कण्ठ में विराजमान है और अंगिका के लोक साहित्य की समृद्धि का मौन साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा है। चकोर जी के लेख से अंगिका के क्षेत्र की समस्त साहित्यिक गतिविधियों का सम्यक् बोध हो जाता है। वज्जिका लोकगीतों में चारित्रिक आदर्श शीर्षक लेख श्रीमती विनोदिनी शर्मा लिखित है। यह वज्जिका के लोकगीतों से सम्बन्धित है। इसमें लोकगीतों के वस्तुतत्व तथा रसतत्व का विश्लेषण बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वज्जिका काव्य की प्रेषणीयता पर निर्मल मिलिन्द ने अपने लेख मे सोदाहरण प्रकाश डाला है। श्रीमिलिन्द ने वज्जिका के क्षेत्र तथा उसमे प्रचलित पत्र-पत्रिकाओं का भी सविस्तार उल्लेख किया है जो पठनीय है।

श्री रमण शांडिल्य लिखित 'वज्जिका के रचनाकार' शीर्षक लेख मे उन सभी साहित्यकारो, कवियो, लेखकों का नामोल्लेख है जिनकी वज्जिका के लिये जीवन मे कुछ न कुछ देन रही है। लेखको के जीवन का संक्षिप्त परिचय उनके कृतित्व के नमूनों सहित प्रस्तुत किया गया है। 'हिन्दी और उसकी बोलियाँ' शीर्षक लेख मे डा० सियाराम तिवारी ने विदेशी विद्वानों ओर खास तौर से ग्रियर्सन महोदय की मान्यताओ का खण्डन करते हुए बड़ी तर्कसंगत शैली मे सिद्ध कर दिया है कि लोकभाषाएँ हिन्दी की बोलियाँ ही है अन्य कुछ नही। उन्होंने बोलियो के असंख्य शब्दो से हिन्दी के भण्डार को समृद्ध करने की बात भी कही है। बोलियो का व्याकरण उनका निजी है उसको हिन्दी में समाहित करने की कोई आवश्यकता नही। किसी भी बोली के व्याकरण मे एक सौंदर्य है; एक मिठास है जो उसी के साथ फबता है।

डॉ० स्वर्णकिरण ने अपने लेख में भोजपुरी भाषा और उसके साहित्य पर इतने समग्र रूप में जानकारी प्रस्तुत की है कि लेख शोधार्थी के लिए भी

परम उपयोगी बन गया है। डॉ० स्वर्णकिरण की स्थापना है कि भोजपुरी एक स्वतन्त्र, शिष्ट तथा मधुर भाषा है। हमारी भी यही धारणा है परन्तु यदि डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या या रासविहारी शर्मा या रामनरेश त्रिपाठी उसे हिन्दी का रूप बताते हैं तो इससे डॉ० स्वर्णकिरण को बजाय असंतुष्ट होने के प्रसन्न होना चाहिये। यदि भोजपुरी हिंदी के अधिक सन्निकट है तो यह उसका विशिष्ट गुण है। संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है और हिन्दी उसके सर्वाधिक सन्निकट है तो यह हिन्दी की एक विशेष स्थिति ही नहीं उसकी उपलब्धि भी है।

भोजपुरी की साहित्य संपदा शीर्षक श्री गणेश चौबे लिखित निबन्ध उल्लेखनीय है। चौबे जी ने भोजपुरी की वास्तविक सम्पदा का अच्छा चित्रण किया है। श्री त्रिभुवन ओझा लिखित मगही भाषा और उसका साहित्य शीर्षक लेख मगही की पूर्वांचल की बोलियों में सर्वाधिक प्राचीनता स्थापित करता है। वास्तव में मगही की प्राचीन साहित्यिक निधि पुष्ट है भले ही उसका आधुनिक साहित्य समृद्ध न हो। डॉ० बेचन लिखित आधुनिक मैथिली भाषा और साहित्य मैथिली के साहित्य और उसकी समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डालता है। श्री रमण शांडिल्य लिखित 'बिहार की जनपदीय भाषाएँ और हिन्दी' में लेखक ने बिहार की अनेक भाषाओं के साहित्य और उनकी समस्याओं का दिग्दर्शन कराया है। लेख से रमण जी के लोकभाषाओं सम्बन्धी प्रगाढ़ अध्ययन का पता चलता है। भोजपुरी व्याकरण और बोली कोश पर श्री हरिश्चन्द्र प्रसाद का लेख विचारोद्दीपक है।

जनपदीय भाषाओं के साहित्य पर प्रस्तुत पुस्तक की रचना कर श्री रमण शांडिल्य जी बधाई के पात्र बन गये हैं। हमें आशा करनी चाहिये कि प्रस्तुत पुस्तक जनपदीय भाषाओं के साहित्य की जानकारी के लिए मूल्यवान् सिद्ध होगी। श्री रमण शांडिल्य लोकसाहित्य के बहुश्रुत विद्वान् हैं। हमारा विश्वास है कि पूर्वांचल की शेष भाषाओं पर भी वे शीघ्र ही एक पुस्तक साहित्यिक-जगत के समक्ष प्रस्तुत कर देंगे। शुभास्तु ते पन्थानः।

—वृन्दावनदास
अध्यक्ष,
ब्रज साहित्य मण्डल एवं
उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

मथुरा
१-६-१९७५

अंग जनपद और अंगिका भाषा-साहित्य

—परमानन्द पाण्डेय

अङ्गिका प्राचीन अङ्ग-जनपद अर्थात् वर्तमान भागलपुर प्रमण्डल (भागलपुर, मुंगेर, पूर्णिया, सन्थाल परगना और सहरसा जिले) में बोली जाने वाली भाषा है। यह मालदह जिले के कुछ भागों मे भी बोली जाती है। सब मिलाकर इसके बोलने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ होगी।

इस अङ्ग-जनपद का अतीत बड़ा ही गौरवपूर्ण रहा है। प्राचीनकाल में अङ्ग शक्तिशाली राज्य था। राजा सगर के समकालीन बलि की पत्नी सुदेष्णा से महर्षि दीर्घतमा के अंग, बंग, कलिंग, सुह्म और पुण्ड्र नामक पाँच पुत्र हुए। इन पाँचों पुत्रों ने अपने-अपने नाम पर अलग-अलग राज्य बसाये। इनमें सबसे प्रतापी अङ्ग हुए, जिन्होंने अपने नाम पर अङ्ग देश बसाया। राजा अङ्ग ने एक बार समस्त पृथ्वी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ किया था। महर्षि दीर्घतमा ने शकुन्तला-पुत्र भरत का राज्याभिषेक किया था, जिसके नाम पर यह देश भारत कहलाता है। राजा अङ्ग के वंशज राजा लोमपाद और अयोध्या के राजा दशरथ में बड़ी मैत्री थी। लोमपाद ने दशरथ-पुत्री शान्ता को पाला-पोसा और उसका विवाह ऋष्यशृंग से कराया था। इन्हीं ऋष्यशृंग ने दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। यहीं के राजा अधिरथ ने गङ्गा में बहते हुए कुन्ती-पुत्र कर्ण का पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। यही कर्ण बाद में पराक्रमी अङ्ग नरेश और महाभारत का प्रसिद्ध योद्धा हुआ। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार भगवान शङ्कर की कोपाग्नि से जलते हुए कामदेव का अङ्ग इसी क्षेत्र मे भस्मीभूत हुआ था, इसी कारण यह अङ्गदेश कहलाया।

राजनीतिक उत्कर्ष के साथ-साथ प्राचीन काल से ही अङ्ग देश विद्या का भी केन्द्र रहा है। महर्षि दीर्घतमा की शूद्रा स्त्री कुक्षिवती के पुत्र कुक्षिवन्तो ने ऋग्वेद के अनेक सूक्त निर्मित किये। महर्षि अष्टावक्र, लंकावतार सूत्र के रचयिता जिन, हस्त्यायुर्वेद के प्रणेता पालकाव्यमुनि, ऋष्यशृंग, अङ्गिरा, वासुपूज्य, मौद्गल्य और थेरगाथा के लेखक सोम अङ्गदेश के ही रत्न थे। यहाँ विक्रमशिला नामक जगत्प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था, यहाँ के आचार्य रत्नाकर, शान्तिरक्षित, दीपंकर, श्रीज्ञान, पद्मसम्भव आदि प्रकाण्ड विद्वानों ने विदेशों में बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार किया था। हिन्दी के ८४ सिद्धों में से अधिकांश इसी विक्रमशिला विश्वविद्यालय मे रहते थे। आज भी वटेश्वर-स्थान

जहाँ प्राचीन विक्रमशिला-विश्वविद्यालय था, मे एक चट्टान पर उत्कीर्ण चित्र 'चौरासी मुनि' के नाम से पूजित है। इस प्रकार, अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक, रामायण, महाभारत, विभिन्न पुराण तथा बौद्ध और जैन-साहित्य मे अङ्ग के महिमामय वर्णन मिलते है।

ऐसे समृद्ध और शक्तिशाली राज्य की अपनी एक भाषा और लिपि भी थी। वहाँ की भाषा आगी और लिपि अङ्गलिपि कहलाती थी। प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थ ललित विस्तर में उल्लिखित ६४ लिपियो मे चतुर्थ स्थान अङ्गलिपि का है। पूर्व-विदेह लिपि का स्थान ४०वाँ है, अनुमानतः इसी का विकसित रूप मिथिलाक्षर है। अभी तक अङ्गलिपि पर अनुसधान कार्य नही हुआ है। किन्तु, मुझे अङ्गक्षेत्र मे दो शिलालेख मिले है, जिन्हें मै अङ्गलिपि का नमूना मानता हूँ। एक लेख मन्दार (बौंसी) की एक छोटी सी गुफा की छत में उत्कीर्ण है। मन्दार पहाडी भागलपुर से करीब २५ मील दक्षिण मे है। भागलपुर और मन्दार के बीच हिल ब्राच रेल भी चलती है।' दूसरा लेख भागलपुर जिले मे ही तारापुर थाने के निकट चुटिया-बेलारी पहाडी पर उत्कीर्ण है। यह लेख दो पंक्तियों में है और अक्षरों का आकार लगभग एक फुट का है। उक्त दोनों पहाडियाँ अत्यन्त प्राचीन है। मन्दार पौराणिक समुन्द्र-मन्थन की कथा से सम्वद्ध है। पुराणों के अनुमार समुद्र-मन्थन में इसी मन्दार से मथानी का और अहिराज वासुकि से रज्जु का काम लिया गया था। आज भी पहाड़ी के चारों ओर चिह्न है, जिसे लोग वासुकि-रूपी रज्जु का चिह्न कहते है। सभवतः इसीलिए इस स्थान को बौंसी और पहाडी को 'बौंसी पहाड़' भी कहा जाता है। यही से कुछ दूर 'वासुकिनाथ' का प्रसिद्ध तीर्थस्थान भी है,। चुटिया-वेलारी से एक किवदन्ती जुडी हुई है कि यहाँ महाबली भीम ने हिडम्ब-वध किया था। एक चट्टान पर लाल धब्बे भी है, जिन्हे लोग हिडम्ब के रक्त चिह्न कहते हैं। इनके अतिरिक्त पता लगा है कि शाहकुण्ड मे भी कुछ प्राचीन शिलालेख प्राप्त हुए है। अङ्गलिपि पर आगे अनुसन्धान की आवश्यकता है। अङ्गलिपि के उल्लेख और अस्तित्व से ही प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल मे आगी, अंगिका या अंगभाषा एक समृद्ध भाषा थी। तभी तो इसकी अपनी लिपि भी थी। भरतनाट्यशास्त्र मे भारतीय भाषाओं की सात श्रेणियो मे एक 'प्राच्या' भी है।[१] पाणिनी की अष्टाध्यायी की काशिकावृत्ति के व्याख्या-

---

१. मागध्यवन्तिकाप्राच्या शूरसेन्यर्द्धमागधो ।
वाह्लीका दक्षिणात्या च सप्तभाषाः प्रकीर्त्तिताः ॥

—भरतनाट्यम्, १७।४८

कार वामन और जयादित्य ने पांचाली, वैदेही, आंगी, वांगी और मागधी को प्राच्या के अन्तर्गत माना है। भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में अष्टाध्यायी के उक्त सूत्र की व्याख्या 'पांचाली, वैदर्भी, आंगी एते प्राच्या:'[1] कहकर की है उसी वांगी का आधुनिक रूप बँगला है। और आंगी आज अंगिका या अंग भाषा के रूप में विकसित है। डॉ० ग्रियर्सन ने इसे 'छीका छीकी' कहा था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसको 'अंगिका' नाम दिया और यही नाम प्रचलित हो गया है।

अंगिका प्राचीन साहित्य अभी उपलब्ध नहीं है; अतः इसका प्राचीन रूप भी बताना कठिन है। हिन्दी के चौरासी सिद्धों में से शवरपा, सरहपा, चर्मटीपा, धम्मपा, चम्पकपा, चेलुकपा, जयानन्तपा, निर्गुणपा, लुचिकपा, पुतुलिपा—जैसे सिद्धो के साहित्य मे अङ्गिका का उत्स दृष्टिगोचर होता है।

बुकानन के पूर्णया-रिपोर्ट के अनुसार १४वीं शताब्दी में मुंगेर निवासी भृगराम मिश्र ने रास-विहार, दानलीला और सुदामा चरित नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया, जो बहुत ही लोकप्रिय हुए। रासविहार की भाषा के सम्बन्ध में बुकानन ने स्पष्ट कहा कि यह मैथिली नही है, हिन्दी होने का भी उल्लेख नही है। इससे प्रमाणित है कि रासविहार की भाषा अंगिका है। यह ग्रन्थ अभी प्राप्य नही हो सका है। इसके अतिरिक्त सोम कवि, अचल कवि, बनवारी मिश्र, गोपी महाराज, मधुसूदन, श्यामसुन्दर आदि अनेक कवियों की रचनाओ में अङ्गिका का अंग सुरक्षित है। १७वी सदी मे रचित अङ्गिका का गाथाकाव्य 'सती बिहुला' अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। अब तक विभिन्न स्थानो से इसके पचासों संस्करण प्रकाशित हुए। सती बिहुला की भाषा अङ्गिका है। किन्तु चूँकि अङ्गिका-क्षेत्र से बाहर इसे प्रकाशकों ने धार्मिक उद्देश्यों से प्रकाशित कराया, इसलिए इसकी भाषा मौलिक नही रह पाई है। किन्तु, विकृतियों के बावजूद इसमे अङ्गिका का स्वरूप अक्षुण्ण है। 'सती बिहुला' की कई हस्त-लिखित प्रतियो का पता लगा है। ये प्रतियाँ उपलब्ध होने पर इसके पाठालो-चित सस्करण के प्रकाशन का प्रयास किया जायगा।

इसके अतिरिक्त अङ्गिका मे लोकगाथाओ, लोकगीतो तथा लोककथाओं का समृद्ध भण्डार है।

१८वी सदी के मध्य मे फादर अण्टोनियो ने 'गोस्पेल एण्ड सेक्ट्स' का अङ्गिका अनुवाद मुंगेर से प्रकाशित कराया। जॉन क्रियश्चिन ने भी न्यू

1. अष्टाध्यायी, अ० ४, पाद ५, सूत्र १७८।

टेम्टामेण्ट के कुछ अंशों का अङ्गिका-अनुवाद कराया। उपर्युक्त अनुवाद अब भी ब्रिटिश म्यूजियम-पुस्तकालय में प्राप्य है। स्पष्ट है कि एक विस्तृत क्षेत्र की जनभाषा होने के कारण ही पादरी साहब ने अङ्गिका को धर्म-प्रचार का माध्यम बनाया। आधुनिक काल में देवघर के प० भवप्रीतानन्दजी ने अंगिका में अनेक ललित पदों की रचना की। इनके राधाकृष्ण-प्रेम-विषयक झूमर अंगिका-क्षेत्र में बड़े लोकप्रिय हुए है। अभी इस क्षेत्र के अनेक लेखक और कवि अंगिका मे उच्च कोटि का साहित्य दे रहे है, किन्तु प्रकाशन की सुविधा नहीं होने के कारण इनकी रचनाएँ यो ही पड़ी हुई है।

अंगिका के इतिहास मे अंगभाषा-परिषद् के प्रथम प्रधानमन्त्री स्व० गदाधर प्र० अम्बष्ट का नाम अमर रहेगा। बिहारी-लेखकों मे प्रथम उन्होने ही अपनी 'बिहार की भाषा और बोलियाँ' नामक पुस्तक मे अंगिका का सम्यक् उल्लेख किया। स्व० अम्बष्ठ और श्री अयोध्याप्रसाद झा जी ने बाल-शिक्षा-समिति, पटना से प्रकाशित होने वाले एटलस में अंगिका भाषी क्षेत्र को अंकित कराया। १९५६ में स्व० अम्बष्ठ जी और इन पंक्तियों के लेखक के सम्मिलित प्रयास से आदरणीय डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु की अध्यक्षता मे पटना मे अंगभाषा परिषद् की स्थापना हुई।

फिर, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना से डॉ० महेश्वरीसिंह 'महेश' द्वारा अंगिका-भाषा और साहित्य-विषयक निबन्ध-पाठ कराया गया। अंगिका के विकास मे प्रारम्भ से ही हम दोनो आदरणीय सुधांशु जी के आशीर्वाद और प्रोत्साहन से प्रेरणा प्राप्त करते रहे। इन्ही की अध्यक्षता मे अंगभाषा-परिषद् का प्रथम अधिवेशन सन् १९६४ ई० मे पटना मे सम्पन्न हुआ। अंगिका के उत्थान में डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर', डॉ० जनार्दन मिश्र, पं० बुद्धिनाथ झा 'कैरव' तथा कविवर प० हंसकुमार तिवारी का योगदान भुलाया नही जा सकता। सर्व श्री जगदीश मिश्र, सुरेन्द्र मिश्र, श्री मोहन मिश्र 'मधुप' और नरेश पांडेय 'चकोर' की सेवाएँ भी प्रशंसनीय है। स्व० डॉ० श्रीकृष्णसिंह, स्व० आचार्य शिवपूजन सहाय तथा आचार्य नलिन विलोचन शर्मा भी अंगिका के बड़े समर्थक थे। हम इन मनीषियों के अत्यन्त ऋणी है।

स्व० अम्बष्ठ जी, उनके पुत्र श्री रामलखन प्रसाद तथा इन पंक्तियो के लेखक के प्रयास से बिहार-समाज-शिक्षा परिषद्, पटना द्वारा आधुनिक अंगिका की प्रथम पुस्तक 'सात फूल' का प्रकाशन हुआ। इसके पूर्व कुछ पत्र-पत्रिकाओं मे फुटकर कविताएँ प्रकाशित हुई थी। स्व० गदाधर प्र० अम्बष्ट जी ने उक्त पुस्तक को आधुनिक युग मे अंगभाषा मे गद्य-साहित्य तैयार करने

का प्रथम प्रयास कहा है। डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने इसे अंगिका के गद्य का प्रथम नमूना माना है। अंगिका की दूसरी पुस्तक है 'किसान के जगावऽ'। यह एक नाटक है, जो गाँव में खेले जाने के सिलसिले में लिखा गया था। सफल अभिनय के बाद लेखक ने स्वयं इसे प्रकाशित कर अपने अङ्गभाषा के प्रति प्रबल अनुराग का परिचय दिया। पुनः सन् १९६३ ई० में समाज-शिक्षा-परिषद्, पटना से अङ्गिका की तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई। अब अनेक साहित्यकार इस ओर आकृष्ट हुए हैं और अनेक विधाओं में अङ्गिका-साहित्य का भण्डार भर रहे हैं। ●

टिप्पणी :— उपर्युक्त लेखांश 'अङ्गिकाञ्जलि' (अङ्गिका की कहानियों का संग्रह) के पृ० १–४ से उद्धृत है। इन दिनों बड़ी तेजी से अङ्गिका की कृतियों का प्रकाशन होने लगा है। शेखर प्रकाशन ने ही १० पुस्तकों का अब तक प्रकाशन किया है। श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' के सम्पादन में 'अङ्ग माधुरी' (मासिक) और श्री परमानन्द पाण्डेय के सम्पादन में 'अङ्गिका' (त्रैमासिक) का प्रकाशन हो रहा है जिससे अङ्गिका सभी क्षेत्रों में प्रतिष्ठित हुई है।

—सम्पादक

अंगिका के साहित्यकार

—नरेश पाण्डेय 'चकोर'

भोजपुरी, मैथिली, वज्जिका, मगही आदि लोक भाषाओं की तरह अङ्गिका भी बिहार की एक लोक-भाषा है। अङ्गिका [illegible] भागलपुर, कटिहार की लोक-भाषा है।

अङ्गिका का साहित्य प्राचीन काल से ही समृद्ध रहा है। हाँ, इसके साहित्यकार निर्धन और असहाय जरूर रहे हैं। साहित्यकारों की निर्धनता ने उनका अस्तित्व तो समाप्त कर ही दिया है, साथ ही साथ अङ्गिका का प्राचीन साहित्य भी अनुपलब्ध हो गया है।

अङ्गिका के प्राचीन साहित्य और उसके साहित्यिक पर शोध कार्य के न होने का एकमात्र मुख्य कारण निर्धनता ही नहीं है। इसका एक दूसरा मुख्य कारण है इसके पड़ोसी भाषा की साम्राज्यवादी नीति। यह पड़ोसी भाषा तो अभी भी अङ्गिका को साफ ही चट कर जाना चाहती है। यह तो स्पष्ट रूप से कहती है कि अङ्गिका का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, बल्कि वह 'मैथिली' का ही एक अङ्ग है। लेकिन अङ्गिका एक स्वतन्त्र लोक-भाषा है — यह किसी भी लोक भाषा का अङ्ग नहीं है ऐसा अङ्गिका-भाषी तो मानते ही हैं, साथ ही साथ सरकार भी मानने लगी है। सरकार की ओर से बिहार की अन्य लोक-भाषाओं की तरह अङ्गिका में भी पुस्तकों का प्रकाशन होना शुरू हो गया है। हाँ, इतना अवश्य है कि अंगिका को किसी राजपुरुष की आर्थिक सहायता नहीं ही मिल रही है, प्रेस की सुविधा से यह भले ही वंचित है और यहाँ तक कि इस क्षेत्र के नेता भी इस ओर [illegible] नहीं हैं। अंगिका के साहित्यकारों की नीति साम्राज्यवादी नहीं है। वे अंगिका का विकास लोक-भाषा के स्तर पर ही चाहते हैं। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और लोक-भाषा अंगिका— हमारी यही मान्यता है। हम अपने पड़ोसी भाषा की तरह अंगिका को हिंदी की तरह स्वतन्त्र अस्तित्व दिलाना नहीं चाहते, हम इस पड़ोसी भाषा की तरह लोकसेवा आयोग के लिये न तो स्वीकृत कराना चाहते और न हम अपनी लोक-भाषा के आधार पर अलग प्रांत ही चाहते हैं। ये बातें पागलपन में हमारे पड़ोसी बड़बड़ाते हैं। हम यही चाहते हैं कि अङ्गिका का विकास लोक-भाषा के स्तर पर हो और जो सुविधा सरकार की ओर से अन्य लोक-भाषाओं को मिलती है, वही सुविधा अङ्गिका को भी मिले।

अब हम मुख्य विषय की ओर आवें। अङ्गिका के प्राचीन साहित्यकारों में आठवीं सदी से बारहवीं सदी के चौरासी सिद्धों में से शवरपा, वर्मपा, मेकोपा, चेलुकपा, लुचिकपा, चपटीपा और जयावन्त का नाम लिया जा सकता है। पं० राहुलजी सांकृत्यायन ने इन्हें अङ्ग-जनपद का बताया है। इनके अपभ्रंश साहित्य में अङ्गिका की झाँकी देखी जा सकती है। बुकानन ने पूर्णिया जिला के सर्वेक्षण में पं० भृगुराम मिश्र नामक कवि की चर्चा की है और उन्हें मुंगेर का वासी बताया है। बुकानन के अनुसार ये ५०० वर्ष ई० पू० के कवि हैं। मुंगेर के पुरानी गंज में उनके वंशज निवास करते थे, यह भी बताया गया है। बुकानन का कथन है कि भृगुराम मिश्र की रास-विहार नामक कृति मैथिली में नहीं लिखित थी। इससे स्पष्ट है कि श्री मिश्र जी का 'रास-विहार', 'सुदामा चरित' तथा 'दान-लीला' अवश्य ही अङ्गिका मे लिखा गया होगा। काश उपरोक्त ग्रंथ अभी उपलब्ध रहता!

बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तर मे अङ्ग-लिपी का लिपियों मे चौथे स्थान पर उल्लेख मिलता है। लेकिन उक्त अङ्ग-लिपी अभी देखने को नहीं मिल पायी है। लेकिन इससे इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि अंगिका की अलग एक लिपि भी थी और तब तो इसका साहित्य अवश्य ही होगा। अभी भी अगर इस पर खोज किया जाय तो अङ्गलिपी और अङ्गिका के प्राचीन साहित्य तथा साहित्यकार के विषय में बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

अंगिका का लोक-साहित्य बड़ा ही समृद्ध है। 'बिहुला' लोकगाथा-काव्य के अनेक संस्करण कलकत्ता एवं बनारस से प्रकाशित हुए हैं। अभी भी इस क्षेत्र मे 'बिहुला' लोकगाथा काव्य अत्यन्त ही लोकप्रिय है और बिहुला पूजोत्सव के अवसर पर साज-बाज के साथ इस काव्य का सस्वर पाठ होता है। 'बिहुला' लोकगाथा-काव्य की तरह और कई काव्य हैं जो कागज पर तो नही लेकिन अङ्गिका-भाषी कतिपय लोगों के कण्ठ में विराजमान है। उदाहरणार्थ—सलेस भगत का गीत तथा लोरकैनो आदि उल्लेखनीय है।

अंग्रेजी शासन काल मे ईसाई मिशनरियों ने धर्म प्रचार के लिये अङ्गिका मे कुछ कार्य किये हैं। अठारहवी सदी के अन्त मे फादर एन्टोनियो ने 'गास्पेल एण्ड एक्ट्स' का अङ्गिका में अनुवाद किया था।

आधुनिक युग मे अङ्गिका की उन्नति और श्रीवृद्धि में सर्व श्री डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', स्व० पं० बुद्धिनाथ झा 'कैरव', स्व० गदाधर प्र० अम्बष्ट, डा० माहेश्वरीसिंह 'महेश', डा० जनार्दन मिश्र, जगदीश मिश्र,

परमानन्द पाण्डेय, नरेश पाण्डेय 'चकोर', मधुकर गंगाधर, सुरेन्द्र मिश्र, जनार्दन राय, डा० कुमार विमल, डा० वचनदेव कुमार, श्रीमोहन मिश्र 'मधुप', पं० भुवनेश्वर चौधरी 'भुवनेश', भुनेश्वरसिंह 'भुवन', तेजनारायण कुशवाहा, डा० अभयकुमार चौधरी, प्रो० पंचानन झा, अनूपलाल मंडल, उत्पल, गैदपुरी, सदानन्द, अनुज, सुरो, रेणु, विकल आदि साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय है। श्री अनूपलाल मंडल, श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' एवं श्री मधुकर गगाधर के हिंदी-कथा-साहित्य मे अङ्गिका के सुन्दर-सुन्दर अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। श्री रेणुजी के 'मैला आँचल' मे तो अङ्गिका के शब्दो की भर-मार है और कुछ अगिका की पंक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई है।

अंगिका की प्रकाशित कृतियो मे वैद्यनाथधाम के भूतपूर्व सरदार पडा स्व० श्री भवप्रीतानन्द के गीतो और झूमरो के सग्रह एव कमरथुआ ख्यात है। श्री परमानन्द पाण्डेय के दो कहानी संग्रह 'सात फूल' और 'देश के बढ़ावऽहोऽ' समाज शिक्षा बोर्ड पटना से प्रकाशित हुए है। समाज शिक्षा बोर्ड पटना से श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' का नाटक 'सर्वोदय-समाज' और मेवालाल शास्त्री का 'खेती के तरीका' भी प्रकाशित हुए है। इसके पूर्व ही श्रीमती इन्दुबाला देवी का 'जाट-जाटिन' एव श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' का एकांकी नाटक 'किसान के जगावऽ' प्रकाशित हुए है। चकोर जी का 'अगिका के फेकड़े एव लोरियाँ' नामक फेकड़े एव लोरियो का सग्रह एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। दुमका मे श्री सुरेन्द्र का 'सुरो' का कविता संग्रह 'पनसोखा' का प्रकाशन भी अगिका का लोकप्रिय प्रकाशन है। श्री लक्ष्मणसिंह चौहान, खड़गपुर (मुगेर) की अगिका मे प्रकाशित 'लोक-गाता' देखने को मिली है। श्री चौहान जी की इस पुस्तक का सस्वर पाठ श्रोता चित्त हर लेता है। स्वर्गीय श्री गदाधर प्र० अम्बष्ठ ने 'अगिका व्याकरण' लिखा है और मेघदूत का समश्लोकी अनुवाद भी किया है जो अब तक अप्रकाशित है।

'अगिकांजलि' नामक कहानी सग्रह का प्रकाशन अगिका पुस्तक मे एक अपना अलग स्थान रखता है। इसके सम्पादक श्री परमानन्द पाण्डेय तथा प्रबन्ध सम्पादक श्री नरेश पाण्डेय चकोर है। इसमे अगिका के चुने हुए कहानीकारो का कहानी सग्रह है। इसमे सर्व श्री अयोध्या प्र० झा, डा० कुमार विमल, नरेश पाण्डेय 'चकोर', परमानन्द पाण्डेय, प्रकाशवती नारायण, डा० ब्रह्मदेव मडल, मथुराप्रसाद 'अनुज', मधुकर गगाधर, योगेन्द्र चौधरी, राधा-कान्त शर्मा 'कान्त', डा० वचनदेव कुमार, वाँछा अजन, वागेश्वरी देवी, रजन सूरिदेव, श्रुतिदेव शास्त्री, सुरेन्द्रसिंह की कहानियाँ है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित 'अंगिका संस्कार गीत' बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमे हिंदी में ४४ पृष्ठ की शोधपूर्ण भूमिका अंगिका की बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारी देती है। यह लगभग चार सौ पृष्ठों की पुस्तक अंगिका के गीतो का सग्रह है जो अंग जनपद की महिलाओ द्वारा विभिन्न संस्कार के समय गायी जाती है।

पं० भुवनेश्वर चौधरी 'भुवनेश' के संपादकत्व मे 'भारती' नामक बडी ही मोटी सज-धज वाली महत्वपूर्ण हस्तलिखित पत्रिका देखने को मिली है जिसमें अंगिका की कहानियाँ एवं कविताएँ है। यह पत्रिका १९५२ ई० की है। शैदपुरी जी द्वारा सपादित 'चंदन' नामक त्रैमासिक पत्र (१९६६ फरवरी) मे श्री भुवन, वैरख तथा सदानन्द जी की अंगिका की कविताएँ देखने को मिली है।

दिसम्बर १९७० से मेरे द्वारा संपादित 'अंग-माधुरी' नामक मासिक पत्रिका अंगिका मे प्रकाशित हो रही है। अंग-भाषा-परिषद्, विहार पटना से 'अंगिका' नामक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित होने लगी है।

अब अंगिका के साहित्यकार काफी सजग हो गये है और अंगिका की सुन्दर-सुन्दर रचनाएँ प्रकाश में आ रही है। अर्थाभाव मे अंगिका के साहित्यकारों की बहुत सारी रचनाएँ अब भी अप्रकाशित है। अंगिका के साहित्यकारो को समृद्धशाली पुरुषो की कृपा भी अभी तक न प्राप्त हो सकी है। नेताओ का प्रोत्साहन एवं पाठको की कृपा भी प्राप्त नही के बराबर है। बेचारे अंगिका के साहित्यकार कुहर-कुहर कर येन-केन प्रकारेण कुछ रचनाएँ प्रकाशित करवा रहे है। आकाशवाणी के अधिकारी गण तो इनकी ओर ध्यान ही नही देते। हाल मे मुझे केन्द्रीय सूचना राज्य मंत्री से मात्र आश्वासन मिला है कि भागलपुर से प्रसारित किये जाने वाले फार्म एण्ड एग्रीकलचर कार्यक्रम मे अंगिका को स्थान दिया जायगा। भला इससे बेचारे अंगिका के साहित्यकारो को क्या प्रोत्साहन मिलेगा और अंगिका का कहाँ तक कल्याण हो सकेगा। अंगिका को जब तक आकाशवाणी के पटना केन्द्र मे मगही, भोजपुरी और मैथिली की तरह स्थान नही मिलता तब तक अंगिका-भाषी जनता सन्तुष्ट नही हो सकती और अंगिका के साहित्यकार खुश नही हो सकते।

हम अंगिका के साहित्यकार अंगिका के लोक-भाषा के स्तर पर विकास के लिये कटिबद्ध है और हमारा विश्वास है कि अंगिका के साहित्य मे काफी श्रीवृद्धि होगी। हम अंगिका की तरह विहार की सभी लोक-भाषाओ की श्रीवृद्धि की कामना करते हैं।

नागपुरी-भाषा-साहित्य : एक सर्वेक्षण

—प्रफुल्लकुमार राय

(१) **नागपुरी भाषा :**—विहार प्रान्त के छोटा नागपुर डिविजन मे, मध्य प्रदेश के जसपुर, सुरगुजा तथा उड़ीसा के संभलपुर, सुन्दरगढ़ में जो भाषा बोली जाती है वह "नागपुरी", "नगपुरिया", "सदरी", "सदानी" कही जाती है। नागपुरी का क्षेत्र इस तरह विशाल है। छोटा नागपुर में भिन्न-भिन्न जाति के लोग रहते हैं। यहाँ के आदिवासियों में भी कई प्रकार की जातियाँ हैं—मुंडा, उरांव, खड़िया, संताल, हो, विरहोर आदि। इनकी अलग-अलग भाषा है—मुण्डारी, उरांव वर्ग का "कुड़ुख",, संताल का संताली, हो का 'हो'। फिर यहाँ न जाने कितने युग से आर्य तथा अर्ध-आर्य जाति के भी लोग बसते हैं (यह खोज का विषय है) जिनकी बोली नागपुरी है। हमें अब यह देखना है कि जब अलग-अलग भाषा-भाषी लोग इस भू-भाग पर रहते है तो संपर्क भाषा कौन सी है? किस भाषा के माध्यम से तरह-तरह के लोग अपना दैनन्दिन सम्पर्क रखते है? तो उत्तर होगा— नागपुरी भाषा। नागपुरी बोली इस क्षेत्र की संपर्क भाषा या जन-भाषा है।

नागपुरी के सम्बन्ध में कुछ ही दिन हुए हैं छानबीन हो रही है, कुछ लोगो का ध्यान इस ओर गया है। भाषाविदों ने— विशेपकर डा० ग्रियर्सन ने नागपुरी को भोजपुरी की उप-भाषा का पद दिया है तथा उसी की दुहाई हर कोई देते है। पर नागपुरी की विशेषताओं पर ध्यान देने पर यह कथन पुष्ट नहीं हो पाता। नागपुरी अपने मे एक स्वतन्त्र बोली या भाषा है इसका प्रमाण तो इसके अध्ययन के बाद ही किसी को लग सकता है।

नागपुरी भाषा के आरम्भ काल की बात मेरे लिये तो कहना कठिन है फिर भी कुछ तथ्य ऐसे है जिससे ऐसा जान पड़ता है कि नागपुरी भाषा इस भू-भाग की प्राचीन भाषा है। इस सम्बन्ध में, इस भाषा के सम्बन्ध मे लिखते हुए श्री योगेन्द्रनाथ तिवारी ने कहा है कि इस भू-भाग के स्थानो के नाम, प्रमुख नदियों के नाम कुछ ऐसे हैं जो किसी भी आदिम जाति के भाषा के शब्द नही तथा पूर्णरूपेण आर्य भाषा से सम्बन्धित हैं। उदाहरणार्थ— नदियों के नाम—"शख", "कोयल" सुवर्णरेखा। स्थानों के नाम—विपुमपुर, रामरेखा आदि। उन्होंने इस सम्बन्ध मे विद्वानों का ध्यान एक विशेप घटना-

क्रम की ओर खींचा है। जैसा कि कहा जाता है या श्री शरतचन्द्र राय, नृतत्ववेत्ता का कथन है कि सर्वप्रथम यहाँ मुण्डाओं के बाद फनिमुकुट राय नागवंशी राजा हुए। अब इस शब्द पर जरा ध्यान दें "फनि मुकुट राय"। इनमें से कोई भी शब्द किसी भी आदिवासी भाषा का नहीं वरन् संस्कृत ही मूलतः हैं।

कहना न होगा कि नागपुरी भाषा पर अभी तक विद्वानों ने अपना ध्यान नहीं दिया और यह भाषा उपेक्षित रही।

इस भाषा के इतिहास से अनेकानेक बातों का भी प्रगटीकरण होने की संभावना है, विशेषतः यहाँ के वाशिन्दों का इतिहास भी ज्ञात हो जायगा जो अभी तक एक अनुमान के सहारे ही छिट-पुट रूप से जहाँ-तहाँ प्राप्य है। यह एक शोध का विषय है।

क्षेत्र विस्तार : क्षेत्र के सम्बन्ध में कुछ जानकारी ऊपर दी गयी है। इसके अलावा आसाम और भूटान के चाय बागानों में भी यह बोली है।

संख्या :—इस सम्बन्ध में सरकारी आंकड़े अब तक जो भी हैं वे ठीक नहीं जान पड़ते। अनुमान किया जाता है कि इस भाषा के बोलने वालों की संख्या लगभग ६०-७० लाख है।

(२) नागपुरी का प्रकाशित साहित्य :—सर्व प्रथम नागपुरी का साहित्य ईसाई मिशनरियों ने ही धर्म-प्रचार के निमित्त किया। स्व० कैथोलिक फादर पीटर शान्ति नवरंगी नागपुरी के अनन्य प्रेमी थे और नागपुरी भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने व्याकरण-अंग्रेजी तथा हिन्दी में लिखा जो प्रकाशित हो चुका है। नागपुरी भाषा में धार्मिक किताबों का अनुवाद उन्होंने किया जिनमें "ईशु-चरित-चिन्तामइन" विशेष है। इसके अलावा एक कहानी और गीत की भी किताब उन्होंने नागपुरी भाषा में प्रकाशित की। नागपुरी में अधिकतर गीत-साहित्य का प्रकाशन आरम्भ में हुआ जिसका श्रेय चाईबासा के स्व० श्री धनीराम बक्शी को है। नागपुरी लोकगीतों के संग्रह का प्रकाशन हितैषी प्रेस, चाइबासा से जो स्व० बक्शी जी का ही था, हुआ।

नागपुरी नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन नागपुरी भाषा परिषद् के द्वारा १९६१ के जनवरी से लगभग पाँच अंक तक हुआ पर अर्थाभाव के कारण और आगे न हो पाया।

नागपुरी भाषा में गद्य साहित्य का अभाव सा हो है। छिट-पुट रूप से "आदिवासी" में प्रकाशित हो जाता है।

मुझे कहने में संकोच होता है कि सन १९६७ मे मैने "सोनझइर" नामक एक कहानी, पद्य और कुछ गीत प्रकाशित किये।

अप्रकाशित अनेकानेक सामग्रियाँ पड़ी हैं। खासकर फादर बुकाउट की लिखी—'A Grammer of the Nagpurjya Sadani Language" (A thorugh research into the Aryan Sadanı Language of Chhota Nagpur). मैने प्रकाशन के लिये इसे जन-जातीय शोध-संस्थान, रांची में दिया था, पर खेद की बात है कि किन्ही कारणों से वह नही हो पाया और पुनः मुझे लौटा दिया गया है। फादर बुकाउट की मूल पाण्डुलिपी का सम्पादन मेरे अनुरोध पर स्व० फादर पीटर शांति नवरंगी ने अत्यधिक परिश्रम कर किया। यह नागपुरी भाषा पर पूर्ण प्रकाश डालता है।

नागपुरी भाषा के सम्बन्ध मे हाल मे श्री योगेन्द्रनाथ तिवारी ने एक किताब "नागपुरी का संक्षिप्त परिचय" लिखी है जिसका प्रकाशन योग प्रकाशन, सुरेश बाबू स्ट्रीट, अपर बाजार, राची से हुआ है। श्री नइमुद्दीन मिरदाहा, ग्राम कादोजोरा—पोस्ट आफिस घघरा ने भी स्वयं रचित गीतों का प्रकाशन कराया है।

(३) नागपुरी गद्य : विभिन्न विधाओं में रचा गया साहित्य :— नागपुरी गद्य के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातों का उल्लेख मैने ऊपर किया है। एक छोटी सी नाटक की किताब "ठाकुर विश्वनाथ साही" लेखक श्री विशेश्वरप्रसाद केसरी, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, अगरवाल कालेज, डाल्टेन गज, (बिहार) भी छपी है। एक कहानी तथा निबन्ध एवं पद्य सग्रह मैने प्रकाशन के निमित्त दिया है। नाटक भी कुछ लिखे हैं पर प्रकाशित नही हो पाये। गद्य की दिशा मे आकाशवाणी राची के माध्यम से कहानी, वार्त्ता इत्यादि प्रसारित होती है। इस दिशा मे रूपक "तेतइर कर छोहे" का प्रकाशन श्री विष्णुदत्त साहू, श्रद्धानन्द रोड, राची ने सर्व प्रथम किया।

(४) नागपुरी की पत्र-पत्रिकाएँ :—नागपुरी भाषा मे पत्र-पत्रिकाओं का सदैव अभाव ही रहा है। जैसा कि हमने ऊपर लिखा है—"नागपुरी" नामक एक मासिक पत्रिका के प्रकाशन का कार्य कुछ दिनों चलकर स्थगित हो गया। रांची की दो साप्ताहिक पत्रिकाये "रांची एक्सप्रेस" तथा "रांची टाइम्स" मे नागपुरी में भी समाचार प्रकाशित होते है।

(५) नागपुरी लोक साहित्य :—नागपुरी लोक साहित्य का भण्डार लोक कथाओं तथा लोकगीतो का विशेष है। विशेश्वर प्रसाद केसरी जी ने लगभग १२००० लोकगीतो का संग्रह किया है। इस सम्वन्ध मे अधिक जानकारी उनसे मिल सकती है। लोकगीतो के लगभग ५०० से अधिक कवि-

गणों की सूची भी उनके निकट उपलब्ध होगी। शिष्ट गीतों का भी अभाव नागपुरी में नहीं खटकता।

(६) समस्त महत्वपूर्ण सूचनाएँ :—नागपुरी भाषा सम्बन्धित शोध-कार्य श्री श्रवणकुमार गोस्वामी, पी-एच. डी., प्राध्यापक, डोरंडा कालेज, रांची ने किया है तथा गत वर्ष पी. एच. डी. की उपाधि भी प्राप्त की है। श्री विशेश्वर प्रसाद केसरी, प्राध्यापक अगरवाल कालेज, डाल्टेन गंज ने भी "नागपुरी गीतों में शृङ्गार रस" पर शोध-कार्य किया एवं आशा है निकट भविष्य मे उन्हे भी पी. एच. डी. की उपाधि मिल जाय। भाषा सम्बन्धित अध्ययन नागपुरी को लेकर श्री योगेन्द्रनाथ तिवारी, कमलाकान्त लेन, रांची ने किया है। विगत वर्ष इस भाषा को रांची विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम मे भी स्थान दिया गया है। इसके एक स्वाधीन भाषा होने के सम्बन्ध में मैंने श्री सुनितिकुमार चटर्जी, नेशनल प्रोफेसर इन ह्यूमनिटिज से भी पत्राचार किया है पर उनका मत अभी अपेक्षित है। "नागपुरी" पत्रिकाओं की प्रतियाँ मुझे लिखने से या श्री योगेन्द्रनाथ तिवारी को लिखने से प्राप्त हो सकती हैं।

नागपुरी भाषा से सम्बन्धित तथा नागपुरी भाषा मे लिखी किताबो के लिये जो कैथोलिक मिशन के द्वारा प्रकाशित की गयी है (शायद) पत्र देने मे प्राप्य हो सकती हैं। नागपुरी भाषा सम्बन्धी एक निबन्ध संग्रह का प्रकाशन श्री विशेश्वर प्रसाद केसरी कर रहे हैं, हो सकता है कुछ प्रतियाँ उनसे मिल भी जाँय।

नागपुरी भाषा के विकास, प्रचार तथा प्रसार के निमित्त नागपुरी भाषा परिषद्, रांची का गठन १९६० ई० मे हुआ। इस संस्था के अध्यक्ष अथवा सभापति श्रीसुशीलकुमार बागे है। श्री जगतमणि महतो मंत्री के पद पर है। उनका पता—श्री जगतमणि महतो, लोअर चुटिया, पोस्ट आफिस चुटिया, रांची है। कुछ पत्राचार के बाद भाषा सर्वेक्षण समिति, बिहार मे नागपुरी भाषा-भाषी को प्रतिनिधि रूप मे सदस्यता दी गयी है।

इस सम्बन्ध मे मनोवांछित अभिरुचि श्री रणछोड़प्रसाद, अध्यक्ष, राष्ट्रीय कोयला विकास निगम, राची ने प्रदर्शित किया। उनके प्रयास के फलस्वरूप भाषा सर्वेक्षण समिति, राष्ट्र-भाषा परिषद्, बिहार–पटना का कार्य हो पाया तथा नाटिका का प्रकाशन (ठाकुर विश्वनाथ शाही) हुआ। रंगमच मे प्रथम बार इसी नाटक का प्रस्तुतीकरण भी हुआ।

नगपुरिया लोक-गीतों की पृष्ठभूमि

—श्री शम्भूनारायण लाल

बिहार का दक्षिणी अंचल छोटानागपुर कहलाता है और यहाँ के आदिम निवासी, जिनमें मुन्डा एवं उरांवों की अधिकता है, आदिवासी की संज्ञा से विभूषित होते हैं। इन जातियों की अपनी-अपनी बोलियाँ हैं और ये बोलियाँ उन जातियों के ही नाम पर मुण्डारी, उरांव (कुड़ुख) आदि कहलाती हैं। पर इन बोलियों के अतिरिक्त कुछ अन्य बोलियाँ भी यहाँ बोली जाती हैं, जो बोली सर्व-साधारण की बोली बन गई है, वह है "नगपुरिया"। इसका मुख्य क्षेत्र राँची जिला है—पर पलामू, हजारीबाग के रामगढ़ एवं चतरा, सिंहभूम का चक्रधरपुर अंचल और मानभूम का क्षेत्र भी इसके अन्तर्गत आ जाता है। उड़ीसा के मयूरभंज क्योंझर और सुन्दरगढ़ तक नगपुरिया व्यवहृत होती है। छोटानागपुर के पश्चिम में मध्यप्रदेश के "सुरगुजा" क्षेत्र में भी यह बोली सामान्य रूप से भावों के आदान-प्रदान का आधार बनी हुई है। अतः यह क्षेत्र भी नगपुरिया का ही क्षेत्र है। यही कारण है कि "छत्तीसगढ़ी" का स्पष्ट प्रभाव इस बोली पर दिखाई देता है। Imperial Gazetteer of Indian, provincial series Bengal Vol. II (1909) Page 352 पर रांची जिला की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है—"Hindi is spoken by 42½ percent of the population. The dialect most in vogue is a variety of Bhojpuri known as Nagpuria, which has borrowed some of its gramatical form from the adjoining Chattisgarhi Dialect" और जॉर्ज ग्रियर्सन ने Linguistic Survey of India में भोजपुरी के सम्बन्ध में लिखते हुए लिखा है—"It has one important sub-dialect the Nagpuria of Chotanagpur" इस प्रकार नगपुरिया का एक महत्वपूर्ण अस्तित्व है।

नगपुरिया अत्यन्त सरस और सरल बोली है। इसकी अपनी लिपि नहीं है। पर इस बोली का अपना साहित्य है, वह साहित्य लोक-गीतों और लोक-कथाओं के रूप में सुरक्षित है। लोक-गीतों की अलौकिक स्वर लहरी देखते ही बनती है। गीत जीवन की भावभूमि पर आधारित हैं। यद्यपि गीतों की पंक्तियाँ कला की कसौटी पर परख कर नहीं रखी गई हैं, फिर भी इन गीतों की पंक्तियों में कलात्मकता की कमी नहीं दिखाई देती है। भारत की अन्य भाषाओं और बोलियों के लोक साहित्य की तरह छोटानागपुर की नगपुरिया का लोक-साहित्य भी लोक-गीतों एवं लोक-कथाओं के रूप में वर्तमान है।

लोक-कथाएँ वीर एवं प्रेम भावो से भरी हैं। कथाओं के पात्र लौकिक और अलौकिक दोनों मिलते हैं। कहीं-कहीं इतिहास का आधार भी लिया गया है; पर काल्पनिक पात्रों को भी स्थान मिलता रहा है। अतः हजारो वर्षो के निरन्तर प्रवाह मे यह कहना कठिन है कि कौन पात्र ऐतिहासिक है और कौन पात्र काल्पनिक ? गीतों की पंक्तियो में जहाँ एक ओर अलौकिक कल्पना के तत्व उपस्थित हैं, वहीं दूसरी ओर जीवन के मार्मिक प्रसंगो की छाया भी। जंगलों और पहाड़ों के बीच निवास करने के कारण इनके गीतो में वीर-परक भावनाएँ अधिक हैं, पर प्रेम-परक भावनाओं की कमी भी नही है। प्रकृति की छटा, वन की हरियाली, पहाड़ी झरनों का कल-कल निनाद, सभी का सम्मिलित प्रभाव एक साथ ही गीतों में सरस आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक हो उठा है।

गीतों का अपना प्रसंग है और है अपना अवसर। धान रोपना, पौधों की निकौनी करना, ढेकी कूटना, नदियों तथा जलाशयों से जल भरना तथा अन्य गृह-कार्यो को सम्पन्न करने के अवसर पर इन ही गीतों को सरस एवं मधुर स्वर में गाने का अवसर है। यदि धान रोपने के अवसर पर, "रोपा रोपे गेली, रीझे-रीझे गेली", की स्वर-लहरी कानों मे गूँजती है, तो पनघट पर जाती हुई कृषक किशोरियों एव रमणियों की कोमल करुण संगीत भरी रागिनी, "पानी भरे जात रही, बीचे में ठड़ा रहैं साम", एक ऐसी छवि एव मधुरिमा उपस्थित करती है, जो भूले नही भूलती। इतना ही नही, जीवन की आशा-निराशा, सुख-दुख, राग-द्वेष, मान-अपमान, प्रेम-वासना सभी के चित्रण इन गीतों में हो पाये हैं। प्रकृति की छटा, काले बादलो से आच्छादित आकाश, मुस्कुराती तारिकायें, हँसता चाँद एव कलकल, छलछल करती नदियाँ, इन गीतों का विषय बन जाती है पर विषय से बढ़कर सरस और मनमोहक होती है गीतों की स्वर-लहरी। ऐसा जान पड़ता है कि इन गीतो के कोमल-करुण स्वर में वही टीस है, वही रागात्मकता है, वही प्रभावोत्पादकता है, और है वही मार्मिकता जिन्हें सुनकर अंग्रेजी के महान कवि वड्सवर्थ ने अपनी प्रसिद्ध कविता "सोलीटरी रीपर" की रचना की थी।

इन गीतों की दूसरी विशेषता है उनकी चित्रात्मकता। गीतो मे ऐसे-ऐसे चित्र मिलते है, जिन्हें कलाकार अपनी तूलिका का सहारा देकर साकार और सप्राण कर दे सकता है। उमड़ती हुई नदी और रिमझिम बरसते बादलों का अनोखा दृश्य लोक गीतों में सरलता और सरसता का आधार पाकर लोक साहित्य के अनमोल निधि बन गये हैं।

नगपुरिया लोक-गीतों का एक महत्वपूर्ण अवसर वैवाहिक कार्य-क्रम

का अवसर है। वैवाहिक गीतों में राधा और कृष्ण प्रेम-परक वातावरण के सजीव चित्र उपस्थित करने में बड़े सहायक होते हैं। कन्या की सखियाँ उसकी तुलना राधा से करती हैं और उसकी आँखों में उसी प्रेम की झलक देख पातीं हैं जो कृष्ण के प्रेम में डूबी राधा की आँखों में राधा की सखियाँ देखा करती थी। अतः जिस प्रकार बिहार की अन्य बोलियों के लोक-गीतों में राधा और कृष्ण की मधुर कल्पनाएँ गीतों का आधार बनती रही हैं उसी प्रकार नगपुरिया गीतों की पंक्तियाँ भी राधा और कृष्ण की प्रेम लीला एवं मधुरिमा को रागात्मक वातावरण के साँचे में ढालकर लोक-गीतों में स्थापित करती रही हैं और यही कारण है कि नगपुरिया वैवाहिक गीतों में राधा-कृष्ण आधारस्वरूप हैं।

वैवाहिक गीतों में शिव और पार्वती एवं सीता और राम को भी आधारस्वरूप रखा गया है। पर गीतों की मधुरिमा, सरसता और मार्मिकता हृदय पर एक अमिट छाप तब छोड़ती है, जब राधा और कृष्ण को आधार बनाकर गीतों की पंक्तियों की रचना हो पाती है। अतः राधा और कृष्ण ही वैवाहिक गीतों के प्राण हैं।

नगपुरिया गीतों की रचना का एक और आधार है; और वह है कुछ विशेष त्यौहारों का अवसर। त्यौहारों के अवसर पर ग्रामीण जनता मधुर स्वर मे तन्मय होकर जब इन गीतो को गाती है तो उल्लास और आनन्द-विभोर गायक-गायिकाओं की स्वर लहरी चारो ओर उपस्थित श्रोताओं के हृदय को भी भाव-विभोर कर देती है। ऐसा जान पड़ता है कि सुन्दर स्वर-लहरी चारो ओर अपनी जादू भरी छाया डाल रही है। इन गीतों का माधुर्य बरसात की अंधेरी रात मे तब और सरस मालूम होता है, जब चारो ओर शान्त वातावरण छाया रहता है और आकाश बादलों से आच्छादित होता है। ऐसे अवसरो पर गीतो की पंक्तियाँ मधुर से मधुरतम् हो उठती हैं और श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाता है। इन गीतो को सामान्य वाद्य यन्त्रों के संगीत का योग देकर जब सुन्दर आलाप के साथ गाया जाता है तो निश्चय ही इनकी कलात्मकता बढ़ जाती है, और लगता है कि लोक-गीतों की सरलता, सरसता एवं मिठास हृदय को छू रही है। "झूमर" सुनकर श्रोता झूम उठता है तो "डोमकच" की ध्वनि पैरों में गति भरने लगती है। भाव-विभोर हृदय पर ये गीत अमिट छाप छोड़ जाते हैं। धन्य हैं वे ग्राम निवासी जिनको ऐसे मार्मिक, हृदय-स्पर्शी स्वच्छ एवं पवित्र भावों से भरे गीतो के रसास्वादन का आधार सुलभ है और धन्य हैं वे लोग जो तन्मय होकर इन गीतों को गाया करते हैं।

(आदिवासी में प्रकाशित)

वज्जिका लोकगीतों में चारित्रिक आदर्श

—विनोदिनी शर्मा

समाज में आदर्श चरित्र-निर्माण पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। ऐसे चरित्र शब्द व्यापक है और इसके अन्तर्गत बहुत सारी बातें आती हैं। लेकिन प्रायः इस शब्द का प्रयोग सीमित अर्थ में होता है और उसे यौन-सम्बन्ध तक ही सीमित कर दिया जाता है।

काम-भावना मनुष्य में बहुत प्रबल रूप में वर्तमान रहती है और मनुष्य के विकास में उसका महत्वपूर्ण योग भी है। समाज उस दुर्दमनीय प्रवृत्ति को मर्यादित करने का प्रयत्न करता है। इसके लिये सामान्यतः उसने एक नियम बना रखा है कि एक व्यक्ति एक से अधिक व्यक्ति से यौन-सम्बन्ध स्थापित न करे।

लेकिन समय-समय पर इस नियम का व्यतिक्रम भी होता रहा है। पुरुषप्रधान समाज में पुरुषों ने अपने लिये रास्ता निकाल ही लिया और पुरुषों का बहुविवाह भी समाज में बहुत दिनों तक मान्य रहा है। बिना विवाह के भी वे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करते रहे हैं जिसका विस्तृत वर्णन गीतों में मिलता है।

और तब आदर्श एवं मर्यादा के निर्वाह का उत्तरदायित्व स्त्रियों को सौंप दिया गया। बचपन में ही उनके अन्दर यह भावना भर दी जाती है कि वे साधारण नारी नहीं हैं, सीता और सावित्री हैं और उन्हें उनके आदर्श को निबाहना है। पुरुष ने तो बड़े आसानी से राम के एक-पत्नीव्रत के आदर्श को भुलाकर कृष्ण के मुक्तप्रेम के आदर्श को ग्रहण कर लिया लेकिन स्त्रियों के सामने सीता का स्थान द्वापर की द्रौपदी नहीं ग्रहण कर सकीं। स्त्री ने एक-पतिव्रत के आदर्श को जब कभी भंग किया, समाज उसे कठोरतम दंड देने में कभी नहीं हिचकिचाया। इस स्थिति का चरम रूप उत्तर-मध्ययुग में सती-प्रथा के रूप में प्रकट हुआ जब पत्नी के जीवित शरीर को उसके मृत पति की चिता पर फेंक देने की परम्परा चली। लोक समाज में यह धारणा भी बद्ध-मूल हुई कि जो स्त्री सती अर्थात् सच्चरित्र होती है, उसके शरीर में स्वतः अग्नि उत्पन्न होती है और अपने से चिता लेती है। स्त्रियों के मन में यह विश्वास पैदा करने की कोशिश की गयी कि सती स्त्रियों को लोक और परलोक—दोनों स्थानों में सुख की प्राप्ति होती है। स्त्रियों के बीच अशिक्षा रही है।

अतः वे समाज की व्यवस्था को सिर झुकाकर स्वीकार करने के लिये विवश रही है। उनके संस्कारों ने भी उन्हें मन, वचन और कर्म से पति की अनुगता बनने के लिये प्रेरित किया। लोकगीतों में भारतीय नारी का आदर्श चरित्र स्थल-स्थल पर उभर कर सामने आया है। उनके सामने लम्पट पुरुष प्रणय-प्रस्ताव रखते है और वे दृढता के साथ उनकी भर्त्सना करती है। झूला के गीतों मे ऐसे प्रसग वहुत वार आये है। एक गीत में कहा गया है कि किसी स्त्री के सौंदर्य पर उसका जेठ ही मुग्ध हो जाता है। अनुज-वधू को विमुग्व देखकर वह अनुज को अपनी वाधा समझकर मार डालता है और प्रणयाकांक्षा से भरकर अनुज-वधू के पास आता है। नायिका अपने धर्म की रक्षा के लिये कौशल से काम लेती है। वह जेठ से अनुरोध करती है कि वह उसे अपने स्वर्गीय पति को एकवार देख लेने का अवसर दे। जेठ उसका अनुरोध स्वीकार करता है और उसे लेकर जंगल मे पहुँचता है जहाँ अपने छोटे भाई की लाश उसने केले के पत्तो में छिपाकर रखी थी। जेठ मृत शरीर के दाह-संस्कार के लिये अग्नि लेने जाता है और स्त्री अपने सतीत्व की दुहाई देती है। वस उसके शरीर से स्वतः अग्नि उत्पन्न होती है और दम्पति जलकर भस्म हो जाते हैं। आग लेकर लौटने पर जेठ को राख के अतिरिक्त और कुछ नही मिला। इस प्रकार सती अपने लम्पट जेठ की कामुकता पर विजय प्राप्त करती है।

दूसरे गीत में, नायिका पानी भरने चलती है तो जेठ रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है। नायिका वर्षा से साड़ी भीगने की वात कहकर राह छोड़ने का अनुरोध करती है तो वह प्रेमभरे शब्दों से अपनी चादर देने का आश्वासन देता है।

नायिका कहती है कि जेठ की चादर का स्पर्श उसके लिये अग्नि की ज्वाला के समान है।

विक्षुब्ध नायिका पति के सामने आकर उबल पडती है जिसके रहते जेठ ने उसके साथ अमर्यादित आचरण किया। पति पत्नी के सम्मान के लिए भाई का वध करने को उद्यत हो जाता है। तव पत्नी ही पारिवारिक सम्वन्धो की रक्षा करती हुई पति को रोक देती है—'भाई तुम्हारी दाहिनी भुजा है, उनका वध करने पर तुम अकेले रह जाओगे। पत्नी तो सिर्फ शय्या का शृंगार है।'

एक अन्य गीत में कोई दरजी नायिका के आगे प्रणय-प्रस्ताव रखते

हुए कहता है कि वह चादर की सिलाई नहीं लेगा, नायिका उसकी शय्या पर आ जाय। इस नायिका ने भी उसे दृढ़ता के साथ फटकारते हुए कहा है—

'अगिया लगइबो दरजी तोहरो सेजरिया
मोर हइरे बलमुआ तोहरो से मोर हइरे बलमुआ'

एक लोकगीत में कहा गया है कि किसी राजकुमार ने एक साधारण तरकारी बेचने वाली में सौंदर्य देखा और उस पर लट्टू हो गया। लेकिन राजा का अपार वैभव दीनाहीना किंतु पतिप्राणा कुंजड़िन का व्रत भंग न कर पाया।

लोकगीतों की इन नायिकाओं ने कठिन परिस्थितियों में भी अपने शील को अक्षुण्ण रखा हैं। वे गरीबी की मार से टूटती नहीं। यदि उन्हें पति का प्रेम मिलता रहे तो वे झोंपड़ी में भी स्वर्ग के सुख का अनुभव कर लें। पति के प्रतिकूल आचरण की स्थिति में भी वे अपनी निष्ठा पर दृढ़ रही हैं। वज्जी के एक गीत में कोई राजपुत्र मालिन की बेटी पर अनुरक्त हो जाता है। वह रात भर अपनी इस प्रेमिका के पास रहकर सुबह घर लौटता है। पत्नी के देर से आने का कारण पूछने पर धृष्ट राजपुत्र अपने प्रेम व्यापार को स्पष्ट स्वीकार कर लेता है।

सुनकर नायिका न क्रोध प्रकट करती है और न विचलित होती है। वह धैर्य से सब कुछ सह लेती है। इतना ही नहीं, वह उस मालिन की बेटी को राजमहल में बुलाती है और सपत्नी के रूप में उसे प्रतिष्ठित करती है।

किन्तु, सत्य का एक दूसरा पहलू भी है जिसका वर्णन यद्यपि लोकगीतों में बहुत नहीं हुआ है तथापि उसकी सत्यता को झुठलाया नहीं जा सकता है। पाप और पुण्य की धारणा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर अकुश लगाने में पूर्णतः समर्थ नहीं हो सकी। जिस प्रकार मनुष्य परनारी के सौंदर्य के वशीभूत हो, आदर्श और मर्यादा को विस्मृत कर, सामाजिक दृष्टि से अनुचित एवं अवैध आचरण करता है; उसी प्रकार कभी-कभी स्त्रियाँ भी पर-पुरुष के प्रति मन की स्वाभाविक प्रेरणा से आकर्षित होती रही हैं। मनोनुकूल विवाह की स्वच्छन्दता न रहने के कारण इस प्रकार की स्थिति का उत्पन्न होना सहज है। हिंदू समाज में विवाह के विषय में कन्या की पसन्द, उसकी रुचि, अरुचि की चिंता नहीं की जाती। माँ-बाप या अन्य अभिभावक जिस पुरुष के साथ उसका गठबन्धन कर देते हैं, उसके साथ जीवन बिताने के लिये कन्या को बाध्य होना पड़ता है। जिस पुरुष के खूँटे से उसे बाँध दिया जाता है वह उसकी सौंदर्य-भावना और काम-प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने में समर्थ

है अथवा नही, यह विचारने की आवश्यकता समाज कभी नहीं समझता। अनमेल विवाह का अभिशाप नारी को बिना उफ किये भोगना पड़ता है। परिणामतः उसकी प्रकृत भावनाएँ कुंठा के रूप मे परिणत हो जाती है। उसकी ये मानसिक भावनाएँ अभिव्यक्ति का माध्यम खोजती रहती है और अवसर मिलने पर बड़े उद्दाम शृंगारिक और कही-कही तो वीभत्स रूप मे प्रकट होती है। विवाहादि के अवसरो पर गाये जाने वाले गाली-गीतो मे इन दमित वासनाओ को मुखर होने का अवसर मिलता है। गाली-गीतो में पर-पुरुष के साथ स्त्री के सभोग के चित्र प्रस्तुत किये जाते है। और ऐसे पर-पुरुष की कोटि मे देवर, नन्दोई, बहनोई, और तो और भाई तक ला दिये जाते है। परिवार की सीमा से आगे बढ़ने पर हलवाई, तमोली, बजाज, सोनार, दरजी, रंगरेज आदि के साथ भी उस स्त्री का सम्बन्ध जोड़ा जाता है जो गाली का पात्र बनायी जाती है। इनके साथ शयन करने और फिर इनसे भेट के रूप में विभिन्न वस्तुएँ, यथा—क्रमशः मिठाई, पान, वस्त्र आभूषण आदि प्राप्त करने का वर्णन आता है।[1]

इन गीतो में रति-क्रिया के चित्र भी आये है। कही-कही तो ये चित्र बिल्कुल नग्न है, कही-कही प्रतीक शैली अपनायी गयी है। ऐसे एक गीत मे रतिक्रिया के लिये कुइया से पानी भरने का प्रतीक ग्रहण किया गया है। एक गीत की प्रवत्स्यत्पतिका नायिका कहती है—

'पातर कुंइया पताल बसु पनिया मोर ननदिया हे
कइसे पानी भरवइ न पियवा विदेस कइसे पानी भरवइ न
पातर कुंइया पतालु बसु पनिया मोर ननदिया हे
झमकि पानी भरवइ न छपला विदेस झमकि पानी भरवइ न'

इस गीत की नायिका को गर्भ रह जाता है। वह सफाई देती है कि बासी मछली के खाने से वह गर्भवती हुई है। लेकिन प्रश्न यही शेष नही हो जाता। उसका पति परदेश है, यह गर्भ वह किसके सिर डाले, यह भी तो एक समस्या है—

'खइली में बासी मछली रहि गेल पेट केकरे सिर ढारवइ न
पियवा विदेस केकरे सिर ढारवइ न'

---

१. उजली उजली चंदनिया रात ''''''(स्त्री का नाम)''''कहाँ जइती
जइती जइती हलुअइया दोकान बगल होके सो रहती
लड्डू पेड़ा से भर लेती गोद सवेरे होके आ जाती इत्यादि।

और तब वह ननदोई का सहारा पकड़ती है—

'खइली में बासी मछली रहि गेल पेट ननदोसिये सिरवा ढारवइ न
पियवा विदेस ननदोसिये सिरवा ढारवइ न'

ऐसे गीत गाकर प्रायः भाभियाँ और ननदें एक-दूसरे के साथ मजाक करती है, इनमें वास्तविक घटनाओं का उल्लेख नहीं होता। ये गीत सिर्फ इस तथ्य को उदाहृत करते हैं कि दमित वासनाएँ किस प्रकार गीतों में प्रकट होतीं हैं।

लेकिन दमित वासनाओं का ऐसा विस्फोट सिर्फ भावनात्मक धरातल पर ही नही, वास्तविक जीवन में भी होता है। लोकगीतों मे इस तथ्य का भी उल्लेख मिलता है। देवर के साथ हास-परिहासपूर्ण प्रेम-क्रीड़ाओं के चित्र तो मिलते ही हैं, कहीं-कहीं यह प्रेम-क्रीड़ा गंभीर रूप धारण कर लेती है। पति से कम उम्र का होने के कारण देवर की ओर भाभी का आकर्षण स्वाभाविक है। दूसरी बात, सामाजिक प्रचलन के अनुसार भी देवर के साथ हास-परिहास की छूठ भाभी को रहती है। जहाँ स्त्रियों को जेठ की परछाई से भी बचने को कहा गया है, वहीं देवर के साथ बहुत हद तक उन्मुक्त व्यवहार करना समाज-स्वीकृत है। यहाँ यह उल्लेख्य है कि परम्परागत रूप मे समाज मे पति के साथ भी उन्मुक्त व्यवहार करने की स्वच्छन्दता नारी को नही प्राप्त रही है। पति को पूज्य और श्रेष्ठ मानकर उससे विनीत व्यवहार करना ही पत्नी का आदर्श समझा जाता रहा है। फलतः पति से वह खुलकर अपना सुख-दुख नहीं कह पाती। तब स्वभावतः देवर ही उसका ऐसा सखा बन सकता है जिससे वह मन की बात खुलकर कह सके। अतः देवर-भाभी का परस्पर सम्बन्ध निकट और घनिष्ठ हो जाता है। कभी-कभी यह निकटता सामाजिक मर्यादा के बन्धन को तोड़ बैठती है और देवर प्रेमी की भूमिका ग्रहण कर लेता है। लोकगीत की एक भाभी शिकायत करती है—

'कंगना पहिरि हमें सुतलो अंगनमा देवर बे पापी लूटले रे जौवनमा
काहे तूहूँ देवरा हो लूटलऽ जौवनमा से पिया आयू लहरा रे लगइवइ'

लेकिन शिकायत का, उपालम्भ का यह स्वर इतना मधुर है कि देवर की ओर भाभी का आकर्षण भी व्यजित हो जाता है।

दूसरे लोकगीत मे देवर और भाभी का गोपन प्रेम-व्यापार मूर्त्त रूप धारण कर लेता है। बारह वर्षो के बाद जब नायिका का पति परदेश से घर लौटता है तब नवजात शिशु को देखकर चौंक उठता है। पत्नी से वह बच्चे के विषय मे प्रश्न करता है किंतु पत्नी बहाने पर बहाने बनाती जाती है।

आकुल पति लेकिन इन वहानो से कैसे शांत हो ? इसलिये वह पूछता ही जाता है। अन्त में पत्नी को कहना पड़ता है कि उसकी गोद का शिशु देवर की संतान है।

सामाजिक मर्यादा और आदर्श की दृष्टि से उसके इस कृत्य को अनुचित कहा जायेगा लेकिन अनुचित होने पर भी यह कृत्य अप्रकृत नही है। लेकिन स्थिति की दयनीयता है कि वह किसी की थोडी सी भी समवेदना प्राप्त नही कर पाती।

पर-पुरुष के साथ सम्बन्ध के उल्लेख अन्य कई गीतो मे मिलते हैं। एक लम्बे आख्यानात्मक गीत मे मैना नामक स्त्री का पर-पुरुष के साथ प्रेम वर्णित है।

इन गीतो के प्रमाण पर हम यह कह सकते हैं कि किसी भी देश-काल के समाज मे अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों रहती है। यह मानव-स्वभाव की भी विशेषता है। मनुष्य सोचता है आदर्श की वाते लेकिन व्यावहारिक धरातल पर उस आदर्श को उतारना उसके लिये सभव नही हो पाता। उसकी अपनी सीमाएँ है, मानव-सुलभ कमजोरियाँ है, जिन सीमाओ और कमजोरियों के कारण ही वह मनुष्य है, देवत्व तक नही पहुँच पाता। समाज मे थोड़े से आदर्श पुरुष सभी युगो मे विद्यमान रहते है लेकिन वे समाज की साधारणता का प्रतिनिधित्व नहीं करते। समाज तो सीमाओं और कमजोरियो से घिरे हुए साधारण मनुष्यो से बनता है। वे साधारण मनुष्य आदर्श बनने का प्रयत्न करते है लेकिन अन्त मे साधारण बनकर रह जाते है।

लोकगीत जीवन के सच्चे साथी होते है। इससे वे अच्छाई और बुराई, आदर्श और यथार्थ, दोनों को साथ लेकर चलते है। यही कारण है कि लोक-गीतो मे जहाँ एक ओर चारित्रिक निष्ठा वाली सती स्त्रियो के उदात्त चित्र प्राप्त होते है तो वही दूसरी ओर उनमे सामाजिक आदर्श के स्खलन के चित्र भी मिलते है। ●

(बिहार विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. उपाधि के लिये स्वीकृत लेखिका के 'वज्जिका के लोकगीत : वस्तुतत्व तथा रसतत्व का विश्लेषण' शीर्षक अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध से)

वज्जिका काव्य में प्रेषणीयता

—निर्मल मिलिन्द

कविता हृदय की गहराई से निकली हुई वह अभिव्यक्ति होती है जो सुश्रोता या सुपाठक के हृदय में उतनी ही गहराई तक पहुँच जाने में समर्थ होती है—मैं मोटा-मोटी तौर पर कविता को यही समझ पाया हूँ। गुण की दृष्टि से विद्वानों ने अलग-अलग बहुत राग अलापे हैं मगर वे सभी प्रायः इससे सहमत हैं कि कविता के लिए ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण होने चाहिए। मगर सबसे आवश्यक यह है कि कवि जो कहना चाहता है, उसे पाठक या श्रोता तक अविकल रूप में अवश्य पहुँच जाना चाहिए। कविता का यह गुण उसकी प्रेषणीयता कहलाता है।

वज्जिका कविता में अन्य लोक-भाषाओं की तुलना में कम प्रेषणीयता नहीं है। यह निर्विवाद है कि लोक-भाषाओं मे अन्न-पानी और माटी की गंध होती है और इसी से उनकी प्रभविष्णुता में अन्तर होता है। मुझे यह लिखते हुए जरा भी संकोच नहीं है कि वज्जिका का लिखित साहित्य अभी उतना विकसित नहीं है मगर इसका लोक-साहित्य जो कंठों में सुरक्षित है चाहे वह किस्सों के रूप में हो या लोकगीतों के रूप मे, अपनी उपलब्धियों में किसी लोकभाषा के साहित्य से कम नहीं है। वे प्रभावकारी ढंग से जन मन को मथ सकते हैं, आन्दोलित कर सकते हैं।

वज्जिका का क्षेत्र सारा मुजफ्फरपुर जिला, दरभंगा का समस्त समस्तीपुर सबडिविजन, दरभंगा सदर का पश्चिमी भाग, सोनपुर से लेकर नेपाल की तराई और चंपारण का पूर्वी भाग है। मैं इस तथ्य को इन्कार नहीं करता कि पूरे क्षेत्र मे क्रियापदों में थोड़े बहुत मामूली से अंतर हैं। मगर समग्र रूप से इस भाषा मे लिखी गयी रचनाओ की प्रेषणीयता मे कभी शंका नहीं की जा सकती। यह भी सच है कि वज्जिका के रचनाकारो को यथेष्ट प्रोत्साहन के लिए कोई विशेष अवसर प्राप्त नहीं है—न तो राष्ट्रभाषा परिषद् ही हमारा सवाल सुनने को तैयार है न हमारे भाषा-भाषी ही बहुत संवेदनशील हैं। श्री रंगशाही द्वारा सम्पादित वज्जिका को छोड़कर अभी ४ पत्रिकायें वज्जिका में हैं – 'वज्जी भारती' (सम्पादक—चंद्रमोहन) 'समाद' (सं०—देवेन्द्र राकेश) और 'सनेस' (सं०—निर्मल मिलिन्द)। एक 'वज्जिका साहित्य' निकाली है रमण शांडिल्य ने। हाँ, हिन्दी साप्ताहिक 'उत्तर विहार' (संपादक,

श्रीरामरीझन रसूलपुरी) में अवश्य ही वज्जिका को पर्याप्त अवसर मिलता है। वज्जिका की प्रकाशित और प्रकाश्य पुस्तकों की सूची रमण शांडिल्य के उक्त विहार के स्वाधीनता अक '७० मे छपे लेख मे दी गयी है।

जहाँ तक वज्जिका की प्रेषणीयता का प्रश्न है, कुछ उपलब्ध उदाहरण ही प्रस्तुत कर सकूंगा। इतना स्पष्ट कर दूँ कि अनेक कवियो की रचनाएँ इससे अधिक प्रभावोत्पादक हो सकती है। ये उदाहरण मात्र बानगी के लिए प्रस्तुत है।

वैशाली गौरव पर लिखे गये गीत एक पवित्र सास्कृतिक गध पसारते है। श्री मुनीश्वर राय मुनीश की रचना—

"ई हइ करमभूमि गओतम के, दुनियां झुकावे माथा,
ई हइ जन्मभूमि महावीर के, सगरो फइलल गाथा।"

और रमण शाडिल्य की—

"खंडहर बइशाली के आइओ बतावले,
जन जन के, गन के सनेस :"

के साथ ही—

'फेरू लगओले हओ घातक जे वर्षकार,
हुनको के भेजऽ सनेस।'

आदि पंक्तियाँ वैशाली गौरव के निर्वाह का सकेत देती हैं।

रमण शांडिल्य की सबो की समृद्धि की कामना करने वाली ये उदार पंक्तियाँ—

'जन जन के चाही अप्पन भासा, घर दोआर
खतम आब करऽइ भरम, इ अहार।'

एक आदर्श की ओर अभिमुख है।

भक्ति के गीतो की ओर मैने कुछ विनीत प्रयास किये हैं—

'चरन गहे के रखउ लाज, गिरधारी हो'

या

'भोले बाबा हो कथी ला न तकइछ हमर कसर कोन भेल ?'

प्रो० उमाकान्त वर्मा का वीर रस का एक मुक्तक देखने योग्य है—

"गम के बात न कहऽ जोस के गीत गावऽ
सीख उदासी के लहर, आग के राह आवऽ
ई घुमरघन जे ईहाँ छुअइल हय मंगवा के
खाके ईआ के कसम नूर के गरदन छाव।"

भारत-चीन युद्ध के प्रसंग को लेकर पाक घुसपैठ के संदर्भ में लिखी गयी मेरी ये पंक्तियाँ—

'चिनिया करतइ हमला आ पकिस्तनियाँ घुसपइठ,
इ धौ पुट्टा चढ़ल जवानी कइसे रहतइ बइठ,
हम त लड़वे करवइ हो,
न हम दुनियाँ से डरवइ हो।'

लोकप्रिय हुई थी।

श्री रामानन्द के गीतों में वह बारीकी और तरलता है जो सहज ही शब्दों से प्राणों तक फैल जाती है। बेटी की विदाई से सम्बद्ध 'रे कहरवा' की ये पंक्तियाँ—

'सास मोरा डांटे लागी,
ननद कुढ़ावे लागी,
गोतनी समुझ घर भार रे कहरवा।'

मर्मस्पर्शिनी हैं। इसी सग्रह 'विहाग' का दूसरा उदाहरण भी महत्त्व-पूर्ण है—

"घरवा के धरन में हिलुआ लगओले,
कि सुबुकि-सुबुकि गोरी गाय,
सबके बलमुआ घरे-घर आएल
कि हमरो बलमुआ न आय।"

वर्षा से सम्बन्धित कुछ गीतों की कड़ियाँ भी देखने योग्य हैं। देवेन्द्र राकेश के गीत मे वर्षा से शिकायत है कि—

'इ चाल हमरा बदरा के तनिको न सोहाए,
देलक हमरा चुनरी के पूरा भिजाय।'

तो रघुनाथ विमल बेदर्द बादलों से अलग नाराज हैं।

"कहईं फसिल सूखल रउदी से,
कहईं दहा देलक दाही,
कहईं पकरल मछुआ-छौरी,
सबतर मचल तबाही।"
उमर धुमर घहरावे बदरा धरती के मन तरसल रे,
बरखा के दिन बीतल जाइअ तइओ बूँद न बरसल रे।"

और पंकजसिंह लिखते हैं—

'प्रिय, हम बिना भिजले भींज गेली।'

वर्षा ऋतु है, नायिका परेशान है। मेरा कवि कारण यहीं बताता है कि—

"झिरझिर बरखा में सपना जे पौडे,
कि सिसके परान,
हाय राम बान मारे तान के, वेआर।"

हास्यरस के आचार्य श्री 'जीवन' जी की रचनाओ के अलावा व्यंग्य के प्रसिद्ध रचनाकार श्री चौपटानन्द की कुंडलियाँ किसी भी साहित्य के लिए गौरव की चीजे है। उनकी कृति "चन्द्र पर चालीसा" के अंश द्रष्टव्य है—

"नारी के हय राज, उलट हय गेल जमाना,
कान मरद के काट रहल हय आज जनाना।"

और—

"परते एक्के हाथ न लागत लुच्चा लंङा,
चुरइन जेकरा धरे होय लाठी से चंङा।"

एवं—

"चार पदारथ इहे चार कुरसी के पउआ,
कुरसी विना न पूछत कन्तो कागो कउआ।"

प्रभावशाली मुक्तक (सुरेशप्रसाद 'अचल'), सॉनेट (भैरवानन्द), गजल (निर्मल मिलिन्द), अनुकान्त (रमण शांडिल्य), गीत (उमाशकर वर्मा) आदि सभी प्रचलित विधाओ मे रचनाएँ लिखी जा रही हैं।

चंदनकृष्ण चन्द्र की एक जिज्ञासा वोध की कविता देखने योग्य है—

"जिनगी के नाम पर
खरा कएल गेल हय कि
अबोध वालक के तमासा।"

शशिभूषणकुमार सिन्हा की यह रचना उद्वोधक रचना है—

"सुतले-सुतले जुग वीतल,
एतना अब सोचे के होयत,
लड़िका अव जमान भेल,
जागू न विहान भेल।"

नयी पौध मे राजेन्द्र सरोज, राकेश तिवारी, व्रजनन्दन वर्मा आदि से आशाये है। व्रजनन्दन वर्मा की ये पंक्तियाँ कितनी ग्राह्य हैं—

"कहे के हओ जे तोरा, साफ साफ बोलऽ
कनखी चलाके न मन के तरसावऽ,
कनखी से हमरा के मत तू बोलावऽ।"

वज्जिका काव्य जगत् को पनसोखा के कवि मनाजीत जी, सोने की बंशी लिए डॉ. अरुण, सत्यदेव नारायण अष्ठाना, प्रो. निशांतकेतु, डॉ. अजित गुरुदेव, डॉ. दीन, विन्ध्यवासिनीदेवी, योगेन्द्र गंगावाल, चन्द्रशेखर श्रीवास्तव, रामकिशोरसिंह किशोर, चन्द्रशेखर विकल आदि सुकवि उपलब्ध हैं। नयी पीढ़ी भी इस ओर अग्रसर हो रही है; यह और शुभ लक्षण है।

वज्जिका के रचनाकार

—रमण शाण्डिल्य

वज्जिका (वैशालिका : प्राचीन वज्जि महाजनपद की लोकभाषा) अव भी एक उपेक्षित जनभाषा है। इसकी ओर न तो सरकार का ध्यान गया है और न हिन्दी की श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओ का ही। मैथिली विस्तारवाद की कुहेलिका में अपना क्षीण प्रकाश फेकती यह अग्रसर हो रही है। मार्ग मे जन-पदीय आन्दोलन के प्रवर्तको का स्नेह-सम्बल इसे प्राप्त हुआ है।

इसका अपना विशाल लोकसाहित्य तो है ही आधुनिक साहित्य भी क्रमश: प्रकाश मे आ रहा है। वस्तुत: यह गगा नदी के उत्तर बूढ़ी गडक के पूर्व कमला के पश्चिम एवं नेपाल के एक बहुत बड़े भू-भाग मे बोली समझी जाती है। तिरहुत जिसका पूर्व नाम तीरभुक्ति है वह प्रदेश वज्जिका की मूल भूमि है। राम, सीता, बुद्ध, महावीर, अम्बपाली; वज्जि लिच्छवि से अनु-प्राणित यह भूमि अब भी अवहेलित है। जगत-जननी सीता की मातृभाषा तो मूल रूप मे यही है। मेरा दृष्टिकोण यहाँ वज्जिका रचनाकारो के सम्बन्ध मे तथ्यपरक सामग्री प्रस्तुत करने का है। मैथिली विस्तारवाद पर तो मैंने लिखा भी है एव उसके लिए अलग से एक पुस्तक का प्रणयन कर रहा हूँ।

सर्वश्री डॉ० अजितनारायणसिंह 'तोमर'—गाँव मण्डई डीह (मु० पुर), जन्म—२१ जून, १९२५ ई०, वज्जिका के आदि लेखक, कवि, कहानी-कार होने का गौरव आपको ही प्राप्त है। १९५२ ई० में आपने अपनी कविताएँ 'साप्ताहिक कांशी' में प्रकाशित करवाई थी। बाद मे १९६१ मे उज्जैन में होने वाले अखिल भारतीय लोक-संस्कृति सम्मेलन में 'वज्जिका भाषा : मुहावरे और कहावतें' शीर्षक निबन्ध का आपने पाठ किया।[1] 'परतछ के परमान की' आपकी वज्जिका कहानियों का सग्रह है।[2] आप विविध विधाओ मे साहित्य-सृजन कर वज्जिका-साहित्य-भंडार को भर रहे हैं। कृतियाँ—१ दर्जन से ऊपर।[3] शेक्सपीअर और डब्ल्यू. बी. ईट्स

---

१. नईधारा (बेनीपुरी-स्मृति-अंक) वर्ष २०, अङ्क १–५, पृ० ३-४।

२. वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० ३४।

३. वज्जिका के रचनाकार—रमण शाण्डिल्य।

की अंग्रेजी कविताओं के आपने बज्जिका में अनुवाद किये हैं। आपने 'रुबइअल' लिखे हैं। गीत और कविताएँ भी। उदाहरण—

आखिर दम तक साथ न छोरे ई तिरिया के 'माया'।
'तोमर' तनियक भेद बतावें केकर ई हय छाया?

डॉ० अजित शुकदेव—गाँव—रामपुर दयाल (मु० पुर), जन्म—१९३७ ई०। बज्जिका में १९५८ से कविताएँ लिख रहे हैं। 'बज्जिका भाषा और साहित्य' शीर्षक से आपका एक लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित विश्वकोश के १०वें भाग में संकलित है। 'उत्तर बिहार' में आपके अधिकतर गीत प्रकाशित हुए हैं। बज्जिका के सम्बन्ध में नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'विश्वभारती' आदि में आपने सुन्दर गवेषणात्मक लेख प्रकाशित कराये हैं।[1] आप एक खण्ड काव्य लिख रहे हैं। उदाहरण—

चतरल बड़ के फुनगी-फुनगी, सकल किरिन फेरु मुसकायल
चउरस्ता संझिया के जमकल, फुसुर-फुसुर फेरु बतिआयल।[2]

अवधनन्दनशरण—आप कविताएँ और आलोचना के क्षेत्र में कार्यरत हैं।[3]

डॉ० अवधेश्वर 'अरुण'—गाँव—बेठउली (मु० पुर), जन्म १९३८ ई० (आश्विन शुक्ल नवमी) आप एक सफल गीतकार हैं। आपने व्याख्यात्मक लेख भी लिखे हैं।[4] एकांकीकार के रूप में भी आपकी ख्याति है।[5] उदाहरण—

मेघवा में धुलल पेर-पतइया, पनिया से दमकत ताल-तलइया,
निखरल धरतिया के रुपवा हो, बदरा के कजरवा।[6]

आपके गीतों का एक संग्रह 'सोना के बँसुरी माटी के गीत' नाम से प्रकाशित हुआ है।

अशोक 'अनुज'—आप श्री निर्मल मिलिन्द के अनुज हैं तथा हैं बज्जिका के युवा रचनाकार।

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी, जिल्द ७१, सं० ३-४, कार्तिक-माघ, २०२३, पृ० ४२५-२८।
२. बज्जिका-गीत-संग्रह—रमण शाण्डिल्य।
३. बज्जिका भाषा और साहित्य—डा० सियाराम तिवारी, पृ० ३५।
४. 'बज्जी भारती' (२), पृ० २४—२८।
५. बुरा न मानू होरी हए! 'बज्जी भारती' (१) पृ० १८-२२।
६. गीत २, 'समाद' (कवितांक) श्रावण शुक्ल १३, सं० २०२७, पृ० ६।

आनन्द 'मणि'—गाँव—महिपा (मु० पुर)। आपने वज्जिका के नये गीतों का सृजन किया है। उदाहरण—

हम कछार पर बइठल, लहर-लहर के गीत-गीत में खोजते रह जाई छी
एगो टीस लेके रह जाई छी।[1]

इन्द्रमोहन मिश्र 'मोहन'—गाँव—कर्त्तार बाजितपुर (मु० पुर)। जन्म—१९३६ ई०। आप 'जन-सेवक', 'जन-विकास', 'जन-दृष्टि', 'कविताश्री', 'सीमा' आदि पत्र-पत्रिकाओ मे लिखते है। उदाहरण—

चलल झड़क बइसाखक पछेआ, गोरी चलल आम के गछिआ।[2]

उमाकान्त वर्मा—छपरा, जन्म—१९२६ ई०। आप मूलतः भोजपुरी भाषा-भाषी है फिर भी आप वज्जिका-सेवा के लिए प्रख्यात है। १९५६ ई० मे ही आपने आचार्य श्री नलिन विलोचन शर्मा के संरक्षण मे 'वज्जिका भाषा और उसका साहित्य' पर शोध कार्य शुरू किया। पीछे चलकर इन्होंने 'संचय' (१) लोकगीत (हाजीपुर क्षेत्र) को प्रकाशित कराया जो वज्जिका लोकगीतो का प्रथम संकलन है। इसके अंत में आधुनिक वज्जिका कविताएँ भी संकलित हैं।[3]

इन्होंने 'राजकुमारी के पेहानी' नाम से एक लोककथा ३ जुलाई, ६१ के 'उत्तर विहार' मे प्रकाशित कराई। इनकी कविताएँ, कहानियाँ 'वज्जिका' (मा०) मुजफ्फरपुर तथा 'रेखाएँ' हाजीपुर मे प्रकाशित है।[4] उदाहरण—

गम के बतवा न कहऽ, जोस के गीतवा गावऽ,
सोख उदासी के लहर आग के रहवा आवऽ।[5]

प्रकाशित पुस्तक—'सचय' (१) व लोकगीत (हाजीपुर क्षेत्र)[6]
प्रकाश्य—'मेरी वज्जिका रचनाएँ' (गीत, कहानी, एकांकी)।

---

१. वज्जिका साहित्य (1)—रमण शाण्डिल्य।
२. हम्मर ई गाँओ : हम्मर ई देस—रमण शांडिल्य।
३. वज्जिका के रचनाकार।
४. पत्र—उमाकान्त वर्मा का—र० शा० के नाम, दि० ६-६-६९।
५. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य।
६. सम्पादक उमाकान्त वर्मा : विश्वनाथसिंह, प्र०—संगीतनाट्यशोध मंडल, हाजीपुर, १९५९ ई०, पृ० १०—७०, मू० १ रु०।

उमेशकुमारसिंह—हाजीपुर, जन्म—२ जुलाई, १९४५ ई०। कहानियाँ, कविताएँ, इन्टरभियूज एवं रेडियो वार्ताएँ क्षेत्र में विशेष रूप से प्रतिष्ठित है। आपका कथाकार कहता है—'अब में रोज ही जलूस की हवा मे उछलती मुट्ठियाँ, उनके शब्द और आक्रोश देखता हूँ, अस्पताल और कालेज के शौचालयों में खून से सने कपड़े, परिवार नियोजन केन्द्रों पर कन्ट्रासेप्टिव और फोम हैक्लेट के लिए फैलती भीड़ देखता हूँ और अनायास ही पाता हूँ कि यही सब चीजो ने तो मुझे कहानीकार बना दिया है।[1]

आपका कहानीकार भविष्य की बहुतेरी सम्भावनाएँ बटोरे हुए है अपने में।

उपारानीसिंह—आप वज्जिका में कविताएँ, कहानियाँ तथा लेख लिखते है।

कपिलदेवसिंह—गाँव—रानीपोखर (मु० पुर) जन्म १९४५ ई० (फाल्गुन कृष्ण द्वादशी) कविताएँ और कहानियाँ लिखते हैं। उदाहरण—

पहर रात बितलइ, कऽते रात बितलइ ?
अबइ झिंगुरवा के शोर, पिया नहीं आएल।[2]

कवीश्वर ठाकुर—आप अहियारी ग्राम (दरभंगा) निवासी है। आप भाषा सम्बन्धी लेख लिखने में सक्षम हैं।

कन्हैयाशरण—आप मूलतः पत्रकार है। आपने 'आईना' (मासा० मु० पुर) के द्वारा वज्जिका की सेवा की है।

कामेश्वर तिवारी—आप सीतामढ़ी से 'भारती' पत्रिका निकालते थे।

अलकापुरी—कवि और कहानीकार। सीतामढी क्षेत्र के निवासी।

कुमुद—गाँव—मखन, जन्म १९४१ ई० की गर्मी। आप हास्यरस के ख्याति-लब्ध कवि श्रीरामजीवन शर्मा 'जीवन' की सुपुत्री हैं। आप गीत लिखने मे प्रवीणा है। उदाहरण—

कि पोसलऽ रऽ जेकरा तूँ एतना जतन से
गिरल टूट तारा ऊ साँझे गगन से
न रोअऽ मुसाफिर, ई दुनिया में केकरो
कहानी कभी आज ले साँच न भेल
सपरते-सपरते कतेक बात रह गेल।[3]

---

१. वज्जिका साहित्य (२) (खिस्साङ्क)—रमण शाण्डिल्य।
२. वज्जिका गीत-संग्रह—रमण शाण्डिल्य।
३. वज्जिका-गीत-संग्रह—रमण शाण्डिल्य।

कुलकिङ्कर—आप जनकपुर रोड के निकट झझिहट ग्राम-निवासी हैं। हिन्दी और वज्जिका दोनो मे ही आप लिखते हैं। आपने 'विहार राष्ट्रभाषा परिषद्' को वज्जिका की हजारों लोकोक्तियाँ समर्पित की थी। जिसका पारिश्रमिक भी आपको मिला था।[1]

कृष्णचन्द्र वत्स—आप महुआ थाना निवासी हैं। हिन्दी में तो आप लिखते ही है वज्जिका को भी आपकी सेवाएँ अर्पित हैं।

कृष्णजीवन भट्ट—आप मूलतः कवि हैं।

डॉ० कृस्णनन्दन 'पीयूष'—आप कहानीकार थे। आपकी मृत्यु से वज्जिका की अपूरणीय क्षति हुई है। 'गंडक में उठन्न हिलोर' के लिए आपकी रचनाएँ मुझे नही प्राप्त हो सकी। आपने लिखा था—

११-३-६६, भागलपुर-५

प्रिय शांडिल्य जी,

'........यदि आपको समयाभाव नही हो तो मुझे इस महीने के अंत मे पुनः स्मरण करा देंगे, मैं प्रयत्न करूँगा।

'कृष्णनन्दन 'पीयूष'

श्रीरंगशाही के प्रयत्नो से ही आपने वज्जिका में लिखना प्रारम्भ किया था।[2]

कृष्णानन्द शर्मा—आप 'सिवाई पट्टी' ग्राम (जि० मु० पुर) निवासी हैं। आपने वज्जिका मे अनेक छदों में कविताएँ लिखी है। 'व्रजभाषा' और हिन्दी मे भी आप छद रचना कर लेते है।

केशरी जी—आप लालगज निवासी हैं तथा मूलतः कवि हैं।

गंगेशनारायण शर्मा—गाँव—अहियारी (जि० दरभंगा)। आपने लेख लिखे हैं।

चन्दनकृष्ण चन्द्र—गाँव—महियारा (मु० पुर), जन्म-१९ मार्च, १९४७ ई०। वज्जिका का सशक्त हस्ताक्षर। आप एक साथ कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, एकांकी, लेख आदि विधाओ में साहित्य-सृजन कर रहे हैं। उदाहरण—

> एगो साथ ला घुमक्कड़ हम
> पर जहाँ-जहाँ गेली, गर गेल आँख में लकड़ी
> सुनली हर जगह—खुरपी के विआह में हँसुआ के गीत
> सभ दोस-दुसमन के भर गेल आँख के पानी।[3]

---

१. श्री कुलकिङ्कर जी का १८-८-६६ का पत्र।
२. वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० ३५।
३. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य।

प्रकाश्य कृतियाँ—१. गरमायल दिन अओर सोरम (कविता-संग्रह) २. वज्जिका हिन्दी-मैथिली शब्दकोश, ३. वज्जिका के बिखरे गीत ४. वज्जिका एकांकी संग्रह ।[1]

चन्द्रकला शाही—आप विविध विषयों पर लिखती हैं। आपकी रचनाएँ 'वज्जिका' (मा०) मुजफ्फरपुर में छपी हुई हैं।

चन्द्रकेतु नारायण सिंह—आप कहानी, लेख, रिपोर्ताज आदि लिखते हैं।[2]

चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्त केतु'—गाँव—वैशाली, जन्म २३ मार्च, १९३८ ई०। आप एक साथ कवि, कहानीकार, लेखक हैं। आपने वज्जिका पर शोध कार्य किये हैं जिससे अनेक रहस्यों, तथ्यों का उद्‌घाटन होता है।[3]

उदाहरण—

नद्दी के बहइत पानी पर अई खेल सब के चहे बनत न रहत
लहर एकरा बहा ले जाएत, जनइत हती—किछार के
बालू पर—तिरिपती के चेन्ह उगल न रहत ....
तइयो असतित के कुच्ची से खीचइत हती एहन रेखा सब,
बार-बार कइला ऽ न जनइत हती।[4]

चन्द्रकिशोर भारद्वाज—गाँव—रतवारा, जन्म—२० अक्तूबर, १९४५ ई० आप वज्जिका और हिन्दी दोनों में कविताएँ लिखते हैं। उदाहरण—

प्रभु जी विनय करइले कल जोरि
आई मनुस के मुदइ मनुस हए;
सब स्वारथ में लागल, आई मनुस के हिरदय बीच में
रक्त पिपासा जागल।[5]

चन्द्रभूषण तिवारी—आप हस्तीटोला (गाँव) जिला सारन निवासी हैं। वज्जिका में कविताएँ और गीत लिखते हैं।

---

१. वज्जिका आन्दोलन की अंतःसलिला सरस्वती—रमण शाण्डिल्य। 'उत्तर बिहार' १७ अगस्त ७० ई०, वर्ष १७, अंक ३२-३३, पृ० १९-२३
२. धूरा लग के गप्प—च० ना० सिंह, वज्जी भारती (१) पृ० १२-१५।
३. श्री निशान्तकेतु का १३-९-६६ का मेरे नाम लिखा गया पत्र।
४. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य।
५. करुण-पुकार—चन्द्रकिशोर भारद्वाज, 'समाद' जेष्ठ कृष्ण १२, संवत्, २०२७, गोटा २, पृ० ५।

चन्द्रमोहन—आपने 'व्रज्जी भारती' का प्रकाशन कर सोये वज्जिका-भाषियों को जगाने का स्तुत्य आयोजन किया है। हालाकि अब तक इसके तीन ही अंक निकले है। फिर भी जागृति की लहर चारों ओर फैल गई है।

चन्द्रशेखर तिवारी 'आलोक'—आप राघाउर ग्राम (जि० मु० पुर) निवासी हैं। आप हिन्दी और वज्जिका मे कविताएँ लिखते हैं।

चन्द्रशेखर 'विकल'—गाँव—हरनहिया (मु० पुर)। आप कवि और कहानीकार हैं। उदाहरण—

फागुन सरकला पर चइत मुसकायल
ठनकल बसुरिया के पोर
जिनगी में जूट गेल रतिया गुमानी
चमकत इजोरिया के भोर।[1]

आप शिवहर थाना मे वज्जिका विकास के लिए संगठन स्थापित कर रहे हैं।

चन्द्रशेखर श्रीवास्तव—जन्म—३ जुलाई १९३९ ई०। आप शिवहर थानान्तर्गत परसौनी ग्राम निवासी है। आप वज्जिका की सभी विधाओं मे लिखते हैं। वज्जिका की सतीत्व-रक्षा की आपको ज्यादा चिन्ता है। आपकी कुछ रचनाएँ यत्र-तत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है। आपसे वज्जिका आन्दोलन को बल मिल रहा है।[2]

उदाहरण—

हम विहार में सबसे पहिले सीता जी के लेले अइती
दुनिया में हम सबसे पहिले गणतंत्र के नोत खिलइती।[3]

चौपटानन्द—गाँव—खबड़ा, जन्म—१९२० ई०। श्री शिवचन्द्र ओझा ही वज्जिका के चौपटानन्द है। आप एक साथ हिन्दी, वज्जिका और भोजपुरी मे लिखते है। आप वज्जिका में कुण्डलियो की रचना कर साहित्य भंडार को भर रहे हैं। उदाहरण—

'भोंटर के घर बनल आज हय कासी काबा
लोग गरज बस गदहो के कहइअ बाबा।'[4]

कृतियाँ—चउपट चालीसा, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री।

---

१. **वज्जिका-गीत-संग्रह—रमण शाण्डिल्य।**
२. **'वज्जी भारती' (१), पृ० २५, व० भा० (२)—पृ० ४–६।**
३. **वज्जिका साहित्य (१)।**
४. **साहित्य समीक्षा : उत्तर विहार (१ मार्च, १९७१ ई०) पृ० १०।**

जगदीशप्रसादसिंह—गाँव—कविया (जि० मुंगेर)। आप कहानियाँ लिखते हैं।[1]

स्व० जगदीशानन्द शर्मा—आप सिवाईपट्टी ग्राम के निवासी थे। संस्कृत साहित्य का अनुवाद आपने वज्जिका में किया था तथा आपने मौलिक रूप से पद्य साहित्य का भी निर्माण किया जो अप्रकाशित है।

जगन्नाथ प्र० 'नवनील'—आप हाजीपुर अनुमण्डलान्तर्गत धर्मपुर ग्राम निवासी है। आप वज्जिका में रचनाएँ करते हैं।

जगन्नाथ प्र० साह—लालगंज निवासी। साहित्य रचना के अतिरिक्त वज्जिका आन्दोलन को आपसे वल मिला है।

जयकान्त शर्मा—धर्मागतपुर वथुआ (दरभंगा) निवासी। आप विहार विश्व-विद्यालय के अंतर्गत 'मुजफ्फरपुर जिले की वोली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर शोध कर रहे हैं।

जयकुमारसिंह 'व्यथित'—गाँव—दरिहारा (छपरा)। जन्म १९४५ ई०। आप कविताएँ लिखते हैं तथा कहानियाँ भी। 'हंसवाहिनी आवे' शीर्षक एक रचना वज्जिका साहित्य (१) में संकलित है।

दिनेश्वर प्र० सिंह 'दिनेश'—आप कविताएँ और कहानियाँ लिखते है। 'उत्तर विहार और 'वज्जी भारती' में आपकी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। वज्जिका आन्दोलन के एक झंडावरदार।

देवेन्द्र राकेश—गाँव—पताही (जि० मुजफ्फरपुर)। आप कवि और नाटक-कार है। 'समाद' (वज्जिका साप्ताहिक पत्र) को प्रकाशित कर आपने एक वहुत वड़ी कमी की पूर्ति की है। वज्जिका पत्रकारिता के इतिहास मे आपका नाम आदर के साथ लिया जायेगा।

कृतियाँ—साँच मे आँच की (वज्जिका नाटक), छिटपुट रचनाएँ।

धीरण श्रीवास्तव—गाँव—चतवारपुर पकडी (मु० पुर)। जन्म—१७ दिसम्बर, १९४७ ई०। आप कविताएँ तथा कहानियाँ लिखते हैं। उदाहरण—

'मतारी-वाप के छाड़े के कुमार वेटी सब आ गेल
एगो एहन मूलूक में—जहाँ वालू के मएदान हए।'

वज्जिका के निर्भीक चिन्तक।

---

1. सिपाही के साहस—जगदीश प्र० सिंह, 'वज्जिका' (मा०) वर्ष-४, अङ्क ४, पृ० ५।

धूमकेतु जी—आप वर्री-वेहरा निवासी है। आप हिन्दी के समादृत कवि तो हैं ही वज्जिका को भी आपका प्यार प्राप्त है।

नगेन्द्रनाथ जी—आप वैशाली निवासी है। हिन्दी के साथ-साथ आप वज्जिका में भी कविताएँ लिखते है।[1] आपने वैशाली के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले लेख भी लिखे है।[2] आप वज्जिका के सजग प्रहरी हैं।

नवल किशोर गौड़—हिन्दी के यशस्वी लेखक साथ-साथ मातृभाषा वज्जिका की सेवा भी।

नवलकिशोर ठाकुर—आप वैंगरा (दरभगा) ग्राम निवासी हैं। मधुवनी सव-डिवीजन मे वज्जिका के ज्योति वाहक।

नवलकिशोर 'नवल'—आप वज्जिका लोक साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं हिन्दी में।

नरेन्द्रदेव कार्पी—आप गंगेया ग्राम निवासी है। आपने वज्जिका लोकगीतो पर हिन्दी में लेख लिखे है।[3]

नगेन्द्र शास्त्री—आप कवि और विचारक है। आपका कार्यक्षेत्र सीतामढ़ी है।

निर्मल मिलिन्द—गाँव—परसौनीवैज, जन्म २४ सितम्बर, १९४४ ई०। वज्जिका के कवि, गीतकार, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, पत्रकार के रूप मे मान्य। 'सनेस' मासिक का सफल सम्पादन। वज्जिका को विकसित और समृद्ध करने वाला जागरूक प्रहरी। मोटो—

> **केकरो कवही न बुराई सपरे के चाही,**
> **दुनिया के लेल जीएके आ मरे के चाही,**
> **चार दिन के जिनगी के कोन ठेकाना है यार,**
> **दुनिया में सब कोई से प्यार करे के चाही।**[4]

प्रकाश्य कृतियाँ—गे कोइली अइमे नगो (गीत-संग्रह), भूलल-फटकल (नाटक), गितिया (उपन्यास)।

प्रकाशित—पिघलइत इस्पात अओर हिरदे के वात—सम्पा०द्वय—निर्मल मिलिन्द, रमण शाण्डिल्य। और भी अन्य कई कृतियाँ।[5]

---

१. वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० तिवारी, पृ० ३५।
२. तुर्की-वैशाली-दर्पण, वर्ष ६४।
३. वज्जिका (मा०) वर्ष-४, अंक-४, पृ० १३-१६।
४. एगो चउपट्टी—निर्मल मिलिन्द, सनेस' (३), पृ० ८।
५. 'उत्तर विहार' ४ अगस्त, १९७० (अंक ३२-३३), पृ० १७,१९,२३।

नीतीश्वर प्र० सिंह—वज्जिका के सबल स्तम्भ।
श्रीमती नीलू सिन्हा—आप लोकगीतों पर हिन्दी मे लेख लिखतीं है।[1]
नन्दकिशोर गुप्त 'महुआवाल'—गाँव—महुआ, जन्म—१ जनवरी, १९४० ई०। आप हिन्दी और वज्जिका की सभीं विधाओ मे लिखते है। उदाहरण—

पिया बिन लागे मोर सुनीरे अंगनवाँ
केकरा ला पेन्हू हम सोना के कंगनवाँ
उजरल सेन्दूर जहिया भेल मोर गवनवाँ
प्रीत के इजरिवाँ इहाँ न फइला
जा कहीं दूर जा।
मोर अँगना चंदा तू मत मुसका॥[2]

नरेश 'नीरव'—आप पहले नरेशकुमार 'नीरव' नाम से लिखते थे। मुजफ्फर जिला निवासी है। आप कवि है। आपके गीत ग्राम्य-जीवन-रस मे पगे होते हैं।[3]
नवलकिशोरसिंह—आप चुटकुले लिखते है।
नवलकिशोरसिंह (एम. पी.)—आप वज्जिका के प्रबल पक्षधर तथा सेवक हैं।
नागदेश गौरीशंकर—आप हिन्दी तथा वज्जिका दोनो मे ही लिखते है।
पंकजसिंह—आप हिन्दी तथा वज्जिका मे कविताएँ लिखते है। रचनापक्ति—

साँझ भेला तू एक टूकरा रउदा ले ले आएला
प्रिय ! हम बिना भिजले भींज गेली ...... ।[4]

पद्मारमण पाठक—गाँव—प्रतापपुर (वैशाली के निकट) जन्म—१० मई १९३६ ई०। वज्जिका के सफल गीतकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे आपने गीत छपवाये है। र० पंक्ति—

ललकी किरिनियाँ चमक लगे, देख महकल भोर
अंगना में मँहकज नेमुआँ गे, हम्मर सजना कठोर।[5]
आपके गीतो का सौदर्य अनुपम है।

---

१. 'वज्जी भारती' (१) पृ० २३-२४।
२. वज्जिका साहित्य (१)।
३. 'भैया-दूज'—नरेशकुमार 'नीरव' 'जन-जीवन' (माह—अज्ञात) वर्ष ६४।
४. आषाढस्य प्रथम दिवसे—पंकजसिंह, 'समाद' आश्विन कृष्ण ६, वि० सं० २०२७, गोटा—६, पृ० ५।
५. गीत—प० पाठक, 'वज्जिका' (मा०) मु० पुर, जुलाई-६६, पृ० १।

श्रीमती प्रतिभा सिंह—(भूतपूर्व एम. एल. ए.)—समर्थ लेखिका।

प्रभा देनीपुरी—गाँव—वेनीपुर, लेख आदि लिखती है। आपके हिन्दी-लेखों मे भी वज्जिका के वाक्य पढने को मिल जाते है।[1]

परमानन्दन शास्त्री—आप सफल अनुवादक हैं। विद्यापति को कृति 'पुरुप परीक्षा' का आपने 'मरद के पहचान' शीर्षक से अनुवाद किया है वज्जिका मे जो क्रमशः 'उत्तर विहार' में छपे है।

बदरीनारायण लाल 'पयोद'—आप मुजफ्फरपुर जिला निवासी हिन्दी-साहित्यकार है। आपकी सेवाये वज्जिका को भी अर्पित हैं।

स्व० बाबा नरसिंहदास—आपकी वज्जिका रचनाएँ व्यग्यपूर्ण तथा ओजस्विनी है। आप उत्तर प्रदेश के निवासी थे।

विशन प्र० सिंह—आप वज्जिका लोक कथाओं के संग्रहकार है तथा निवन्धकार भी।[2]

बिजली प्र० सिंह—हाजीपुर, जन्म—१९३५ ई०। आप कवि है तथा कहानीकार भी। र० पं०—

गौना करा के पिया वनलइ परदेसिया
तब से न एक्को गो भेज्ले चिठिआ
इहमा जब रहे त् बेदरदा मलिकवा
सब दिन सुतौलक उन अपना दरवजिआ।[3]

बिन्देश्वर शाही 'बिकल'—आप दरभंगा जिला के मुरैठा ग्राम निवासी हैं। आप कविताएँ, कहानियाँ, निवन्ध लिखते है।

व्रजनन्दन वर्मा—गाँव—परसौनी वैज, जन्म १९५२ ई०। आप नवोदित कवि है। र० पं०—

वाल-वच्चा वूला आदमी के कइसे कहू कि
न चले के परइअ ?........
रतगरे उठ के घर के सभे काम करेके पड़इअ।[4]

---

१. 'मेरे वावूजी'—प्रभा वेनीपुरी' 'धर्मयुग' (सो० बम्वई) १६ फरवरी, ६९ ई०।

२. वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० ३५।

३. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य।

४. " " "

वेनी प्र० सिन्हा—आप कवि हैं।

र० पं०—

> की कहू हम घर केहाल, फुटल ढोल, न एक्को ताल
> एक घर में तेरह जो त बाट हए, फूटल हम्मर कपार हए।[1]

भगवान प्र० 'कानन'—बैरगनिया, जन्म—अज्ञात। आप हिन्दी तथा वज्जिका दोनों में ही लिखते हैं।

भगवानसिंह—गाँव—विष्णुपुर, आप कवि हैं।

भानुप्रताप—गाँव—चाँदी (जि० पूर्णिया)। आप वज्जिका में १९५७ से ही लिखते हैं। मूलतः गीतकार। र० पं०—

> सोहजन के पात हिले, चितवन के गाँओ तले
> सरगुजा फूल उठल, बउरायल नयन नलिन
> 'सरहुल' भी आयल हए।[2]

भुवनेश्वर जी—हाजीपुर, कविताएं लिखते हैं।[3]

भुवनेश्वर प्र० सिंह—वासुदेवपुर, चन्देल। आप वज्जिका के रचनाकार हैं।[4]

भूपेन्द्र अबोध—आप कवि और गीतकार हैं।

भैरवानन्द—आप वज्जिका में 'सॉनिट' लिखते हैं तथा वज्जिका आन्दोलन के सजग प्रहरी हैं। र० पं०—

> अरे, सुतलो नगल परे हमरो, जगते होय रात भिनसारा
> हम न खविए में आन कूएं में, रही न संचे हम रही जेने।[5]

मथुरा ठाकुर—गाँव—बखरी (जि० मु० पुर)। आप हिन्दी में लेख लिखते हैं वज्जिका भाषा और साहित्य विषयक।

मथुरा प्र० 'नवीन'—गाँव—बड़हिया (मुंगेर), आप कवि हैं।

मदन जी—शिवहर, आप साहित्य की सभी विधाओं में लिखते हैं।

मदनगोपाल 'अरविन्द'—गाँव—पण्डितपुर (सारन), जन्म—१९१० ई०। आप मूलतः कवि हैं।

---

१. 'वज्जी भारती' (२) पृ० ६।
२. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य।
३. पत्र—उमाकान्त वर्मा (९-३-६६)।
४. 'वज्जिका भाषा के लेखक, कवि और उन्नायक' शीर्षक सूची—डॉ. तोमर
५. 'समाद' (कवितांक), गोटा (५), पृ० ५।

र० पं०—

पावस के भोरवा में भरल बदरिया
ओरह के आएल सतरंग चदरिया।[1]

मनीषानन्द सरस्वती—वैरगनियाँ। आप चिन्तक और मनीषी हैं।

महावीर प्र० शर्मा 'विप्लव'—हाजीपुर। आप कवि और गीतकार है। हाजीपुर क्षेत्र में वज्जिका आन्दोलन के ध्वजावाहक।

र० पं०—

धन कुबेर के बंद तिजोरी देस बनल भिखमंगा।
बूँद बूँद ला तरसे जनता आज कैद में गंगा॥[2]

महेन्द्रकुमार वेनीपुरी—वेनीपुर। आप कवि हैं।

मुनीलाल आर्य—सीतामढ़ी। आप मुख्यतः कविताएँ लिखते हैं। सीतामढ़ी क्षेत्र के एक जागरूक कार्यकर्ता।

मुनीश्वरराय 'मुनीश'—गाँव—जलालपुर (जि० दरभंगा)। जन्म—२ जनवरी, १९३१ ई०। आप एक सिद्धहस्त लेखक, कवि, कहानीकार तथा संग्राहक हैं। आपने वज्जिका-लोक-साहित्य पर यथेष्ट काम किया है। १९५८-५९ ई० में आपने हाजीपुर क्षेत्र के वज्जिका लोकगीतों का एक संग्रह 'झांझ के झनक' नाम से प्रकाशित कराया था जिसकी भूरिशः प्रशंसा आचार्य श्री शिवपूजनसहाय ने भी की थी।[3] आपने कभी हाजीपुर क्षेत्र की वोली को 'हाजीपुरी वोली' की संज्ञा से अभिहित किया था। बाद में अपनी कृति 'वज्जिसंघ और वज्जिका-लोक-साहित्य' (१९६८ ई०) में आप वज्जिका नाम पर ही जोर देते हैं जो उचित भी है। इस प्रकार आपकी प्रकाशित कृतियाँ हैं—

(१) झाँझ के झनक (वज्जिका लोकगीतों का संग्रह) १९५८-५९ ई०।
(२) बूझो तो, क्या? (वज्जिका-पहेली-संग्रह) १९६६ साल।
(३) वज्जिसंघ और वज्जिका-लोकसाहित्य (१९६८ ई०)।
(४) वज्जिका-लोक-साहित्य शब्दकोश (प्रेस में)।

र० पं०—

आएल आसिन मास, पियागेल परदेस, सुनु हे सजनी।
दिन दिन परहत निरास, भान चमके अकाश सुनु ……[4]

---

१. समाद (कवितांक) गोटा (५), पृ० १०।
२. ,, ,, ,, पृ० ४।
३. बूझो तो, क्या? (कवर पृष्ठ—३)।
४. वज्जिका साहित्य (१)।

मैथिलीवल्लभ 'परिमल'—गाँव–हनुमान नगर (थाना–सुरसंड)। हिन्दी गीतकार के रूप में आप प्रख्यात हैं ही, वज्जिका में भी लिखते हैं।

मोहनलाल शर्मा (कवि जी)—गाँव—रीगा। आप कवि हैं तथा समाजवादी विचारधारा के संवाहक।

यतीन्द्र—आप कहानियाँ लिखते है।[1]

युगलकिशोरसिंह—गाँव–डुमरी। आप लेखक है।

योगेन्द्र ठाकुर—बघाड़ी। आप एक जागरूक कार्यकर्ता तथा लेखक और विचारक हैं। साथ ही समानता के सिद्धान्त के पृष्ठपोषक।

योगेन्द्र द्विवेदी—दातापुर। आप युवा रचनाकार हैं।

योगेन्द्रनाथ राय—कमतौल। आप नवोदित लेखक हैं।

योगेन्द्र शर्मा—बटारो। आप भी लिखते हैं।

डॉ० योगेन्द्र मिश्र—आप इतिहासविद् हैं। आपकी कृतियों से वैशाली के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। वज्जिकांचल में सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत हैं आप।[2]

योगेन्द्र रसिक—गाँव—ललितपुर। आप कविताएँ लिखते है।

योगेन्द्रराय—गाँव—शेखोपुर टढ़िया। जन्म—१५ अगस्त, १९२३ ई०। आपने शोधपरक निबन्ध लिखे हैं। आपने एकांकी और 'वज्जिका व्याकरण भी लिखे है।[3] आपसे आन्दोलन को काफी बल मिला है।

योगेन्द्र रीगावाल—रीगा। जन्म—१९३२ ई० के आस-पास। आप एक सिद्धहस्त पत्रकार हैं। आपने वज्जिका में गीत लिखे है जिनका रेकर्ड भी बना है। वज्जिका के एक सशक्त रचनाकार तथा सबल स्तम्भ। र० पं०—

> **खिलल कमल सन मुँह कुम्हला गेल**
> **कवन फिकिरिया के मार**
> **केकरा पपेयरवा में नयन बिछौले गोरी**
> **धड़के गधुलिया के डाढ़।**[4]

---

१. 'वज्जी भारती' (३), पृ० २–५।
२. (१) 'एन यर्ली हिस्ट्री ऑफ वैशाली।
   (२) वैशाली पथ प्रदर्शिका।
३. पत्र—श्री योगेन्द्र राय (२६-८-६८)।
४. रेकर्ड (स्टार हिन्दुस्तान कम्पनी)।

रघुनाथ प्र० सिंह—गाँव—महिसौर (जि० मु० पुर)। जन्म—३ अगस्त, १९४२ ई०। आप साहित्य की सभी विधाओं मे लिखते हैं। आपके लेख सुन्दर और प्रभावशाली होते हैं। आपने वज्जिका सम्बन्धी अनेक भ्रांतियों का निराकरण किया है।[1] आपके गीत तत्सम शब्दों से युक्त होते हैं।

र० पं०—**खोल तू ज्योति-द्वार**
सम्मुख ई तम अपार
उज्ज्वल हो गृह द्वार
मधु-स्मृति फैलाव।[2]

रघुनाथ विमल—गाँव—विद्याझाँप (था० ढोली)। आपने गीत लिखे है।[3]

र० पं०—**ललकी किरिनियाँ संग उतरल विहान,**
लालेलाल आसमान।[4]

प्रकाश्य कृति—पनिहारिन (गीत संग्रह)।

रमण—आपकी हिन्दी कृतियो में वज्जिकांचल की धरती मुखरित है। आपके उपन्यासो में वज्जिका के हजारों शब्दो का प्रयोग हुआ है।

रमण शाण्डिल्य—गाँव—जवाही, जन्म—फाल्गुन शुक्ल द्वितीया, शालिवाहन शाके १८६५। वज्जिका की सभी विधाओ को समुन्नत बनाने के लिए संघर्षरत। दो दर्जन से ऊपर कृतियो के सृष्टा।[5] वज्जिका-भाषा-साहित्य विषयक अनेक लेखों को प्रकाशित कराया है भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे। असमिया और वज्जिका का तुलनात्मक अध्ययन साथ ही असमिया से वज्जिका मे अनुवाद भी किया है। 'वज्जिका साहित्य' (मं०) के द्वारा वज्जिका की सेवा। वज्जिका आन्दोलन को शुद्ध सांस्कृतिक आदोलन बनाये रखने के लिए संकल्पबद्ध।

र० पं०—**'गण' अओर 'संघ' के जोत रहे फइलल**
पहिले-पहल जहाँ से
हम ओई धरती के बेटा छी
छोटइत दुरवाच्छत।[6]

---

१. मैथिली—कुछ तथ्य : कुछ कथ्य—रघुनाथ प्र० सिंह, 'कल्पना', फरवरी, १९७१ ई०, (वर्ष २२, अंक २) पृ० ६२-६४।
२. वज्जिका गीत-संग्रह—सम्पा०—रमण शाण्डिल्य।
३. 'सेनुर के लाज' ('समाद' गोटा ५; पृ० १६)।
४. 'समाद', गोटा २, पृ० ५।
५. 'उत्तर बिहार' १७ अगस्त ७० ई०।
६. 'दुखाच्छत'—रमण शाण्डिल्य (आ० मिनी कविता-संग्रह)।

प्रकाशित कृतियाँ—(१) तुरवाच्छत (मिनी), (२) जाग हो वज्जी के सूतल निफिक्किर (मिनी कविता संग्रह)।

प्रकाश्य—अहिल्यायान, नौ बूर धरारी, वज्जिका-कुछ सूत्र : कुछ संदर्भ, वज्जिका के रचनाकार, हरिअर पहाड़ : भूरा मेघ, शरणार्थी, जय वज्जी, असमिया कविताएँ, वज्जिकानुवाद, गंडक में उठल हिलोर, हम्मर ई देश हम्मर ई गाँव, घर के जोगी जोगरा, एगो रजा रहे, केओरा के फूल : चमेली के गंध, नदी जे ठहर गेल रहे, तिनका से मीलू आदि।

इनके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में रचनाएँ यत्र-तत्र पड़ी हुई हैं जिनके संग्रह से कई संकलन तैयार हो जाएँगे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'रवि'—गाँव—पीअर, जन्म—३ मई, १९३८ ई०। मुख्यतः पत्रकार। आपने कितनी ही वज्जिका की लोक-कथाओं को प्रकाशित कराया है।[१] सम्प्रति 'हुँकार' (साता०) के सम्पादक।

र० पं०—अखनी के सरकार आरो कुछ न
जंगली चिरइआ लेखा हए।

राधावल्लभ शर्मा—गाँव—चकिया (जि०—चम्पारन)। आप वज्जिका के प्रबल पक्षधर और सेवक हैं। वज्जिका क्षेत्र पर विचार करने वालों में आप आधुनिकतम हैं।[२] इस सम्बन्ध में आपने विस्तार से लिखा है।[३]

राजेन्द्र प्र० सिंह—गाँव—बेरई, जन्म—१९३० ई०। आप कवि हैं तथा गद्यकार भी। वज्जिका और हिन्दी दोनों में ही आप लिखते हैं। हिन्दी के लेखों में बीच-बीच में वज्जिका के वाक्य भी आप घुसा देते हैं जो लेखों के सौंदर्य में चार चाँद लगा देता है।[४] आप 'वज्जिका शब्दकोष' तैयार कर रहे हैं।

र० पं०—अब हम्मर एतने ममोला—
कि तोहर जिनगी जे दीआ हए
ओकर हम रही कैद,
कैद तेल हो क दराओ,
मगर हम?

---

१. 'उत्तर बिहार' वर्ष १९६८ ई०।

२. वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० २।

३. कांग्रेस-अभिज्ञान-ग्रन्थ, ६७वाँ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, पटना १९६२ ई०, पृ० १३३।

४. 'नई धारा' (बेनीपुरी स्मृति अंक-१-५, १९६९ ई०, पृ० १६४-१७२।

हम ओ दीआ में एक बुन्नी लोर,
जाले दहाइत रही ताले
ओ दीआ के केउ न बुतावे,
केउ न बुतावे ।[1]

आप एक निर्भीक साहित्यकार है जिस पर वज्जिका को गर्व है ।

राजेन्द्र मिश्र—आपके संबंध मे स्व० (डॉ०) श्री रामाशीष जी ने मुझे लिखा था । आप भी लिखते हैं । कार्यक्षेत्र—सीतामढ़ी ।

राजेन्द्र 'सरोज'—गाँव—पताही, जन्म—१९५१ ई० । आप कविताएँ तथा कहानियाँ लिखते है । 'समाद' का सिनेमा संसार स्तम्भ आप ही लिखते हैं । उत्साही और कर्मठ रचनाकार । आपका पत्रकार रूप भी सराहनीय है ।

र० पं०—**डर हए अपने से, पछारी देखइले—**
मन काँप के रह जाइअ आ पीछा करइत रहईअ
हम्मर परछांही ।[2]

प्रकाश्य कृति—इजोरिया रात (कहानी-सग्रह) ।

राजेश्वर प्र० ना० सिंह—सुरसंड । आप वज्जिका के प्राण तथा गौरव हैं । 'अम्बपाली' कविता लिखकर आपने वैशाली की गरिमा को जगाया ।[3]

राम इकबालसिंह 'राकेश'—गाँव—भदई । श्रीराकेश जी लोक भाषाओं के आचार्य है । आपने मात्र विहार की ही नही अन्य प्रदेशो की लोक-भाषाओ पर भी काम किया है । वज्जिका आप जैसे मूर्द्धन्य विद्वान को पाकर गौरवान्वित है ।

रामकिशोरदास—जिहुली (चम्पारन) । जन्म—सम्वत् २००० वि० । आप कवि और लेखक है ।

रामकिशोर 'भावनांसू'—गाँव—सुरजन पकड़ी । जन्म—१९४५ ई० । आप गीतकार और समीक्षक है ।

र० पं०—**रउअर केसवा हे प्यारी, हए अइसन**
जइसन घटा घनघोर
टिकवा के गोटवा त मनवा के मोह लेलक
जानु लइली तरवा के तोर ।[4]

---

१. समाद (कवितांक), पृ० १२ ।
२. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य ।
३. 'वैशाली'—'वज्जिका' (मा०) जुलाई १९६६ ई०, पृ० १७-१९ ।
४. वज्जिका साहित्य (१) ।

रामकिशोरसिंह 'किशोर'—गाँव-परसौनी वैज। जन्म—२१ मार्च, १६३८ ई०। आप कवि और कहानीकार हैं। आप में वज्जिका के लिए अगाध स्नेह है।

र० पं०—**कएलेजा जिनगी में नया नया काम**
भूरा भैल जगे मन के अरमान
उत्तम हई खेती मद्धिम हई बान
निरघिन हई नोकरी भीखत निदान।[1]

रामकृपाल शर्मा—गाँव—चंडीहा। आप वज्जिका भाषा के मर्मज्ञ विद्वान हैं। आप इसके भाषाई गठन की व्याख्या हिन्दी में प्रस्तुत कर रहे हैं तथा वज्जिका व्याकरण पर कार्यरत हैं।

रामकृष्ण पाण्डेय—गाँव—भादो, जन्म—५ जनवरी, १९४७ ई०। आप कवि हैं तथा उपन्यासकार भी।

र० पं०—**आसमान में लाली छाएल, हिया आई हुलसाएल।**[2]

रामकैलास मिश्र—गाँव—गोरगम्मा (दरभंगा)। आप लेख लिखते हैं।

रामचन्द्र 'आशोपुरी'—आपने लोकगीतों की धुन पर गीत लिखे है।

रामचन्द्र भारद्वाज—आप मुख्यतः कवि हैं।

रामजीवन शर्मा 'जीवन'—गाँव—मखन, जन्म—वि० सं० १९६१। आप पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने आकाशवाणी के पटना केंद्र से १९५४ ई० में सर्वप्रथम वज्जिका के संबंध में विचार प्रस्तुत किये थे। आरा से प्रकाशित होने वाली तत्कालीन पत्रिका 'भोजपुरी' में आपने अपनी वज्जिका रचनाएँ छपवाई थीं।[3] आपकी लेखनी वर्षों बाद पुनः वज्जिका की ओर मुड़ी है जो एक शुभ लक्षण है। आपका सम्पूर्ण परिवार ही वज्जिका की सेवा में संलग्न है।

र० पं०—**उखड़े लागल मटर खेसारी**
मिलल मजूरन के बनिहारी
ठंडाबल दिनमा गरमायल
फागुन आयल ? फागुन आयल ?[4]

---

१. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य।
२. वज्जिका साहित्य (१)।
३. भोजपुरी (मा०, आरा) बरिस–१, अंक–७, फागुन ३२९ तु० सं०।
४. फागुन आयल ? 'भोजपुरी' (मा०, आरा) मार्च, १९५४ ई० (वर्ष–२, अंक ८)।

रामनिरंजन शर्मा 'अलख'—कमतौल। आपकी हिन्दी-कृतियो मे वज्जिका के शब्द, वाक्य, मुहावरे भरे पड़े है।

रामपदार्थ शर्मा—आप भाषाशास्त्री है। आपने भी वज्जिका क्षेत्र के सबध मे विस्तार से विचार किया है।[1]

रामप्रवेश 'राकेश'—आपने कहानियाँ लिखी है।[2]

रामप्रीत ठाकुर 'तरुण'—गाँव—सिरियापुर (दरभंगा)। आप नवोदित कवि है।

रामभरोश शर्मा—गाँव—बहेड़ा। आप पत्रकार है।

रामानन्द—गाँव—गोपालपुर, जन्म—१४ नवम्बर, १९४३ ई०। आप मूलतः गीतकार है। गीतो के अतिरिक्त आपने आधुनिक कविताएँ और कहानियाँ भी लिखी है।

र० पं०—**सुहुर-सुहुर सेजिया पर पर निनिया न आयल ह्**
भादो के महीना में देहिया गदरायलह्।[3]

रामानुज सिन्हा—आप कविताऐं लिखते है।

स्व० (डॉ०) रामाशीष ठाकुर—धर्मागतपुर, बथुआ। आपके पत्रो और लेखों से वज्जिका के सबंध में प्रकाश पड़ता है।

रामाश्रय यादवेन्दु—गाँव—सामाचक, जन्म—वि० सं० १९९९। आप कवि और लेखक है, कहानीकार भी।

र० प०— **आयल साओन सुघर महीनवाँ**
बरखे इतर गुलाव के बुनवाँ
हरखित घर-घर में किसनवाँ, जननवाँ गायेना
लोड़ी कजरी के गान जननवाँ गायेना।[4]

रामाश्रय शर्मा 'प्रभाकर'—गाँव—धरमपुर नारायण। आप कवि है।

रामयाद बहादुरपुरी—गाँव—गोरौल। आप एक साथ कवि, कहानीकार, लेखक, नाटककार आदि है। पेशे से पत्रकार हैं। वज्जिका आन्दोलन के प्रमुख ध्वजवाहो में हैं आप। समय-समय पर आपने खुले पत्र लिखे है वज्जिका-भाषा-भाषियों के नाम।[5]

---

१. आर्यावर्त, ३१ अगस्त १९५४ ई०।
२. मुकती के दुआर—'वज्जी भारती' (३) पृ० ७-१२।
३. बिहाग—रामानन्द।
४. वज्जिका-गीत-संग्रह—रमण शाण्डिल्य।
५. 'वज्जिका सम्मेलन आयोजित हो'—रा० या० बहादुरपुरी, 'उत्तर बिहार' १३ अप्रैल, ७० ई०।

रामरीझन 'रसूलपुरी'—आप कवि, लेखक और पत्रकार हैं साथ ही वज्जिका की रीढ़ हैं। 'उत्तर बिहार' एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जो आग आपने जलाई उसने सर्वत्र अपनी ज्योति फैलाई। पण्डित श्री गणेश चौबे का परामर्श मान आप वज्जिका को 'वैशालिका नाम से भी अभिहित करते हैं। आप एक सफल समीक्षक भी हैं। इसके प्रमाण में 'उत्तर बिहार' की सम्पादकीय टिप्पणियों को रखा जा सकता है। आपने मैथिली विस्तारवाद का भी सर्वदा भंडाफोर किया है।[1]

रामविलास—आप कवि हैं।[2]

(स्व०) रामवृक्ष बेनीपुरी—सम्भवतः पौष संवत् १९५८, जनवरी, १९०२ ई०।[3] गाँव—बेनीपुर (थाना कटरा) मु० पुर। आप हिन्दी गद्य के महान शैली प्रवर्तक तो थे ही, वज्जिका के आदि प्रस्तोता भी थे। आपने वज्जिका के हजारों शब्दों को काट-छाँट, तराश कर हिन्दी के भंडार को सम्पन्न किया था। वैशाली की माटी की सोंधी गंध आपके साहित्य में विद्यमान है। आप वज्जिका के प्रथम शब्द-शिल्पी माने जायेंगे। क्योंकि आपसे पूर्व किसी ने अपनी भाषा के शब्दों को इतना महत्व नहीं दिया था। आपकी कृतियों—माटी की मूरतें, झोंपड़ी का रुदन, चिता के फूल, गेहूँ और गुलाब आदि में यत्र-तत्र अनेकों सुन्दर वज्जिका के शब्द बिखरे पड़े हैं।

उन्होंने साफ लहजे में कहा था—"वज्जिका तो मेरी मातृभाषा है।"[4]

रामशरण गुप्त—गाँव—बिसुदपुर बाजार, जन्म—८ जुलाई, १९४३ ई०। आप कवि हैं। आपकी रचनाएँ व्यंग्यपरक होती हैं।

र० पं०—आन्हर हिसका के पीछू
टेरालिङ के कमीज पर हड्डी फट्टी गिनाइअ ......
अच्छा-बेजाए सबके भुलाक्, हाथ में हिरोकट
डाइगर लेले, भारत के नयका नक्सा बनावे ला तइयार हती।[5]

रामसकल विद्यार्थी—जन्म—१४ नवम्बर, १९३० ई०। दरभंगा जिला।

---

१. 'उत्तर बिहार', अंक ३८, २० सितम्बर, ७१, पृ० १।
२. खेते-खेते बनल मेचान—रामविलास वज्जी भारती (३) पृ० ६।
३. 'नई धारा' (बेनीपुरी-स्मृति-अंक) अप्रैल-अगस्त १९६९ ई०, पृ० ४४१।
४. वही, पृ० ३।
५. गंडक में उठल हिलोर'—सम्पा०—रमण शाण्डिल्य, निर्मल मिलिन्द।

आप एक साथ हिन्दी, वज्जिका तथा मैथिली के कवि और गीतकार है। रचनाएँ समाद आदि पत्रो मे प्रकाशित।

र० पं०—**बरखा के पानी बह जायत, वाहव पहिले आरी**
मँहगाई के कादो में ई फँसल देस के गारी।[१]

रामसंजीवनसिंह—गाँव–जिहुली (चम्पारन)। आप एक समर्थ रचनाकार वज्जिका मे आपने अम्वपाली से सम्बन्धित गीत लिखे है। अपकी रचनाओं में तत्सम शब्दों की बहुलता रहती है।

र० प०—**माथ झुकाकर पाँव लग रहल प्रजातंत्र के नेता तोमर**
पदरज दे भगवान करू हे वैशाली के भूमि प बित्तर।
देख रहल आनन्द सदा नीरा के पानी के उफनायल
सुगत चरण के धोयेला वैशाली के आत्मा खखनायल।[२]

कृति—बुद्ध वैशालिक।

डॉ० रामसागर मिश्र—काँठा। आप साहित्यकार है।

ललितेश्वर प्र० शाही—आप बज्जिका के प्रहरी हैं तथा गद्यकार।

लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव—आप द्विवेदी युगीन साहित्यकार है। वज्जिका की सभी विधाओ को समुन्नत करने के आकाक्षी।

लक्ष्मीनिधि—दक्षिण विहार में बज्जिका की ज्योति जगाने वाले प्रथम रचनाकार। आप गद्य लेखक है। वज्जिका के संबंध मे आपके विचार काफी सुलझे हुए है।[३]

लक्ष्मेश्वर प्र० सिन्हा—आप कहानीकार है।[४]

(स्व०) वल्लभानन्द शर्मा—सिवाई पट्टी। आप ब्रजभाषा तथा वज्जिका में पद्य रचना करते थे।

श्रीमती वसुंधरा शाण्डिल्य—गाँव–जवाही, जन्म—वि० स० २००४। मूलतः लेखिका। कहानियाँ लिखती है।[५] वज्जिका लोकगीतों का वृहद् स्तर पर सकलन-सम्पादन किया है।

प्रकाश्य कृतियाँ—वज्जिका लोकगीत (१२ खण्डो मे), गिरहसनी (कहानी-संग्रह), वज्जिका सस्कार--गीत, हुनकर चिट्ठी आदि।

---

१. समाद (कवितांक) पृ० ६।
२. बुद्ध वैशालिक काव्य का अंश, 'तुर्की–वैशाली-दर्पण' मार्च, १९६४ ई०।
३. जागनेल विहान – 'सनेस' (१), नवम्बर, ७० ई०–अंक १, पृ० ४-५।
४. वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० ३५।
५. 'सनेस' (३) पृ० २–७।

विजय अमरेश—गांव–वेला शान्ति कुटीर, जन्म—१९३७ ई०। पत्रकार एवं लेखक। कविताएँ भी लिख लेते हैं एवं कहानियाँ भी।

र० पं०—**एक दिन हमार, सोचिते-सोचिते, सब भाओ**
टूट के बिखर गेल,
केतनो सोचलो, हम वार-वार विनती कइली
मुँह झउँसा मन के भाओ
न उतरल कागज पर।[1]

विजयकिशोर—पत्रकार एवं लेखक।

डॉ० विद्यानाथ मिश्र—वज्जिका के एक सबल स्तम्भ।

श्रीमती विंध्यवासिनी देवी—कवयित्री, लोकगीत संकलनकर्त्री।[2]
प्रकाश्य कृतियाँ – लोकसंगीत सागर, वैशाली महिमा।

र० पं०—**अमवा के डारि से झुमी मजरिया**
धरती के चुमत चरणवा हो राम।
वैसाली के नगरिया।[3]

डॉ० विनयकुमार—वज्जिका के संरक्षक।

डॉ० श्रीमती विनोदिनी शर्मा—गाँव–मखन (जि० मु० पुर)। वज्जिका लोकगीतों पर शोध कार्य करने वाली प्रथम महिला। आपने यत्र-तत्र लोकगीतों पर लेख प्रकाशित कराये हैं।[4]
कृति—'वज्जिका के लोकगीत : वस्तुतत्व तथा रसतत्व का विश्लेषण'।

वीरेन्द्रकुमार वेनीपुरी—गाँव–वेनीपुर। आप लेखक और अनुवादक हैं। आपके हिन्दी-उपन्यासों में भी वज्जिका के हजारों शब्दों को स्थान मिला है। आपने हिन्दी एकांकियों के अनुवाद भी किये हैं।[5]

वैद्यनाथ झा 'प्रशान्त'—आप कवि हैं।

वैद्यनाथ शर्मा—गाँव–पटमारा। आप शोधकर्ता, कवि तथा कहानीकार हैं।[6]

---

१. 'गंडक में उठल हिलोर'—र० शा० नि० मि०।
२. वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० तिवारी, पृ० ३५।
३. 'वज्जिका' (मा०) वर्ष–४, अङ्क ४, पृ० १०।
४. वज्जिका में आध्यात्मिक विरह के गीत—वि० शर्मा, 'फोकलोर' सितम्बर ६४ ई०।
५. शैतान के छाया—वी० कु० वेनीपुरी, वज्जिका (मा०) वर्ष–४, अंक–४, पृ० २–४।
६. 'सनेस' (३), पृ० ४।

शशिभूषणकुमार सिन्हा—आप कविताएँ लिखते हैं।[१]

डॉ० श्यामनन्दन 'किशोर'—आप ख्यातिलब्ध कवि हैं तथा वज्जिका के महान् संरक्षक।

र० पं०—डेहुर-सेकुर के चलल पखेरू अपना घर के ओर
प्रियागोद में सूतल चुप्पे ए धरती के सोर
तू एतना एकान्त-सान्त जेतना धारा के रात।[२]

डॉ० श्यामनन्दनसिंह 'सरोज'—आप कवि हैं।[३]

शिवकुमार सिन्हा—आप भी लिखते हैं।[४]

शिवचन्द्र ठाकुर—गाँव—जवाही, जन्म—वि० सं० २०००। आप लेख और कहानियाँ लिखते हैं। आपकी कहानियाँ ग्राम्य परिवेश को विशेष रूप में मूर्त करती हैं।

शिवदेव शर्मा 'पथिक'—गाँव—दिघरा, जन्म—२ जनवरी, १९३९ ई०। आप लगभग सभी विधाओं में सृजनरत हैं। आपके गीत मोहक होते हैं।

र० पं०—पाकड़ के फुनगी गौरैया के जोड़ी
गावे मिलन मा के गीत
हम्मर सजनमा जे गेल कलकतवा से
बारह बरिस गेलई बीत।[५]

शिवरानी—हाजीपुर। आप कवयित्री हैं।[६]

श्रीकान्त प्र० सिंह—बड़हिया (मुंगेर)। आप कवि और लेखक हैं।

श्रीरंग शाही—शाही मीनापुर। वज्जिका आन्दोलन के चार स्तम्भों में एक। आपके कार्यों से वज्जिका की स्थिति ही सुदृढ़ नहीं हुई बल्कि इसका सर्वाङ्गीण विकास हुआ है। १९६३ ई० में आपने वज्जिका (मा०) का प्रकाशन प्रारम्भ किया जिसके कुछ ही अंक प्रकाशित हो पाये फिर भी जिसने वज्जिका पत्रकारिता के इतिहास में मानदण्ड स्थापित किये।

---

१. 'सनेस' (२), पृ० २।
२. 'वज्जी भारती' (२) पृ० १।
३. वज्जिका : कुछ सूत्र—कुछ संदर्भ—र० शा० 'कल्पना' मार्च, १९७१ ई० पृ० ७४।
४. 'सनेस' (२), पृ० ४।
५. 'वज्जिका' (मा०) मुजफ्फरपुर में प्रकाशित।
६. पत्र—रमाकान्त वर्मा (९-३-६६ ई०)।

वज्जिका लोक साहित्य पर आपने यथेष्ट काम किया है। वज्जिका के अधिकारों की रक्षा में आप सर्वदा सचेष्ट रहे हैं।[1]

'वज्जिका (मा०) को आप पुनः प्रकाशित कर व० आन्दोलन को सक्रिय करना चाहते हैं।

'वज्जिका का लोक-साहित्य' शीर्षक से आपका ग्रंथ अधूरा पड़ा हुआ है।

सभाजीतसिंह - गाँव—बरहरा, जन्म—२ जुलाई, १९२८ ई०। हिन्दी और वज्जिका दोनों में ही लिखते हैं। १९६६ ई० में 'पनसोखा' शीर्षक से आपने गीतों का एक संग्रह प्रकाशित कराया जिसने काफी ख्याति प्राप्त की। आपके गीत शृंगार-प्रधान होते हैं।

र० पं०—**ई अँगना में बरइत रहिहें जबतक दिया इजोर के**
ई मन के सपना भी रहिहे तबतक साथ अगोर के
भोर पहर दुन्नों बुझ जइहें सूना क् के देहरी
साँझ पहर तुलसी चउरा पर एगो बरलइ दियरी।[2]

कृति—'पनसोखा' (गीत-संग्रह)।

सत्यदेव नारायण 'अष्ठाना'—आपका हिन्दी और वज्जिका पर समान अधिकार है। आप जन्मजात कवि हैं। आपने लहेरिया सराय से १९३९ ई० में वज्जिका में एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली थी। १९४५ ई० में 'वैशाली संघ' की स्थापना के समय वैशाली में आपने एक गीत लिखा था जिसका ऐतिहासिक महत्व है। नीचे उसी गीत की कुछ पंक्तियाँ—

आइ हम सुनार हल हती जेगीत जीत के गीत वृज्जीसंघ से मिलल
भट्ट-भट्ट जग जेकरा से पहिल प्रजातंत्र के फूल वृज्जीसंघ में खिलल।[3]

सत्यनारायण झा 'साधक'—आप कवि हैं।

र० पं०—**झिंगुर झन-झन बोले, जिआ रात भर डोले**
कइसे करू हम भोर दुख पहरिया के।[4]

सत्यदेव पाण्डेय—पूमारोड, (दरभंगा जिला)। आप लेखक और समीक्षक हैं। वज्जिका क्षेत्र के सम्बन्ध में आपके विचार बड़े ही स्पष्ट हैं।

---

१. सम्पादकीय—वज्जिका (मा०) जुलाई–१९६६ ई०, पृ० २४–२८।
२. पनसोखा—सभाजीतसिंह।
३. गीत—स० ना० 'अष्ठाना', गंडक में उठल हिलोर में संकलित।
४. 'वज्जी भारती' (३), पृ० १२।

सम्प्रति आप दरभंगा जिला के मधुबनी अनुमण्डलान्तर्गत बैगरा गाँव स्थित हाईस्कूल मे प्रधानाध्यापक है।

डॉ० सियाराम तिवारी—आपने वज्जिका का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। वर्ष १९६४ ई० मे 'वज्जिका भाषा और साहित्य' शीर्षक से आपने एक निबन्ध प्रस्तुत किया था बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के त्रयोदश वार्षिकोत्सव के अवसर पर। इस निबन्ध पुस्तिका से वज्जिका आन्दोलन को काफी बल मिला। वज्जिका के चार स्तम्भो (डॉ० अजित नारायणसिह 'तोमर', श्री श्रीरंग शाही, श्री रामरीझन रसूलपुरी एव डॉ० सियाराम तिवारी) में आप भी आते है। वज्जिका विषयक लेख आप हिन्दी मे लिखते ही रहते है।[1]

आप एक साथ निबन्धकार, आलोचक तथा समीक्षक है।

डॉ० सियारामशरण प्रसाद—आप एक ख्यातिलब्ध साहित्यकार है। आपने संस्मरण लिखे है।

सियावल्लभशरण मल्लिक—गाँव-हनुमान नगर (सुरसंड)। जन्म—२ मार्च १९२३ ई०। आपने कहानियाँ एव कविताएँ लिखी है।

र० पं०—**दुनू साँझ कउल्हा में ऊनक कहिआ पइतई**
कहिआ अनाज से भूखल कोठी भरतई!
कहिआ घूरत दिने दूझ न पड़इअ
एको आँख से न कोई हमरा तकइअ॥[2]

प्रकाश्य कृतियाँ—बाजे ढोल, चीनी चालीसा, धूप-दान, एक रत्ती गूड, चसकल पान आदि।

डॉ० सीतारामसिंह 'दीन'—आप वज्जिका के शोध पुरुष है। कविताएँ तथा कहानियाँ भी लिखते है। समय-समय पर पटना आकाशवाणी से आपने वार्ताएँ प्रसारित करवाई है। लेख भी यत्र-तत्र प्रकाशित करवाये हैं जिससे वज्जिका पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है।[3]

श्रीमती सुधासिंह—आप कहानियाँ लिखती है।

---

१. 'कल्पना'—अप्रैल, १९६८ ई० में प्रकाशित 'हिन्दी और उसकी बोलियाँ' शीर्षक लेख।

२ सौजन्य—र० शा०। समाद—वरिस २, गोटा २, (२१ जनवरी, १९७१ ई०) पृ० ३।

३. 'परिषद् पत्रिका' पटना, वर्ष ७ के अंक।

सुरेन्द्रनाथ दीक्षित—आपने शोध कार्य किये हैं। वज्जिका शब्दों की व्याख्या-समीक्षा आपने की है।[1]

डॉ० सुरेन्द्र मोहन प्रसाद—आप कहानी लेखक हैं।[2]

सुरेशकुमार—आप 'समाद' (सा० पत्र) के प्रवन्ध सम्पादक हैं। 'समाद' का खेती-बारी स्तम्भ आप ही लिखते है।[3]

सुरेन्द्रसिंह—आप वज्जिका के एक सिद्धहस्त लेखक हैं। वज्जिका को समुन्नत करने के लिए आपके विचार उपयोगी है।[4]

सुरेशचन्द्र वर्मा—आप लगुरई (हाजीपुर) निवासी हैं। आप भी लिखते है अपनी मातृभाषा में।

सुरेशचन्द्र 'सुमन'—विश्वम्भर पट्टी (मु० पुर), जन्म—१५ दिसम्बर, १९३८ ई०। आप कवि, गीतकार, कहानी लेखक है। नवभाव बोध मे आपकी रचनाएँ आप्लावित रहती है। आपने कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन किये हैं जिनमें हिन्दी की 'सर्जना','कादम्बिनी', 'अभिमंच' आदि प्रमुख है। उ० वि० मे 'दरद के दाम' शीर्षक से एक वज्जिका कहानी प्रकाशित कराई थी आपने।

र० पं०—**चन्द्रमा पर पहुँचे के जल्दी हए**
दुनिया में—
देखे के सूरत अप्पन आएना में फुरसत हई केकरा,[5]

सुरेश प्र० 'अचल'—आप एक साथ हिन्दी, भोजपुरी और वज्जिका मे लिखते है। आपने हिन्दी में महत्वपूर्ण संस्मरण लिखे है। अफ्रो-एशियाई सम्मेलन मे आपने वज्जिका की वकालत की। वज्जिका मे आपने रुवाईयाँ लिखी है। आपके सम्मान मे 'समाद' का एक अंक विशेष निकाला गया था।[6]

र० पं०—**करेजा त होइत मगर कान न होइत**
अनकर गिल्ला सुने के बान न होइत
नेह जे लागल, आखिर तक निमह जाइत
चुगला से केऊ परेसान न होइत।[7]

---

१. 'समाद' वरिस १, गोटा २, पृ० २।
२. 'सोआरथी'—सु० मो० प्र०। 'वज्जी भारती' (१) पृ० ६—९।
३. समाद, वरिस १, गोटा २, पृ० ७।
४. 'सनेस' (१), पृ० ८।
५. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य।
६. 'समाद' वरिस २, गोटा २।
७. 'समाद' (कवितांक), पृ० १०।

सुरेश रविकर—आप कथाकार हैं।[१]

हरिनन्दन पाण्डेय—गाँव-वरियारपुर, १६ अप्रैल, १६२३ ई०। पत्रकार, लेखक और कवि। १६६३ ई० श्री रंगनाही के साथ 'वज्जिका' (मा०) को प्रकाशित कराया। बाद में मुजफ्फरपुर से श्री रामकिशोर भावनांनू के सहयोग से 'चतुरंगिनी' (मा०) को प्रकाशित कराने की योजना बनाई जो असफल हो गई। पत्र-पत्रिकाओं में ढेर सारी रचनाएँ प्रकाशित कराई हैं आपने।

र० पं०—**मइल-कटिहर ओढ़ले गेर**
फाटल रत्ती-रत्ती
सामने कटोरी टिनही के धएले
पूरा ताकत से बोल रहल—
'हे राम ·· दिला दे राम !'[२]

हरिश्चन्द्र प्रसाद—गाँव—भोरहां, (चम्पारन)। आप एक युवा शोधकर्मी हैं। हिन्दी, भोजपुरी एवं वज्जिका में लिखते हैं। आपके लेख गहन और तथ्यपूर्ण होते हैं। जनपदीय भाषाओं के उद्धार के लिए आपका जीवन समर्पित है।

हरिहर प्र० चौधरी 'नूतन'—आप एक सफल गीतकार हैं।

हरिहर राय 'अशोक'—गाँव—सब्बलपुर (सारन)। जन्म—१ जुलाई, १६४६ ई०। हिन्दी एवं वज्जिका में लिखते हैं कहानियाँ एवं एकांकी। अनुवाद भी किया है आपने।

प्रकाश्य कृतियाँ—नइकी मतारी, घटियन मे गूँज ले गीत, ई लोर काहे (कहानियाँ), हल्दीघाटी, ममता, परासचीत, पोरकी छँउरी, पीरथीवी-राज (एकांकी)।

१६६५ ई० से आप वज्जिका के लिए सक्रिय हैं।

र० पं०—**डूबल जे नाँओ धार में त्**
अज्जस दुनियाँ ते हरे दी
तोहरे पाके त् हमहूँ लगइली
सपना क् पेढ़ियाँ :
खोआब के लोक बसइली, त् खिलयते फूल रहीं वहार के।
अब सूखे द् ?[३]

---

१. अन्हार अगना—सु० रविकर, वज्जी भारती (२) पृ० ८–१३।
२. सौजन्य—र० शा०।
३. सौजन्य—रमण शाण्डिल्य।

हरीस जायसवाल—आप कहानीकार हैं।[1]

हरेकृष्ण—हाजीपुर, जन्म — १७ सितम्बर, १९३७ ई०। आप वज्जिका के समर्थ रचनाकार हैं। १९५६ ई० से ही कविता लिख रहे हैं। कहानियाँ भी लिखी हैं। कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया है हिन्दी में जिनमें पीढ़ी, जागरण एवं 'सफेद गुलाब' प्रमुख हैं। पहले नाम के अंत में हाजीपुरी लिखते थे अब नहीं। वज्जिका विकास के लिए स्पष्ट विचार रखने वाले रचनाकार।

यहाँ मैंने थोड़े में रचनाकारों के नाम प्रस्तुत किये हैं। इनके अतिरिक्त भी हजारों रचनाकार हैं जो अपनी साधना को छुपाये बैठे हैं। ऐसे भी रचनाकार हैं जिन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वज्जिका की सेवा की है। किन्तु जिनके सम्बन्ध में विशेष मैं कुछ नहीं लिख सकता। उनके नाम इस प्रकार हैं :—

सर्वश्री रणवीरकुमार राजन, गणेशशंकर चैनपुरी, ध्रुव ना० सिंह, अवधेश 'तृषित', वैद्यनाथ प्र० शाही, अरविन्दकुमार शर्मा, श्रीमती अहल्या राकेश, श्रीमती ललिता सिन्हा, रामस्वार्थ चौधरी 'अभिनव', त्रिवेणी प्र० सिंह, महेशप्रसाद नारायण शर्मा, महेश्वर नारायण 'मनोज', सुखदेवशरण, उदय नारायण सिंह, जगदीशराम 'बेचैन', पकजसिंह, गोपाल भागलपुरी, राय अरुणगोविंद, अरुण, अशोक, कृष्णलाल श्रीवास्तव, पुष्पा, राकेशकुमार तिवारी, ललनप्रसाद, रामेश्वर प्र० सिंह, सरस्वती शर्मा, विपिनविहारी नन्दन, सन्त रस्तोगी, विजयकुमारसिंह।

---

१. वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० तिवारी, पृ० ३५।

हिन्दी और उसकी बोलियाँ

—सियाराम तिवारी

हिन्दी की बोलियों की उन्नति से हिन्दी का अहित होगा, यह आशंका निराधार है। हिन्दी की बोलियो की समृद्धि हिन्दी को सशक्त करेगी, उसे दुर्बल नहीं बनाएगी। यह आशंका हिन्दी-विरोधियों के पैतरे मे उत्पन्न हुई है। बोलियो को समुन्नत करने के आन्दोलनात्मक प्रयत्नो को देखकर हिन्दी-विरोधी प्रसन्न होकर सोचते है कि हिन्दी यहाँ से हटी। इधर कुछ वर्षो मे हिन्दी की विभिन्न बोलियो के प्रति उनके बोलने यालो का ध्यान आकृष्ट हुआ है और इसके फलस्वरूप प्रायः सभी बोलियो की विविध सस्थाएँ बनने लगी हैं, उनके लोक-साहित्य एव लिखित साहित्य का प्रकाशन हो रहा है, उनमें भाषावैज्ञानिक अनुसधान हो रहे है एव यदा-कदा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम मे उनके स्थान दिये जाने की भी माँग सुनाई पड़ी है। इनमे से अन्तिम को छोड़ कर अन्य सभी प्रवृत्तियाँ स्वस्थ है और उनकी वृद्धि से चिंतित होने की कोई आवश्यकता नही है। अन्तिम प्रवृत्ति भी स्वाभाविक न होकर प्रतिक्रिया जनित है जिस पर आगे प्रकाश डाला जाएगा। हिन्दी की बोलियो को समृद्ध करने का प्रयत्न हिन्दी से अलगाव का प्रयत्न नहीं है। मेरे जानते हिन्दी-क्षेत्र की लगभग बीस बोलियो मे से केवल राजस्थानी और मैथिली ने अपने को हिन्दी से अलग बताने की धृष्टता की है। इनमे से मैथिली-आंदोलन का मूल विशुद्ध राजनीतिक है। क्या कारण है कि जब ब्रजभाषा हिन्दी-क्षेत्र की साहित्यिक भाषा थी तब मैथिली-क्षेत्र के साहित्यकार ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा मान कर उसमे साहित्य रचना करते थे, किन्तु आज हिन्दी (खडी बोली) को विदेशी भाषा के समकक्ष समझते है ? क्या कारण है कि बिहार की अन्य बोलियाँ— भोजपुरी, मगही, वज्जिका, अंगिका आदि अपने को हिन्दी से अलग नही बताती, केवल मैथिली ही वैसा कर रही है ? यह परम दुर्भाग्य का विषय है कि बिहार राज्य एव केन्द्र के राजनीतिक नेता इस रहस्य को अब तक समझ नही पाये है।

हिन्दी भाषा की बोलियो को हिन्दी से अलग करने का आरम्भ भाषा-वैज्ञानिको ने नहीं किया। भाषावैज्ञानिको के अध्ययन का अनुचित लाभ उठाया गया। वस्तुतः इसका आरम्भ भारत सरकार द्वारा भाषावार राज्य निर्माण की नीति की स्वीकृति से हुआ। राजनीतिज्ञो ने भाषावैज्ञानिको के

अध्ययन का शोषण कर अपने न्यस्त स्वार्थों के लिए बोलियों को स्वतंत्र बताना आरम्भ किया। यदि राजनीतिक नेता इसमें कूद नहीं पड़ते तो मात्र भाषावैज्ञानिक अध्ययन से अलगाव की प्रवृत्ति का उत्पन्न होना असम्भव था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब नये-नये राज्य बनने लगे तो छोटे-छोटे नेताओं की आशा जगी और वे लोग अलग-अलग राज्य बनाने में लग गये। इसके लिए ग्रियर्सन को दोष नहीं दिया जा सकता। अंग्रेज होने के कारण ग्रियर्सन ने जो भी घातक नीति अपनायी हो, उसकी सर्वेक्षण पद्धति भी अवैज्ञानिक थी। इस कारण उसने बड़ा ही गड़बड़झाला उपस्थित किया है। उसके प्रमाद का एक उदाहरण यह है कि बिहार में मुजफ्फरपुर जिले एवं उसके पार्श्ववर्ती दरभंगा, सारन और चम्पारन जिले के कुछ भागों (जिसकी बोली वज्जिका, भोजपुरी और मैथिली से भिन्न अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं) की बोली को 'सेवेन ग्रामर्स ऑव् द बिहारी लैंग्वेजैज़' में भोजपुरी बताया तो 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव् इण्डिया' में मैथिली बता दिया। ग्रियर्सन से यह आशा करना कि वह हिन्दी की विभिन्न बोलियों में एकता का सूत्र ढूँढ़ता, व्यर्थ है। भाषा-सर्वेक्षणकार का यह कार्य नहीं है। यह कार्य मूलतः साहित्यकार का है और साहित्यकार अब तक ऐसा मानते और करते चले आ रहे थे। अभी-अभी राजनीतिक विष के व्याप्त होने से इस बोध को धक्का लगा है।

हिन्दी-भाषियों की ओर से इधर यह कहा जाने लगा है कि दक्षिण के लोग जिन्हें 'हिन्दी वाला' कहते हैं, वे सारे लोग सच्चे अर्थ में 'हिन्दी वाला' नहीं हैं। इनमें से कोई भोजपुरी वाला है तो कोई अवधी वाला, कोई मगही वाला है तो कोई ब्रजभाषा वाला। ऐसा कहने वाले लोग मगही, भोजपुरी, अवधी या ब्रजभाषा को हिन्दी से अलग करना नहीं चाहते। ऐसा कहने में एक भाषावैज्ञानिक सत्यता तो है ही, शायद दक्षिण वालों को मनोवैज्ञानिक संतोष देने के लिए भी ऐसा कहा जाता है। किन्तु कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसा नहीं कह सकता कि भोजपुरी वालों के लिए हिन्दी जितनी दुरूह है उतनी ही तमिल वालों के लिए भी है। भोजपुरी-भाषी बिना हिन्दी (खड़ी बोली) सीखे उसे समझ लेता है और कुछ दूर तक उसे बोल भी लेता है। ऐसा इसीलिए सम्भव होता है कि भोजपुरी हिन्दी की बोली है। यही सम्बन्ध मैथिली और हिन्दी (खड़ी बोली) का भी है। फिर, मैथिली हिन्दी से पृथक् स्वतंत्र कैसे? तो, यह कहना कि पश्चिमी उत्तरप्रदेश के लोगों को छोड़ कर अन्य क्षेत्र के निवासियों को हिन्दी उसी तरह सीखनी पड़ती है जिस तरह हिन्दीतर भाषियों को हिन्दी सीखनी पड़ती है, हिन्दी का विरोध करना नहीं

है। हाँ, विरोधी लोग इस तथ्य को एवं हिन्दीभाषियों के इस कथन को अपने विरोध का अस्त्र बना लें, तो यह अलग बात है।

भोजपुरी आदि बोलियों के स्थानानुसार विविध रूपों को देखकर उन्हे विविध बोलियाँ बताना उचित नही। भाषा और बोली के पारस्परिक सम्बन्ध के भाषावैज्ञानिक विश्लेषण में न उलझ कर व्यावहारिक ढग से इस पर सोचा जाए। विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई बोलियो के विविध रूप होते है, बोलियों की अवांतर बोलियाँ नही होतीं। भाषा और बोली मे एक प्रकार की दूरी भी होती है। भोजपुरी, मगही आदि के विविध रूपो में क्या वह दूरी है जो हिन्दी, खड़ी बोली और भोजपुरी में है? बोलियो की बोलियाँ बताने की बात भी मैथिली की विस्तारवादी नीति की उपज है।

यह भविष्यवाणी बिलकुल गलत है कि जैसे भाषा के आधार पर राज्य-निर्माण से लोगों की रुचि घटने लगी है उसी प्रकार एक दिन बोलियो के पृथकतावादी आंदोलन से लोग ऊबेगे। जिस आधार पर यह भविष्यवाणी की गयी है, वह आधार ही सही नही है। भाषा के आधार पर राज्य-निर्माण से लोगो की रुचि घटी नही है। जब तक भारत सरकार भाषावार राज्य-निर्माण की नीति को छोड़ नही देती तब तक पृथक् राज्य-निर्माण की कामना मिटेगी नही। अतएव, ऐसा सोचना कि एक दिन लोग बोलियो के पृथकतावादी आदोलन से भी ऊबेंगे, यह दुराशा मात्र है। बोलियों की ओर ध्यान आकृष्ट होने का कारण राजनीतिक नही, सारस्वत है। आधुनिक युग मे जीवित भाषाओ के अध्ययन की ओर रुचि बढ़ी है। इसी प्रवृत्तिवश बोलियों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है बोलियों के अध्ययन की ओर रुचि अभी बढेगी, घटेगी नही। विदेशी भी हमारी बोलियो की ओर आकृष्ट हो रहे है और इनके साहित्य तथा विशेषकर इनके भाषावैज्ञानिक अध्ययन मे प्रवृत्त हो रहे है। एक यह भी कारण है जिससे बोलियो की ओर हमारा भी ध्यान आकृष्ट हो रहा है।

पटना आकाशवाणी के कार्यक्रमो से लोग ऊब रहे है तो यह सर्वथा स्वाभाविक है। इस केन्द्र को मैथिली आन्दोलन का केन्द्र बना दिया गया है। पटना आकाशवाणी में मैथिली की जो स्थिति है, उसे देखकर हँसी आती है। वह बोली की पंक्ति में बैठी हुई है और भाषा की पंक्ति मे भी घुस गयी है (हर जीवित भाषा मूलतः किसी स्थान की बोली होती है, यह अलग बात है) अर्थात् मगही और भोजपुरी के साथ लोक-भाषाओं मे भी उसका कार्य-क्रम होता है और हिन्दी के समान भी उसमे कार्यक्रम होते है। अजीब बात

है ! किन्तु प्रबुद्ध व्यक्तियों का ध्यान इस ओर कदाचित् इसलिए नहीं जा रहा है कि पटना आकाशवाणी के कार्यक्रम यों ही अनाकर्षक और बेढंगे होते हैं।

अहिन्दी भाषियों को हिन्दी के नाम पर ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी आदि के प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने में अवश्य कठिनाई होती है। इससे बचने का उपाय यह है कि पाठ्यक्रम में हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य, दोनों को अलग-अलग विषय बनाया जाए। व्यावहारिक कार्यों के लिए हिंदी सीखने वाले अहिंदी भाषी हिंदी भाषा का पाठ्यक्रम लेंगे और हिन्दी साहित्य में रुचि रखने वाले हिन्दी साहित्य का अध्ययन करेंगे। हिन्दी-साहित्य के अध्येता को राजस्थानी, अवधी, ब्रजभाषा आदि में लिखित साहित्य के अध्ययन में अवश्य ही अधिक श्रम पड़ेगा। इसके लिए साहित्य के पाठ्य-क्रम में भी एक पत्र ऐसा रखना होगा जो विविध बोलियों का परिचय कराए। विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा का एक स्वतंत्र विषय के रूप में पाठ्यक्रम होना अत्यावश्यक है।

हिन्दी की विभिन्न बोलियाँ कोशकारों के लिए अवश्य कुछ हद तक एक समस्या हैं, किन्तु वैयाकरणों के लिए ऐसी कोई समस्या नहीं है। हिन्दी के प्रायः सभी कोशों में बोलियों से शब्द लिये गये हैं जो उचित ही है। परन्तु इसका कोई अन्त नहीं है। ऐसा करने में एक व्यावहारिक कठिनाई भी है, क्योंकि बोलियों के अलग-अलग कोश अभी तक नहीं बन पाये हैं। हिन्दी के परिनिष्ठित कोशों में बोलियों से लिये गये शब्दों के रूप खड़ी बोली के अनुरूप रखे गये हैं, यह आरोप स्पष्ट नहीं है। कदाचित् उन शब्दों को देखकर ऐसी शंका होती है जो शब्द तो हैं परिनिष्ठित हिन्दी के, किन्तु विविध बोलियों में उनके रूप विविध हो गये हैं। ऐसे शब्दों को किसी बोली विशेष का शब्द कहकर उसमें उचित रूप के अनुसार उनके लिखे जाने का आग्रह वांछनीय नहीं है। एक उदाहरण से इस बात को स्पष्ट किया जाए। एक शब्द है 'केला' जो मुजफ्फरपुर जिले में बोला जाता है 'केरा'। हिन्दी का कोशकार 'केला' ग्रहण करेगा, 'केरा' नहीं। वज्जिका का कोशकार अवश्य ही 'केरा' ग्रहण करेगा। किसी बोली का वस्तुतः अपना शब्द वह है जो उसी में प्रचलित है, अपने विकृत रूपों में भी किसी अन्य बोली में प्राप्य नहीं है। प्रत्येक बोली में इस प्रकार के असंख्य शब्द होते हैं। ऐसे शब्दों में से पारिभाषिक महत्त्व रखने वाले शब्दों को हिन्दी के कोशों में सम्मिलित कर लेना चाहिए। ऐसे ही शब्दों के ग्रहण किये जाने से हिन्दी समृद्ध होगी। ध्यान में रखना है कि हिन्दी को समृद्ध करने के उत्साह में हम हिन्दी को बिगाड़ न दें। हिन्दी की

विविध बोलियो की वैयाकरणिक विलक्षणताओं को परिनिष्ठित हिन्दी के व्याकरण मे समाविष्ट कर लेने का प्रयत्न ऐसा ही घातक उत्साह होगा। इस प्रकार के प्रयत्न से हिन्दी का परिनिष्ठित रूप नष्ट हो जाएगा और ऐसा व्याकरण केवल पुस्तको से लिखा रह जाएगा। व्याकरण मे बोलियो के प्रतिनिधित्व की बात सोचना भाषा की प्रकृति को नही समझना है। इस बात को भी एक उदाहरण के आधार पर ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। वज्जिका मे कर्त्ता के आदर-अनादर का प्रभाव क्रिया पर पड़ता है, किन्तु खडी बोली मे ऐसा नही होता—

	बज्जिका	**खड़ी बोली**
अनादरसूचक कर्त्ता, अनादरसूचक कर्म	नोकर नोकर के देखलक।	नौकर ने नौकर को देखा।
अनादरसूचक कर्त्ता, आदरसूचक कर्म	नोकर रजा के देखलक।	नौकर ने राजा को देखा।
आदरसूचक कर्त्ता, अनादरसूचक कर्म	रजा नोकर के देखलन।	राजा ने नौकर को देखा।
आदरसूचक कर्त्ता, आदरसूचक कर्म	रजा रजा के देखलन।	राजा ने राजा को देखा।

अब सोचिए, बज्जिका की इस विलक्षणता को खड़ी बोली के व्याकरण मे कैसे समाविष्ट किया जाएगा ? यही नही बज्जिका में कर्त्ता के लिग का भी कोई प्रभाव क्रिया पर कभी भी नही पड़ता है—राम जाइत हइ। सीता जाइत हइ। क्या परिनिष्ठित हिन्दी के व्याकरण मे बज्जिका व्याकरण की इस विशिष्टता को ग्रहण कर लेने की कल्पना की जा सकती है ? यदि हिन्दी से उसकी बोलियाँ वैयाकरणिक प्रतिनिधित्व चाहेंगी तो बज्जिका अपनी इस विशेषता को अवश्य ही हिन्दी के व्याकरण में स्थान दिलाना चाहेगी, क्योंकि यह उसकी उन विशेषताओ मे से एक है जो उसे बिहारी बोलियो में एक स्वतत्र अस्तित्व देती है। अतएव परिनिष्ठित हिन्दी के व्याकरण मे बोलियो के व्याकरण को स्थान देने की बात सर्वथा ही अनुचित है।

के लॉग के 'हिन्दी ग्रामर' का उदाहरण ठीक नही है। उस ढाँचे का एक पूर्ण व्याकरण लिखना असाध्य-सा है। फिर वह एक प्रकार का भाषावैज्ञानिक अध्ययन है। भाषा सीखने के लिए उस प्रकार का व्याकरण उपयोगी नही हो सकता।

यदि राजस्थानी, अवधी, ब्रजभाषा आदि हिन्दी की बोलियाँ है तो इनकी केवल प्राचीन रचनाओ को ही हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रमों और इतिहास-ग्रथों में स्थान क्यो मिलता है, इन सबकी आधुनिक रचनाओ को क्यो

विस्मृत कर दिया जाता है ? अवश्य ही यह ऐसा प्रश्न है जो थोड़ी देर के लिए चिंतित कर देता है। किंतु प्रश्नकर्त्ता को प्राचीन और आधुनिक युग की स्थिति पर भी ध्यान देना चाहिए। व्रजभाषा की जिन रचनाओं को हिन्दी साहित्य में गिनते हैं, वे रचनाएँ तब लिखी गयी थी जब व्रजभाषा साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन थी। तब आधुनिक हिन्दी क्षेत्र के प्रत्येक कोने के साहित्यकार व्रजभाषा में रचना करते थे। व्रजभाषा का उस समय वही मान-महत्व था जो आज खड़ी बोली (हिन्दी) का है। जब से व्रजभाषा को खड़ी बोली ने अपदस्थ कर दिया है, तब से उसकी भी वही स्थिति है जो अन्य बोलिओं की है। अवधी, मैथिली और राजस्थानी के साथ सम्भवतः ऐसी बात नही है। तब भी उनके प्राचीन साहित्यकारो के हिन्दी में परिगणित किये जाने का रहस्य क्या है ? मैथिली पर विचार करने से इसका उत्तर मिल जाता है। क्या कारण है कि मैथिली से केवल एक विद्यापति को ही लिया गया और किसी प्राचीन को नही। इसका स्पष्ट कारण यह है कि विद्यापति के अतिरिक्त मैथिली का कोई अन्य प्राचीन साहित्यकार उस ऊँचाई पर नही पहुँच सका जिससे वह समग्र हिन्दी-क्षेत्र का कहा जा सके। अतः बोलियों के प्राचीन साहित्यकार यदि समग्र हिन्दी-क्षेत्र में आदर पा रहे हैं तो इसका श्रेय उनके व्यक्तित्व को है, कोई उनके साथ पक्षपात नही कर रहा है। आज भी व्रजभाषा, अवधी, वज्जिका, अंगिका, भोजपुरी आदि मे से किसी में लिखने वाला साहित्यकार यदि कोई महान् कृति रच दे तो असम्भव नही कि वह तमाम हिन्दी क्षेत्र में खड़ी बोली (हिन्दी) के साहित्यकार के समान पूजित न हो। कोई समर्थ साहित्यकार अपनी प्रतिभा का सारा अंश बोली की साहित्य-रचना मे नही लगा रहा है या साधारण कोटि के साहित्यकार ही बोलियों मे लिख रहे है। कारण चाहे जो हो, आधुनिक युग मे बोलियो में उच्चकोटि का साहित्य या तो लिखा नही जा रहा है या लिखा जा रहा है तो उसका प्रचार-प्रसार नही हो पा रहा है। प्रचार-प्रसार में बाधा पहुँचाने का एक कारण भी हो गया है। आज अपनी-अपनी बोलियों के प्रति उनके बोलने वालों का ममत्व बढ़ गया है। अतः प्रबुद्ध अध्येता भी खड़ी बोली (हिन्दी) के बाद यदि आकृष्ट भी होता है तो अपनी बोली की ओर।

किंतु यह तो स्थिति का विश्लेषण हुआ, समस्या का समाधान नही। पीछे कहा जा चुका है कि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम मे हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य को अलग-अलग विषय बनाया जाए। यही उपाय है। इससे भाषा और साहित्य के अध्ययन मे बोलियो और उनके प्रतिनिधि साहित्य को सम्मिलित करना सम्भव हो सकेगा।[1]

१. प्रकाशित—कल्पना १६५, वर्ष १६, अंक ४, अप्रैल १६६८ पृ० १६-२३।

भोजपुरी भाषा : एक सर्वेक्षण

—स्वर्णकिरण

प्रांतीय भाषा भोजपुरी, मात्र बोली के रूप में ही नहीं, शिष्ट भाषा के रूप में—अपने शब्द भंडार, अपने क्रियापद, अपने माधुर्य के कारण, मान्यता प्राप्त कर चुकी है—डॉ. ग्रियर्सन, फैलन, जॉन क्रिश्चियन, हौर्नले आदि पाश्चात्य विद्वान्, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ. सत्यव्रत सिन्हा, डॉ. इन्द्रदेव, डॉ. श्रीधर मिश्र, डॉ. सत्यदेव ओझा, दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह नाथ, वैजनाथसिंह विनोद, गणेश चौबे आदि भारतीय विद्वान् के समर्थन और कार्य इस क्रम में प्रमाण हैं। भोजपुरी एक स्वतंत्र भाषा है न कि सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार बाजारू हिंदी का रूप या रासबिहारी शर्मा के अनुसार हिंदी का रूप या रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार अवधी की सगी नहीं, सौतेली बहन या पुरेश्वर के अनुसार हिंदी समष्टि का व्यष्टि रूप (द्रष्टव्य—भोजपुरी कहानियाँ, २-३, दि. १९६५)। भोजपुरी भाषा केवल आरा के भोजपुर तक ही सीमित नहीं है अपितु छपरा, बलिया, पूर्वी गोरखपुर, वाराणसी, बस्ती, पूर्वी जौनपुर, गाजीपुर, पूर्वी फैजाबाद, राँची, पलामू, कलकत्ता आदि के अतिरिक्त मॉरिसस आदि विदेशों में यह बोली जाती है और इसमें साहित्य-निर्माण-कार्य किया जाता है। यह बड़े भू-भाग की भाषा है और यद्यपि वैदिक काल से ही इसके ऐतिहासिक विकास का सूत्र ढूँढ़ा जाता है, ढूँढ़ा गया है तथापि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अनन्तर इसका द्रुतगति से संवर्द्धन-विवर्द्धन दिखलाई पड़ता है। यह गँवार लोगों की भाषा के रूप में उपेक्ष्य नहीं है बल्कि पढ़े-लिखे लोग भी इसमें रुचि लेते हैं—यह बात दूसरी है कि पढ़े-लिखे लोगों की बोली में या लिखावट में कुछ अधिक संत तराशी, कुछ अधिक विशेषता दृग्गोचर होती हो। मतलब यह कि विशुद्ध भोजपुरी के प्रयोक्ता, मिश्रित या गँवई भोजपुरी के प्रयोक्ता के रूप में भोजपुरी भाषा को अध्ययन का केन्द्र बना सकते हैं।

जो लोग भोजपुरी को 'हिंदी का रूप' मात्र मानते हैं यथा—रास-बिहारी शर्मा या 'हिंदी की उपभाषा' के रूप में स्वीकार करते हैं यथा—डॉ. धीरेन्द्र वर्मा या 'मध्य देश की भाषा' में ही इसे अन्तर्भुक्त समझते

हैं[1] वे भोजपुरी भाषा की आंतरिक शक्ति, सम्भावना और विलक्षणता पर ध्यान नहीं देते। भोजपुरी हिंदी ही है या हिंदी का अंग है या हिंदी का एक विशेष रूप है यह भ्रम वस्तुतः कुछ पत्र-पत्रिकाओं द्वारा फैला है जिनमें हिंदी और भोजपुरी दोनों प्रकार की रचनाएँ निकली हैं यथा—'भोजपुरी' अखौरी महेंद्रकुमार वर्मा द्वारा कलकत्ता से १५ अगस्त, १९४७ को प्रथम सम्पादित; 'छोटानागपुर सन्देश', 'आजाद मजदूर' गंगाप्रसाद कौशल द्वारा जमशेदपुर से सम्पादित, 'लोकरंजन' बैकुंठनाथ पांडेय द्वारा कलकत्ता से सम्पादित इत्यादि। भोजपुरी भाषा के शब्द अपनी वस्तुवाचकता एवं गुणवाचकता रखते हैं। विद्वान् आलोचकों ने यह स्वीकार किया है कि भोजपुरी के कुछ शब्द ऐसे अवश्य मिल जा सकते हैं जिनके हिंदी पर्याय अप्राप्य या दुष्प्राप्य हैं यथा—भोड़कल, लदलद, गदगद, टेंटियाना, खुनसाना इत्यादि। भोजपुरी के शब्द भंडार वस्तुतः भोजपुरी जगत अपितु साहित्य जगत के लिए अनमोल निधि है—भोजपुरी के प्रयोग तो भोजपुरी जगत के गौरव हैं-ही।

शक्ति एवं सम्भावनाएँ—

भोजपुरी भाषा मृत भाषा नहीं है। वैदिक काल से स्वतंत्र रूप से भोजपुरी का विकास हुआ है। भाषा राज्याश्रय पाकर फूलती है, जनकंठ के प्रोत्साहन से पल्लवित-पुष्पित होती है पर भोजपुरी के साथ यह दुर्भाग्य रहा कि न तो अब तक राज्याश्रय प्राप्त हुआ न ही जनकंठ का यथोचित प्रोत्साहन मिला। जनता की चित्तवृत्ति प्रत्येक भाषा मे सामने आती है, भोजपुरी में भी आयी और यह इस बात का द्योतक है कि भोजपुरी भाषा अपवादक भाषा नहीं है। अपने लालित्य, अपने माधुर्य, अपने क्रियापद के वैशेष्य, अपने विशेषण-प्रयोग आदि के कारण संसार की शक्तिपूरित भाषाओं के मुकाबले में आ सकती है। पर अब तक चूँकि विद्वानों एवं भाषा-प्रोत्साहकों का ध्यान इस ओर नहीं जा पाया है, न ही अपेक्षित शोध-कार्य हुआ है इस भाषा में शक्तिहीनता ही शक्तिहीनता दिखलाई पड़ती है। भाषा के रूप स्थिर

---

१. भोजपुरी भाषा-भाषियों का हिंदी प्रदेश से इतना अधिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक संबंध रहता आया है कि उसमें कभी हिंदी से पृथक् स्वतंत्र साहित्य की परंपरा विकसित करने की आवश्यकता का बोध ही नहीं हुआ। शिक्षित भोजपुरी भाषा-भाषी अब तक मध्यदेश की भाषा को ही साहित्य तथा संस्कृति की भाषा मानते आये हैं और उसी को अपनी प्रतिभा की भेंट चढ़ाई है। —डॉ० विश्वनाथप्रसाद, साहित्य २।३, अक्टू. १९५१।

नही हैं और यह आवश्यक भी नहीं है। भाषा बहती हुई नदी है जो आवश्यकतानुसार अपने पाट को कभी चौड़ा, कभी छोटा करती है और अनेक सहायक नदियों का जल लेकर अपने गंतव्य की ओर अनुधावित होती है। भोजपुरी भाषा छोटी सी पहाड़ी नदी के समान मालूम पड़ती है जिसमे मिश्रण की गुंजाइश अधिक नहीं हो पायी। यद्यपि भारत और भारत के बाहर मारिशस आदि कुछ टापुओं तक इसका प्रसार है तथापि अभी शैशवावस्था से गुजर रही है। मनुष्य—विशेषत: भोजपुरी-भाषा-भाषी अपेक्षाकृत सकोचशील है, अपनी झेप के कारण भोजपुरी भाषा मे बोलना न स्वाभाविक समझते है न आवश्यक। सकोचशीलता और झेप के कारण भोजपुरी शब्दो की शक्ति सिमटी की सिमटी रह जाती है। पारस्परिक संपर्क, पत्राचार में भी यह भाषा अधिक व्यवहृत नही हो पायी, न ही इसका व्यवहार संप्रति अधिक हो पा रहा है फलत: उदासीनता का भाव पनपता है। हिंदी भाषा की शक्ति जैसे धीरे-धीरे पहचान मे आयी और इसने अनेक दिशाओं मे अपने को उद्घाटित किया, सपुष्ट किया भोजपुरी भाषा भी अपनी शक्ति को समय-समय पर उद्घाटित-संपुष्ट करेगी, ऐसा सहज अनुमेय है। भोजपुरी की पत्र-पत्रिकाएँ आर्थिक दृष्टि से दुर्बल है फलत: भोजपुरी भाषा के प्रयोक्ता चाह कर भी भाषा के आयाम को विस्तार नही दे पाते। संभावनाओं की कमी नही है। साहित्य की प्रत्येक विधा भोजपुरी में समान रूप से विकसित हो सकती है। कविता, गीत, एकाकी-नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, रिपोर्ताज आदि भोजपुरी की प्रचलित विधा के दर्शन आज दुर्लभ नहीं—पूजा-पाठ-संध्यावदन आदि भी भोजपुरी मे शनै. शनै: प्रचलित हो रहा है। उदाहरणार्थ—

रामागति देहू सुमति।
सरसर सरसर सनझा कारी।
सोने रूपे गिरिवर धारी॥
जे जाने गिरवर क भेव।
नित उठ पूजे गनपत देव॥ इत्यादि।

—मारीशस मे भोजपुरी, मुनीश्वरलाल चिंतामणि,
भोजपुरी जनपद, ३।१, जु. १९७०।

संस्कृत, अंग्रेजी आदि विभिन्न रचनाओ के भोजपुरी अनुवाद पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से दृष्टिगोचर हैं जो इस बात के द्योतक है कि भोजपुरी

हसिबा बोलिबा रहिबा रंग।
काम क्रोध न करिबा संग॥
हसिबा बोलिबा गाइबा गीत।
दिढ करि राषिबा अपनां चीत॥.......

उपदेशपरक पद्य का द्योतक है जो मध्यकालीन संतो की भोजपुरी रचनाओ मे विस्तारित दीखता है। कबीरदास, धरमदास आदि के पदों को यहाँ उदाहरण के रूप मे उद्धृत किया जा सकता है। महुरी और छाछ की कहावतों, उक्तियो मे भी भोजपुरी-पद्य का आरम्भिक रूप देखा जा सकता है। बाबा बुलाकीदास के चैता, दरियादास के झूमर, घाटो; धरनीदास के झुमटा, चेतावनी आदि भोजपुरी पद्य के मध्यकालीन रूप के प्रमाण है। यहाँ भोजपुरी पद्य अध्यात्म साधना, उपदेश, प्रबोधन आदि तक सीमित दीखता है। सम्भव है मध्यकालीन सत कवि भोजपुरी भाषा के प्रति अधिक सचेत नही हो और अपने मन बहलाव के लिए इस भाषा को आत्मसात् किया याकि स्वाभाविक जनभाषा होने के कारण भोजपुरी का ग्रहण आप से आप संत-कवियो, मध्यकालीन व्यक्तियो द्वारा हो गया। चउआ-चाँगर, खेत-खरिहान, घर-दुवार, फोड़-खाव आदि का अतर-वाह्य सौदर्य यहाँ आकर्षण का केन्द्र नही प्रतीत होता। मुसलमान कवि तेगअली तेग के 'बदमाश-दर्पण' (प्रकाशन काल सन् १८९५) मे पहली बार पश्चिमी भोजपुरी का रूप देखने मे आया—

आँख सुन्दर नाहीं बारन से लड़ावत बा ऽ।
जहर क छूरी करेजवा में चलावत बा ऽ॥
सुरमा आँखी में नाहीं ई तू छुलावत बा ऽ।
वाड़ दुतर्फी विछुआ पै चढ़ावत बा ऽ॥
अत्तर देही में नाहीं तू ई लगावत बा ऽ।
जहर के पानी में तरुआर बुझावत बा ऽ॥

भोजपुरी पद्य स्पष्ट है. यहाँ उर्दू शेर से प्रभावित है।

रामकृष्ण वर्मा (बिरहनायिका भेद), अम्बिकाप्रसाद (भजनावली), रघुवीर नारायण (बटोहिया), रामवचन द्विवेदी, अरविंद (गाँव के ओर), भिखारी ठाकुर (नवीन बिहरा, चौवर्ण पदवी, बुढसाला का बयान आदि), दूधनाथ उपाध्याय (गो-विलाप छदावली), चचरीक (ग्राम-गीतांजली), मन्नन द्विवेदी गजपुरी (सावरिया), महेन्द्र शास्त्री (आज की आवाज), रामविचार पाडेय (बिनिया विछिया), प्रसिद्ध नारायण सिह (बतिया बलिहार), शिव-प्रसाद मिश्र रुद्र या गुरु बनारसी (तांडव नृत्य), भुवनेश्वर प्रसाद 'भानु'

(बासंती हवा, मरद भोजपुरिया, सूखा), मनोरंजन प्रसाद सिंह (फिरंगिया), महादेव प्रसाद सिंह 'घनश्याम' (सती सारंगी भोगी वृजाया), कुँअर विजयमल, लोरिकायन, शोभानायक बनजारा आदि प्रबन्ध काव्य), श्यामबिहारी तिवारी 'देहाती' (डुबकी), रामनाथ पाठक प्रणयी (कोइलिया,सितार, पुरइन के फूल), विश्वनाथ प्रसाद शैदा (कजली), अर्जुनसिंह अशांत (अमर लत्ती, बुद्धायन), दुर्गाशंकरसिंह नाथ (साहित्य रामायण महाकाव्य, गुनावन अध्यात्म, एटम के युग में काव्य) आदि भोजपुरी पारम्परीण पद्य के निर्माता हैं। इनका पद्य-साहित्य शृङ्गार, भक्ति, समाज-सुधार, देशोद्धार, मनोरंजन आदि विविध विषयों से सम्बद्ध हैं।

कवि और गीतकार—

भोजपुरी कविता और गीत परस्पर विरोधी नहीं हैं पर भोजपुरी कविता की विषय-सीमा जहाँ सीमित नहीं है वहाँ भोजपुरी गीत वैयक्तिक सुख-दुःख के उन्मेष से आबद्ध हैं। साधारणतः लोगों के मन में धारणा है कि भोजपुरी कविता का अर्थ है भोजपुरी गीत जो कि गाया जा सके या लयबद्ध रूप में सामने रखा जा सके। बिरहा, झूमर, जँतसार, रोपनी के गीत, विवाह के गीत, विदाई के गीत इत्यादि भोजपुरी के कवियों, रचयिताओं के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। भिखारी ठाकुर आदि विभिन्न कवियों ने अपने नाटकों में कुछ ऐसे गीतों का उपयोग किया है जो पाठक, द्रष्टा या श्रोता के मनोरंजन करने में समर्थ हैं। पारम्परीण शिल्प के प्रेमी भोजपुरी के कवि और गीतकार नारी रूप के ऋणी हैं। नारी के सौंदर्य उपकरण सिंदूर, बिंदुली, टिकुली, साड़ी में भी गीतकार और कवि उलझे हैं। खेत-खलिहान, कुआँ, ग्रामीण बाजार आदि के कार्य-कलापों की ओर इनकी दृष्टि गयी है। राजनीतिक विसंगतियों, सामाजिक असंगतियों, धार्मिक विरूपताओं, सांस्कृतिक स्खलनों पर भी इनका ध्यान केन्द्रित हुआ है, इत्यादि। यह कहना मुश्किल है कि कौन-कौन मात्र कवि हैं और कौन-कौन गीतकार। वस्तुतः कविता और गीत एक दूसरे के छोर को छूते हैं। यों भोजपुरी गीत भोजपुरी कविता के अन्तर्गत वर्ण्य है। हम भोजपुरी के कवि और भोजपुरी के गीतकार ऐसे वर्ग बनाकर भोजपुरी के सेवकों के प्रति न्याय नहीं कर सकते क्योंकि ऐसे बहुत लोग हैं जो भोजपुरी के कवि और गीतकार दोनों हैं। यथा—महेंद्र शास्त्री, रामविचार पांडेय, शिवप्रसाद मिश्र रुद्र गुरु बनारसी, विश्वनाथ प्रसाद शैदा, पांडेय नर्मदेश्वर सहाय इत्यादि। राजकुमारी सखी, विंध्यवासिनी देवी, प्रणयी आदि कुछ विशुद्ध गीतकार भी हैं पर इनके द्वारा भोजपुरी में कविता लेखन की

सभाव्यता भी है और है भी। हम भोजपुरी के कवि और गीतकार के यह वर्ग वनाकर अवश्य उनके साथ न्याय कर सकते है—परम्परावादी, यथा—ठाकुर विश्रामसिह, मनोरजनप्रसाद सिन्हा, दुर्गाशकर प्रसाद सिंह, कमलाप्रसाद विप्र इत्यादि; नवोन्मुख—रामेश्वरसिंह काश्यप, चौधरी कन्हैयाप्रसाद सिह, पाडेय नर्मेश्वर सहाय इत्यादि; तथा समन्वयवादी—शिवप्रसाद मिश्र रुद्र गुरु वनारसी, महेन्द्र शास्त्री इत्यादि।

आधुनिक कविताएँ एवं गीत—

आधुनिकता प्राचीनता को नष्ट करके सामने आती है या प्राचीनता के साथ-साथ यह विवाद का विषय है। भोजपुरी की आधुनिक कविताएँ और गीत प्राचीन विरासत को बिल्कुल स्वीकार नही करते हों, ऐसा नही प्रतीत होता। भोजपुरी जगत् मे आधुनिकता का भाव प्राचीनता का पूरक है और प्रयोग को अधिक महत्त्व देता है। विज्ञान एव शिक्षा के द्रुत विकास के कारण प्राचीन पीढ़ी के कवि और लेखक भी समय-पाकर आधुनिकता या नवीनता, नवता की ओर उन्मुख हुए है और छंद बद्ध पद्य अथवा कविता लेखन के स्थान पर छदमुक्त कविता लेखन करते है। उर्दू छदो का भी प्रभाव आधुनिक कवियों एवं गीतकारो पर पड़ा है फलतः भोजपुरी मे गजल, रूबाई आदि का प्रचलन दीखता है। भोजपुरी की रचनाएँ आधुनिकता के भाव को वहन करने मे असमर्थ नही, अपितु समर्थ है। डा० जितराम पाठक, वेदनन्दन, मधुकर सिह, रामेश्वरप्रसाद सिन्हा, स्वर्णकिरण, सुधारानी जायसवाल, जगन्नाथ, गोरक्ष हरि, चौधरी कन्हैयाप्रसाद सिह, रामवृक्षराम विधुर, बच्चन पाठक सलिल, शरदिंदुभूषण कुमार, परमेश्वर दूवे शाहाबादी, उर्मिला जैन, कृष्णानद पाठक कृष्ण, विजेन्द्र अनिल आदि कतिपय नाम यहाँ उदाहरणार्थ गिनाये जा सकते है जिन्होने भोजपुरी काव्य जगत् को सम्पुष्ट किया है। सामयिक प्रसगो को लेकर भी काव्य सृजन कार्य इस समय हुआ है यथा—भारत पर चीन के आक्रमण के प्रसग को लेकर गणेशदत्त किरण के द्वारा 'वावनी' का प्रस्तुतीकरण—

फूटे निमन फारवि करेजा वेमोहे के
अइसन हुरपेटवि वस प्राने निकलि जाई।
खोरा अस हमरा से राखी इयारी से
एक दीठ डालवि जे नून निमन गलि जाई॥

खूल गइल आँख बाइ संकर के
तीसर जब कइसे के कामदेव बान मारि छलि जाई।
भागु भागु भाऊ रे चुहानी में छपकु
हाली हरवा में परला पर चोले बदलि जाई॥
—बावनी, छंद २१

× × ×

खरचे कंजूस आ बिलारी से मूस डरे
फूस डरे आगी से चिरई कुल पासी से।
दावा से पेड़-खूँट संकर से कालकूट,
उरुआ अँजोरा से, चोर डरे खाँसी से॥
मोरन से साँप अउर पानी से ताप डरे,
पापी का गरदन डरे न्याय का गँडासी से।
कूकर लुकाठी से जरते सोरनाठी से,
आसे हों थर-थर काँपे चीन हिंदवासी से॥
—वही, छंद ३७।

सामयिक प्रसंग होने पर भी फूट निभन फारवि करेजा; खीरा अस इयारी में नया उपमान प्रयोग खरचे कंजूस, बिलारी से मूस आदि मे मालोपमा अलकार का, नये ढंग से, चमत्कार यहाँ ध्यान देने योग्य है। कुछ कवि और गीतकार भोजपुरी में लम्बी कविता को भी प्रतिष्ठित कर रहे हैं यथा—रामेश्वरसिंह काश्यप की कविता मातु गंग तोहरा तरंग पर हम्मर चांह अर्पित बा (अँजोर, ६।१-२, अ० जु० '६८)। यहाँ कविता में अंकित कथाकत्त्व और प्रयोग पाठकों और श्रोताओं को प्रभावित करता है। रामेश्वर प्रसाद सिन्हा, जगन्नाथ, मधुकर सिंह आदि की भोजपुरी गजले इधर लोकप्रिय हुई हैं। डा० जितराम पाठक, वेदनन्दन, स्वर्णकिरण आदि हिंदी से भोजपुरी की ओर मुड़े हैं। अतः इनकी रचनाओं मे हिंदी की तरह प्रौढ़ विच्छितियाँ, नये उपमान, नये बिंब, नये प्रयोग स्थान-स्थान पर दीखते हैं। वेदनन्दन, विश्वरंजन आदि ने भोजपुरी गीत को नया आयाम दिया है। उदाहरणार्थ—

रंग भरल भोर उमड़ नदी हो गइल,
सरसो के बारे-बारे टिसुन अस झूमेला,
लाल-लाल मुहुर-मुहुर पाता अस चीकन,
सनकल नगिनियाँ जुठावेले अइपन,
ईंगुर के भाँवर में नाव एगो काँपेले
खखनल घरछना चौहदी हो गइल। रंग भरल ·· ····
—वसंत के अंकुरी, हिलोर—प्रवेशांक, माघ ५, २०२५।

वसत के वर्णन-क्रम में कवि की भाव एवं भाषागत सजगता यहाँ विचार का विषय है।

आसमान उतर गइल सावनी चिरइया
कजरी गा बदरी के चूम ले बलइया।
सुरुजमुखी किरिन मूँद लेलस सबरंग पाँख
इन्द्र धनुष खोलेला मौसम के मस्त आँख।

—गीत, विश्वरंजन, भोजपुरी जनपद, ६६।

सावन का वर्णन नये अदाज से यहाँ गीतकार कवि ने हमारे सामने रखा है।

स्वर्णकिरण ने संबोधगीत को भोजपुरी में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है—

कुचकुच अँधरवा में खिचलऽ तूँ लीविया जे
तोहरे ह साफ-साफ समय ई कहत बाटे।
पाँवर भेजी बनियाँ के चक्कर में पड़लऽ ना
राष्ट्र खातिर त्याग जे वहलऽ वहत बाटे। ....

—वीर कुँवरसिंह, अँजोर, कुँवरसिंह विशेषांक,
७।१-२, अप्रै०-जु० १९६८।

× × ×

तू रूप-समुँदर लहरावत बाड़् कइसन,
मन जवाखार अइसन होता......... ...

× × ×

तूँ चहकऽ
तूँ लहकऽ
का होइ रंग-गिरल मइल-मइल साड़ी में
अइलू त, रेती के नदिया प नाव ले ले....
सोचऽमत
नोचऽमत
साटल जे महँगी में मंदी के इश्तहार तखती से
जवन कम उम्र (छन उम्र) इश्तहारन के सटला से
कोट बहुत लागन का ;
पकसावन चेहरा प नजर के लगाई ?
कहाँ ललकी गोराई प टिकुली मा बिंदुली के सोभा ? ...

—परिचिता के, गाँव पर, होलीअंक, १९६७

मुक्तक कविता-लेखन इस बात का द्योतक है कि भोजपुरी काव्य जगत् विस्तीर्णता को प्राप्त कर रहा है। छंद और बंधन टूट रहे हैं, प्रयोग की आकुलता कवि को सरल से सरल भाषा की ओर ध्यान खींच रही है। दो-तीन उदाहरण—

सूते द हमके जगाव जनि ए दोस।
ई मुँह पामर ह कुछु निकलि जाई।
पयलो में सचहूँ क आगि होले
ढेर रगरले कहियो बरि जाई।

× × ×

फूल जेवन फूलेला, झरि जाला
नसा चढ़ेला, उतरि जाला
तब के आपन आ के पराया ह ?
जब एक दिन सभे बिसरि जाला।

—पाँच मुक्तक: झुरुकि बहे ना, रामवृक्षराम विधुर,
अंतरग्रामीण सुहृदय साहित्य गोष्ठी, गाजीपुर,
प्र० सं० १९६२, पृ० ३१-३२।

× × ×

अन्हार के मतवाला हाथी पर
आदम के बेटा
दिया के गुलेल मारता
एक ···इ सइ ·· हजार ······
बाकिर हाथी बड़ा थाँख बा,
पऊआ बा, टकसते नइखे।
दिया के अबुरी से
के दो अन्हार के करिआ पानी पिअता
बाकी ओराते नइखे।

—जितराम पाठक, रचनाकाल—२२-१०-१९६६

× × ×

जिनिगी
झरना,
मसीन,
अधजरल सिगरेट

सराव
तमासा
एगो बुझउवल
भा खाली संघर्ष नाऽ
ना खाली जिअला के नाँव ह जिनिगी।
बलुक साँझ पूछीं—
तना मुअला के नाँव जिनिगी ह।
—रामेश्वरप्रसाद सिन्हा, अँजोर, ६।३-४, अ० ३० ज० ६६

उद्धरण से स्पष्ट है कि भोजपुरी काव्य केवल पारम्परीण वर्णन तक ही सीमित नही है अपितु विकास की अनेक दिशाओं की ओर यह अनुधावित है—बौद्धिकता, मर्मस्पर्शिता, रसवत्ता, लयवत्ता आदि की ओर कवियो का ध्यान केन्द्रित है। बड़ी कविता, छोटी कविता, मुक्तक, गजल, रुबाई, व्यग्य-कविता, हास्यपरक कविता, प्रयोगवादी कविता, गद्यगीत आदि अनेक प्रकार का काव्य भोजपुरी के आधुनिक सेवकों के द्वारा परिपुष्ट-परिसंपोषित हो रहा है।

भोजपुरी गद्य—

भोजपुरी पद्य की तरह भोजपुरी गद्य में अभी विस्तार नहीं दीखता। ऐसा प्रतीत होता है कि भोजपुरी गद्य अभी अपने हाथ-पाँव फैला रहा है। ऐसी बात नही है कि भोजपुरी जगत मे गद्य लेखको का नितांत अभाव है। यथोचित प्रोत्साहन, राज्याश्रय, शिक्षा विभाग के अनुराग आदि के अभाव अभाव के कारण भोजपुरी गद्य का समुचित विकास नही हो पा रहा। यों नाटक, एकाँकी, कहानी, उपन्यास, निवन्ध, सस्मरण, रेखाचित्र, व्यग्य, रिपोर्ताज, यात्रा आदि गद्य की विभिन्न सम्भव विधाएँ हिदी की तरह भोजपुरी में दिखलाई जा सकती है और है। शायद पद्य की तरह गद्य का विकास भाषामात्र के लिए अपेक्षित होता है। भोजपुरी गद्य अपवाद नही है। यह लेखको, पाठको, अध्येताओ को समान रूप से आकृष्ट करने की क्षमता रखता है। पत्र-पत्रिकाओ का अभाव है, लेखको, सेवको को पारिश्रमिक देने की व्यवस्था नही है न ही राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार की ओर से भोजपुरी के लेखकों को पुरस्कार आदि देने का आयोजन होता है। अतः भोजपुरी गद्य अपनी स्वाभाविक गति से विकसित हो रहा है।

नाटक एकांकी—

भोजपुरी नाटक-एकांकी पर विचार करने के क्रम मे रविदत्त शुक्ल का नाम सर्वप्रथम हमारे सामने आता है जिनका देवाक्षर चरित नाटक

(रचनाकाल-प्रकाशनकाल सन् १८८४) यद्यपि नागरी लिपि की ओर ध्याना-कर्षण करता है तथापि तीसरे और चौथे अंक की गवाही से स्पष्ट है कि लेखक भोजपुरी भाषा का भी कल्याण चाहता है। भिखारी ठाकुर, राहुल सांकृत्यायन, गोरखनाथ चौबे, दुर्गाशंकर सिंह नाथ, रामेश्वर सिंह काश्यप, रसिक बिहारी ओझा निर्भीक, मधुकरसिंह, स्वर्णकिरण आदि अन्य नाम भी नाटक-एकांकी लेखक के रूप में यहाँ प्रस्तुत किये जा सकते हैं। भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों में सामाजिक बुराइयों की ओर हमारा ध्यान खींचा है, बूढ़े का ब्याह, दहेज की कुप्रथा आदि पर कशाघात किया है, बिदेसिया नाटक इनका साक्षात् प्रमाण है। राहुल सांकृत्यायन के नाटक नइ की दुनिया, दुलमुल नेता, मेहरारुन के दुरदसा, जोंक, ई हमार लड़ाई, देसरक्षक, जपनिया राछछ, जरमनवा के हार निश्चय मूलतः साम्यवादी विचारधारा के लिए जैसे मंच का काम करते हैं। नाटककार समाज-चेतना और राजनीतिक चेतना से अपरिचित नहीं है। गोरखनाथ चौबे ने उल्टा जमाना (सन् १९४२-४३) लिखकर जहाँ राहुल जी के 'मेहरारुन के दुरदसा' का जवाब दिया है वहाँ स्त्रियों की उच्च-शिक्षा का विरोध भी किया है। दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह नाथ का नाटक 'बाबू कुँवरसिंह' कुँवरसिंह के पौरुष और साहस का दिग्दर्शक है। कुँवरसिंह भोजपुरी नाटक जगत के जैसे एक प्रमुख लोकप्रिय पात्र हैं जिन पर मधुकर सिंह, स्वर्णकिरण आदि की भी लेखनी चली है। रामेश्वरसिंह काश्यप ने केहरसिंह के माध्यम से ग्रामीण एवं नगर परिवेश में व्याप्त सामाजिक कुटेवों, असंगतियों एवं विसंगतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। काश्यप जी वस्तुतः मूल रूप में सामाजिक नाटककार हैं जिनको सामयिक चेतना की गहरी पकड़ है। हास्य-व्यंग्य की ओर इनका झुकाव स्वाभाविक रूप में दीखता है। रसिक बिहारी ओझा निर्भीक ने 'परछाहीं' नामक पुस्तक के द्वारा भोजपुरी स्वगत छाया नाट्य को प्रतिष्ठित किया है—केकयी, रामायण के रचनाकार तुलसीदास, सीताहरन के बाद रावन अशोक बन में सीता, सकुंतला के भाई, ताशकंद समझौता के बाद शास्त्री जी आदि छायानाट्यों के द्वारा कैकेयी, तुलसीदास, रावण, सीता, मेनका, शास्त्री जी आदि के मनोभावों का मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण नाटककार की कुशलता का द्योतक है। मधुकर सिंह का 'रुक जा बदरा' भोजपुरी गीतिनाट्य का अच्छा उदाहरण है। रामनाथ पाठक प्रणयी की संगीतिका बरदान, रितुरंग वस्तुतः गीतिनाट्य की परम्परा में ही आते हैं। यहाँ नाटककार की समाज चेतना भी कम मुखरित नहीं दिखलाई पड़ती। स्वर्णकिरण के 'पश्चात्ताप' के द्वारा जहाँ भोजपुरी नाट्यजगत में गीतनाटक का श्रीगणेश किया है वहाँ अंडीमुंडी, अँधार, झनकबाई आदि के

द्वारा पाठ्य-मंच्य एकांकियों को भी प्रस्तुत किता है। रसिक विहारी ओझा निर्भीक का एकांकी-संग्रह बुरवक वनली में बुरवक वनली सार राखि के, बुरवक वनली नोकर राखि के आ खूबसिह भोजपुरी के सफल प्रहसन है। बुरवल वनली लेखक वन के, लइकन के विकरी, देसी मुरगि विलाइती बोल और जीवन के वना, समस्या सूत्र, व्यंग्य प्रधान सामाजिक-पारिवारिक एकांकी के उदाहरण है। ललिताकांत शरण का सोहन सिंध खाँटी भोजपुरी भाषा—प्रयोग और अभिनेयता के कारण चर्चा का विषय है। वीरेन्द्रकिशोर का ववुआव, नवघड़ी मदरा, मधुर कमल का देस के धरम, चौधरी कन्हैयाप्रसाद सिह का गोवर के पइसा आदि भी इस क्रम मे विचार के विषय वन सकते हैं।

कहानी-उपन्यास—

भोजपुरी साहित्य में कहानी-उपन्यास अपनी लोकप्रियता के कारण शनैः शनैः विकास को प्राप्त हो रहे है। कथातत्त्व की ओर चूँकि मनुष्य मात्र का स्वाभाविक सम्मान रहता है—'के ना कहल कहनी' की वात मस्तिष्क के सामने नाचकर कहानी लेखन की सरलता की ओर इशारा करती है। कहानियाँ प्रारम्भ से ही लिखी जाती रही हैं। लोककथाओं की परम्परा बड़ी पुरानी है जहाँ वालकों के मनोरंजन को विशेष रूप से ध्यान मे रखा जाता है। भोजपुरी के कहानी-संग्रह के रूप में अववविहारी सुमन का 'जेहल के सनदि' भोजपुरी जनता की ठसक, रोव-दाव, राग-द्वेष आदि से हमें पहले-पहल परिचित कराता है। चन्द्रभूषण सिन्हा के द्वारा सम्पादित भोजपुरी कहानी-सग्रह भोजपुरी साहित्य परिषद्, जमशेदपुर (प्रकाशन वर्ष १९६२) रामवली पाडेय द्वारा सम्पादित भैरवी क साज, भोजपुरी संसद, वाराणसी द्वारा प्रकाशित (प्रकाशन काल सवत २०२४) भोजपुरी कहानियों की विच्छित्तियाँ भाषा प्रयोगो को हमें वतलाते हैं। कथानक प्रधान, चरित्र प्रधान वातावरण प्रधान, भाव प्रधान, ऐतिहासिक, सामाजिक. मनोवैज्ञानिक आदि कहानी के सभी प्रकार भोजपुरी जगत मे विकास को प्राप्त हो रहे है। हिंदी के प्रतीक, शैली, शिल्प आदि का प्रचुर प्रभाव भोजपुरी कहानियो में दिखलाई पडता है। कहानीकारो की एक लंवी सूची है· विमलानन्द सरस्वती, कश्यप जी, पांडेय नर्मदेश्वर सहाय, विवेकीराम, कन्हैयासिंह, मंजुकुमारी वर्मा, मधुकर सिंह, उमाशंकर सहाय, रामनाथ पांडेय, जगन्नाथ, रामेश्वरप्रसाद वर्मा, गणेशदत्त किरण, वीरेन्द्र नारायण पांडेय, विजेन्द्र अनिल इत्यादि। रामवृक्षराम विधुर का कहानी-संग्रह खैरा पीपर कवहूँ न डोले (प्रकाशन काल २०२१ वि०) गाजीपुर जनपद के ठेठ परिवेश का परिचायक है। यहाँ गाँव के जीते-जागते

चित्र, गाँव की समस्याएँ, गाँव के भाषा-प्रयोग सहज रूप में द्रष्टव्य हैं। राधिका देवी श्रीवास्तव यद्यपि हास्यरस की कहानी लेखिका के रूप में भोजपुरी जगत में प्रसिद्ध हैं तथापि इनकी गम्भीर व्यंग्यपरक कहानियाँ भी उपेक्षा का विषय नहीं। उदाहरणार्थ, 'पोल' कहानी—ढोंगी नेताओं के प्रदर्शन पर कशाघात का सुन्दर दृष्टान्त है। ग्रामांचल के जीवित जीवन के बीच जीवन को टोहने की इच्छा से प्रस्तुत राय सच्चिदानन्द का कहानी संग्रह 'बटोही' (प्रकाशन वर्ष सन १९६९) कहानीकार की पैनी दृष्टि, भाषा प्रयोग, व्यंग्य-प्रहार को रेखांकित करता है। कामताप्रसाद ओझा दिव्य ने चिटुकी भरि सेनुर कहानी संग्रह (प्रकाशन काल संवत २०२६ विक्रम) के माध्यम से ग्रामीण-मिट्टी की गंध के महत्व और सम्भावना को संकलित किया है। दिव्य जी कहानियों की चित्रात्मकता-गतिशीलता, क्षमणशक्ति, प्रभविष्णुता और सोद्देश्यता के विश्वासी हैं। भोजपुरी में लघुकथाएँ भी लिखी जा रही हैं जिनके लेखकों में बच्चन पाठक सलिल (आपन अमकर, नान्ह आवड़), दिवाकरलाल अंकुर (लालच के फल) जगदीशचन्द्र मिश्र (उमिर के फेर, बुद्धू सेठ) डॉ० सत्यदेव ओझा (उतुनो, मवितरी), रसिकविहारी ओझा निर्भीक (अपने पांड़े ढिमिलिया खाले, करम के मेल) जयबहादुर सिंह (चोकर, सज्जनता : उपरी आमदनी) आदि पन्द्रह कहानी लेखकों की लघुकथाओं का संग्रह पहले पहल छोटी मुटी गाजी मियाँ के नाम से जमसेदपुर भोजपुरी साहित्य परिषद् के द्वारा सन १९६४ में प्रकाशित हुआ। संग्रह की कहानियाँ भोजपुरी कथाजगत में लघुकथाओं के अस्तित्व एवं विकास की सम्भावनाओं की परिसूचक है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ बराबर निकलती रहती हैं। 'भोजपुरी कहानियाँ' के कतिपय विशेषांक यथा—लोककथा विशेषांक, शहीद विशेषांक, हास्य विशेषांक, पौराणिक कथा विशेषांक. होली विशेषांक आदि। 'अँजोर', 'गाँव-घर', 'भोजपुरी साहित्य', भोजपुरी जनपद' आदि पत्रिकाओं मे प्रकाशित कहानियों के आधार पर यह नि.संकोच स्वीकार किया जा सकता है कि भोजपुरी कहानी का भविष्य उज्ज्वल है। कहानीकार गाँव से नागरिक परिवेश की ओर उन्मुख होते चले जा रहे हैं। खेद है भोजपुरी के उपन्यास का प्रथम प्रकाशन सन १९५४ मे पहले नही हो सका। बिंदिया सन १९५४ मे (प्रकाशित) रामनाथ पांडेय के द्वारा लिखित भोजपुरी का प्रथम आंचलिक उपन्यास है जो गांव के खेत-खलिहान, चौपाल-बथान, आँगन-दालान के सजीव चित्र को हमारे सामने रखता है और भारत के गाँव की वास्तविक समस्याओं पर विचार करने के लिये बाध्य करता है। बच्चन पाठक सलिल ने अपने उपन्यास 'सेमर के फूल' (प्रकाशन वर्ष सन १९६५) के द्वारा उच्चशिक्षा एवं

पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव पर व्यंग्य किया है। नायक भोला का पंडाबावा के लिए सेमर का फूल सिद्ध होना पंडा बावा के लिए समस्या हो अथवा नही हमारे लिए एक गम्भीर समस्या है। मनुष्य आँख मूँदकर परम्परा का पालन करे एक पत्नीव्रती रहे अथवा प्रेम-विवाह की ओर भी उन्मुख हो ? उपन्यास की भाषा ठेठ गँवई भाषा नही है। विजेन्द्र अनिल ने 'एगो सुबह-एगो साँझि' शीर्षक उपन्यास (प्रकाशन वर्ष—जून-जुलाई १९६७) नायक सतीश के सामने कमला (सुबह) और उषा (साँझि) के माध्यम से प्रणय की समस्या पर प्रकाश डालता है। उपन्यास की भाषा लेखक की प्रौढ़ता का परिचायक है। जगदीश ओझा सुन्दर उपन्यास 'रहनिदार बेटी' भारतीय आदर्श का सपोषण करता है। मधुकर सिंह के द्वारा लिखा जाने वाला उपन्यास ग्रामसेविका (भोजपुरी साहित्य. आरा मे प्रायः धारावाहिक रूप से प्रकाशित) अभी अधूरे रूप मे ही पडा है। यह लेखक की नयी-बूझ, संवेदनशीलता, साप्रतिक उच्छृङ्खलता, प्रखड विकास कार्यालय की धांधली आदि से हमे परिचित कराता है। उपन्यास निस्सदेह ग्रामसेविका की समस्या तक ही सीमित नही है। भोजपुरी उपन्यास वस्तुतः अभी विकास के पथ पर है।

निबन्ध, रेखाचित्र, यात्रा, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी, चिट्ठा--

भोजपुरी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में यद्यपि साहित्य की अन्य विधाओं के साथ भोजपुरी के निबन्ध की विधा को भी स्थान मिलता रहा है तथापि सग्रह के रूप मे विवेकी राय का एक संग्रह 'के कहल चुनरी रँगाल' (प्रकाशन काल सवत २०२५ विक्रम) अभी प्रकाश मे आया है जो वस्तुतः वैयक्तिक ललित निबन्धो का प्रतिनिधि सग्रह कहा जा सकता है। भोजपुरी क्षेत्र का ग्रामीण परिवेश यहाँ सम्पूर्ण रगीनी के साथ उपस्थित है। विवेकी राय वस्तुतः सर्वतोमुखी प्रतिभा के लेखक हैं और भाषा के जबर्दस्त प्रयोक्ता है। पत्र-पत्रिकाओ के पाठको के लिए यह नये हस्ताक्षर नही हैं। भावात्मक, विचारात्मक, समीक्षात्मक, कथात्मक सभी प्रकार के निबन्धो को इन्होने 'के कहल चुनरी रँगाल' में स्थान दिया है। भाषा का लालित्य, विचारो का स्वातन्त्र्य, अनुभव का गाभीर्य यहाँ स्पष्ट रूप से मुखरित है। अन्य निबंध लेखको मे रामेश्वरनाथ तिवारी (डायरी के पन्ना, भो० सा० २।१७, फ० ६७) स्वर्णकिरण (नाम निरूपण नाम जतन ते, भो० सा० २।७, फ० ६७) निर्भीक (पड़चा, अँजोर ६।३-४, अक्टू० १९६८, जन० ६९) आदि के नाम यहाँ प्रस्तुत किये जा सकते है। समीक्षात्मक, आलोचनात्मक निबन्ध लेखकों मे अग्रणी है वीरेन्द्रकिशोर (गान्ही), बनारसीदास भोजपुरी (सत दरियादास), कृष्णानन्द पाठक (भोजपुरी में बसन्त), डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री (भोजपुरी शब्दों की

व्युत्पत्ति), विश्वरंजन (भोजपुरी लोककथा) इत्यादि। रेखाचित्र वस्तुतः निवन्ध और कहानी के मिले-जुले रूप के द्योतक है। भोजपुरी में सुरतिया ना विसरे' नामक एक रेखाचित्र रसिकविहारी ओझा निर्भीक के द्वारा लिखित जमशेदपुर भोजपुरी साहित्य परिपद् के द्वारा प्रकाशित हुआ है। यहाँ लेखक ने अपने जीवन को प्रभावित करने वाले पत्रों वुधुलिया मोटका, वावाजी, हथिया, पगली, वावू रामसकलसिह आदि के चित्र को कलात्मक ढंग से सामने रखा है।

यात्रावृत्त के नाम पर भोजपुरी में जमशेद भोजपुरी साहित्य परिपद के द्वारा डॉ० सत्यदेव ओझा के सम्पादन में 'फोकट में सैर' नामक यात्रा-संस्मरण (प्रकाशन वर्ष सन १९६७) प्रकाशित हुआ है। यहाँ आगरा, उत्तरी सीमाप्रांत, जगन्नाथपुरी, चित्रकूट, भीरुगक्षेत्र, आरा से कोइलवा, वक्सर, सासाराम, हथुआ, रामेश्वर धाम, मिर्जापुर, चुनार, राँची, जयपुर, चित्तौड़ के रोचक यात्रा-विवरण अधिकारी लेखकों के द्वारा उपलब्ध है।

संस्मरण स्फुट रूप से पत्र-पत्रिकाओं में निकलते रहे हैं—यथा—भूत के दरशन (लेखक—गुलजारप्रसाद आर्य, गाँवघर १०।११, १६ अप्रैल '६६)। रिपोर्ताज के नाम पर श्रीकृष्ण तिवारी का 'गहकर में एक दिन, दू राति' (भो० क० ५।८, जु० १९६६), डायरी के नाम पर रामेश्वरनाथ तिवारी का डायरी का पन्ना (भो० सा० २।१७, फर० १९६७)। चिट्ठा के नाम पर फटिक वैरागी का चिट्ठा—होरवे तनि छूटि के (भो० सा० २।२०, अगस्त १९६७) का उल्लेख किया जा सकता है।

आलोचना, अनुसंधान, व्याकरण, कोश इत्यादि—

भोजपुरी आलोचना एव अनुसंधान प्रारम्भिक रूप मे ही दृष्टिगोचर है। ऐसा मालूम पडता है कि धीरे-धीरे लोगों का ध्यान भोजपुरी की शक्ति एव सामर्थ्य की ओर जा रहा है। प्रकाशित ग्रन्थो के रूप में वलिया जिला के कवि और लेखक (प्रसिद्ध नारायण सिह), भोजपुरी लोक-साहित्य : एक अध्ययन (वैजनार्थसिह 'विनोद), वावू कुँवरसिह (दुर्गाशंकर प्रसाद सिह), भोजपुरी लोकगाथा (डॉ० सत्यव्रत सिन्हा) उल्लेख्य प्रयास हैं। भोजपुरी भापा और साहित्य के द्वारा लेखक उदयनारायण तिवारी ने पहली वार भोजपुरी भापा और साहित्य का वैज्ञानिक गवेपणापरक अध्ययन प्रस्तुत किया है। भोजपुरी की ऐतिहासिक, आलोचनात्मक, ध्वनि विज्ञानात्मक, व्याकरणमूलक दृष्टि से प्रस्तुतीकरण वस्तुतः भोजपुरी जगत के लिए गौरव और गर्व का विषय है। भोजपुरी व्याकरण के अध्ययन का भी प्रतिविंव भोजपुरी भापा और साहित्य मे स्पष्टतः दीखता है। कदाचित इसी से प्रेरणा प्राप्त कर

वाराणसी के दंडी स्वामी विमलानन्द सरस्वती ने भोजपुरी व्याकरण को प्रस्तुत किया है। भोजपुरी व्याकरण के अध्ययन के स्फुट प्रयास भी पत्र-पत्रिकाओं मे दीखते है—यथा—विध्याचलप्रसाद श्रीवास्तव द्वारा भोजपुरी व्याकरण के सर्वनाम का अध्ययन (अँजोर ६।३-४, अक्टू० '६८—जन० '६६). भोजपुरी के विशेषण का अध्ययन (अँजोर ११।१-२, अप्रैल-जुलाई '७०) इत्यादि।

भोजपुरी भाषा मे कोश ग्रन्थ का अभाव है। डॉ० फैलन द्वारा सपादित डिक्सनरी ऑफ हिंदुस्तानी प्रोवर्ब्स (सन १८८५ ई० मे प्रकाशित), गोरक्षहरि द्वारा सकलित भोजपुरी बुझउवलि वस्तुतः आरम्भिक प्रयास है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा द्वारा प्रस्तुत लोककथा-कोश (१९५९), लोकगाथा परिचय (१९५९), लोक साहित्य : आकर-साहित्य-सूची (१९५९) वास्तव मे कोश-निर्माण मे आधार-माध्यम है। लोककथाओं, लोकगाथाओं का सविस्तार अध्ययन, प्रस्तुतीकरण होना अभी बाकी है। भोजपुरी मे कोश-निर्माण का प्रयास सम्भवतः चल रहा है। उदाहरणार्थ—अजोर (त्रैमासिकी, पटना) मे प्रकाशित मानस भोजपुरी शब्द-कोष। कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विद्वान् भोजपुरी को सपुष्ट करने के लिए बद्ध परिकर है। सन्दर्भ ग्रन्थों का निर्माण कदाचित विकास के पथ पर है।

पत्र-पत्रिकाएँ—

भोजपुरी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रचुर रूप मे उपलब्ध नही है। यथोचित प्रोत्साहन के अभाव, प्रचार-प्रसार की असुविधा के कारण पत्र-पत्रिकाओं का समुचित विकास नही हो सका है। कतिपय पत्रिकाएँ इस भोजपुरी भाषा मे प्रकाशित हुई पर असमय मे ही काल-कवलित हो गयी। अर्थाभाव ने प्रकाशकों की कमर तोड दी। पुनरपि ऐतिहासिक दृष्टि से भोजपुरी (मासिक, पटना; सम्पादक—महेन्द्र शास्त्री), भोजपुरी (मासिक, आरा; सम्पादक—विश्वनाथ सिंह तथा रघुवंशनारायणसिंह), गाँवघर (पाक्षिक, आरा; सम्पादक—भुवनेश्वर नाथ श्रीवास्तव भानु), अँजोर (त्रैमासिक, पटना; सम्पादक—पांडेय नर्मदेश्वर सहाय), भोजपुरी कहानियाँ (मासिक, वाराणसी; सम्पादक—रामवली पांडेय), भोजपुरी साहित्य (मासिक, आरा; सम्पादक—जितराम पाठक), भोजपुरी जनपद (मासिक, वाराणसी; सम्पादक—राधेश्याम राधेश तथा वीरेन्द्रनारायण पांडेय), माटी की वोली (मासिक, छपरा; सम्पादक—विश्वनाथ पथिक), पुरवइया (त्रैमासिक, वाराणसी; सम्पादक—रामवली पांडेय) इत्यादि के नाम तो प्रस्तुत किये ही जा सकते है। इन पत्रिकाओं में भोजपुरी (पटना), भोजपुरी (आरा), गाँवघर, भोजपुरी साहित्य, माटी की वोली, पुरवइया के

प्रकाशन सम्प्रति स्थगित हैं। इन पत्रिकाओं के द्वारा भोजपुरी की सांप्रतिक गतिविधि की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है, हो सकती है। भोजपुरी साहित्य की विविध विधाएँ इनमें स्थान पाती हैं। अतः ये पत्र-पत्रिकाएँ भोजपुरी भाषा के विकास के लिए कड़ी का काम करती हैं। यद्यपि पत्र-पत्रिका के सम्पादक अपनी निर्धारित नीति के अनुसार पत्र-पत्रिकाएँ चलाते है तथापि शाश्वतिक साहित्यिक मूल्य में कही व्यवधान नहीं आता। पत्र-पत्रिकाएँ वस्तुतः भोजपुरी भाषा की सांप्रतिक एवं शाश्वतिक दोनों प्रकार की समस्याओं को आत्मसात् कर चलती हैं।

भोजपुरी भाषा वास्तव में एक शक्तिशाली एवं सम्भावनाओ से आपूरित भाषा है। इसकी शक्ति एवं सीमा धीरे-धीरे स्पष्ट होती चली जा रही है। विभिन्न विद्वान् विभिन्न दृष्टियों से इस भाषा और साहित्य का संवर्द्धन-विवर्द्धन कर रहे हैं। निस्सन्देह भोजपुरी ग्रामीणो की, अशिक्षितो की भाषा मात्र नहीं है, नही हो सकती। स्वतन्त्र रूप से इसका विकास वैदिक काल से ही हो रहा है। समय-समय पर जब लोगो का ध्यान इस भाषा के उत्थान की ओर नहीं गया, इसका यथोचित विकास अवरुद्ध रहा—यह स्वाभाविक ही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर हिंदी के विद्वान् एवं लेखको का ध्यान इस भाषा के उत्थान की ओर नाटकीय ढङ्ग से गया। फलतः शोध, अनुसन्धान कार्य आदि आज दृग्गोचर हैं। मौलिक रूप से भोजपुरी भाषा और साहित्य के लेखक प्रचुर रूप मे उपलब्ध हैं जो विभिन्न प्रकार की रचनाओ के द्वारा भोजपुरी के भडार की श्रीवृद्धि कर रहे हैं। इनमे से कुछ विद्वान एवं लेखक अनुवाद कार्य भी करते हैं संस्कृत, अंग्रेजी आदि इतर भाषाओं मे किया गया अनुवाद-कार्य भोजपुरी के विकास मे सहायक है। अनुवादक यद्यपि मौलिक साहित्य सर्जक की तरह सम्मान के अधिकारी नहीं समझे जाते तथापि उनका महत्व सुदृढ रूप से सुरक्षित है। अनुवादक वस्तुतः अनेक अथवा कम से कम दो भाषा के जानकार होते है, जानकार ही नही अच्छी गति रखते हैं। अतः उनके द्वारा दूसरी भाषा का रूप ज्ञात भाषा मे सहजतापूर्वक उपलब्ध हो जाता है। सम्पादक के रूप मे भोजपुरी भाषा और साहित्य की सेवा करने वाले थोड़े हैं पर वे भी मूलतः भोजपुरी की शक्ति एव सामर्थ्य से परिचित है। भोजपुरी भाषा मात्र मनोरंजन का ही साधन नही है अपितु हम अपने मनोभावों को इसमे कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त कर सकते हैं। यह जान-पदीय, आंचलिक भाषा के रूप में कदापि उपेक्षणीय नहीं है अपितु शिष्ट, सम्भ्रान्त, शक्तिसम्पन्न, सम्भावनाओ से आपूरित भाषा के रूप विचार, विश्लेषण

का विषय है। भोजपुरी शब्द भांडार, भोजपुरी लोकगीत, भोजपुरी पहेलियाँ; भोजपुरी कहावतें, भोजपुरी स्वर लिपियाँ, भोजपुरी ध्वनियाँ आदि हमारी धरोहर हैं। आवश्यकता है, भोजपुरी के विधिवत् अध्ययन की व्यवस्था और प्रामाणिक कोश की जिनकी ओर मान्य विद्वानों एवं अधिकारियों का ध्यान नहीं के बराबर जा पा रहा है। भोजपुरी के शोध कार्य में भी गति आनी चाहिए। भोजपुरी के लेखक भोजपुरी की विभिन्न विधाओं के प्रस्तुतीकरण के लिए जो तत्पर है यह भोजपुरी भाषा की जीवन्तता का अभिसूचक है। भोजपुरी भाषा वस्तुत विश्व की गतिशील भाषा है और अनेक सम्भावनाएँ इसके साथ लगी-लिपटी हैं।

भोजपुरी की साहित्य-संपदा

—गणेश चौबे

भोजपुरी पश्चिमी विहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के पन्द्रह जिलों में पूर्णत: या आंशिक रूप से बोली जाती है। मध्य प्रदेश और उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्र के भी कुछ हिस्सों की यह बोली है। यह कथन लेखक का नहीं, किन्तु स्व० डॉ० ग्रियर्सन जैसे विश्व विख्यात भाषाविद् का है, जिनके जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा विहार में बीता है। भोजपुरी क्षेत्र के बाहर पूर्णिया, संथाल परगना और भागलपुर जिले के अनेक भागों में, धनबाद, बोकारो, जमशेदपुर और राँची नगर में भोजपुरी बोलने वालों की संख्या बहुत बड़ी है। देश के कलकत्ता, ग्वालियर, बम्बई, कानपुर आदि औद्योगिक शहरों, आसाम के चाय बागानों के अतिरिक्त नेपाल के चार जिले, फीजी, मौरिशस, बृटिश गायना, दक्षिण अफ्रीका और बर्मा में भी भोजपुरियों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ हैं और उनकी मातृभाषा के रूप में भोजपुरी व्यवहृत है। भोजपुरियों की अपनी एक गौरवमयी संस्कृति है, इस तथ्य को कोई भी विवेकशील व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता।

प्राचीन साहित्य—

विहार की अन्य भाषाओं मैथिली और मगही की भाँति भोजपुरी साहित्य का आदि रूप हमें सिद्धों और नाथपंथी जोगियों की वाणियों में देखने को मिलता है। भोजपुरी के प्राचीनतम कवि जिनकी रचनाएँ यथेष्ठ मात्रा में उपलब्ध हैं, कबीर हैं। कतिपय हस्तलिखित पोथियों के आधार पर कहा जाता है कि कबीर के पदों की भाषा खड़ी बोली है, जिस पर पंजाबी और राजस्थानी का प्रभाव है। कबीर स्वयं निपढ थे और उनके पद बाद में, उनके शिष्यों द्वारा मौखिक परम्परा से लिपिबद्ध किये गये प्रतीत होते हैं। किसी पद को गाने के क्रम में उसमे परिवर्तन होता रहता है। कबीर के पदों के साथ भी ऐसा ही हुआ है। ऐसा लगता है कि कबीर अपनी रचनाओं के परिवर्तित रूप को देखकर स्वयं चिन्तित थे और उन्होंने कहा भी है—

बोली हमरी पुरब की, हमें लखै ना कोय।
हमको तो वोही लखै, धूर पूरब का होय॥

इधर हिन्दू वि० वि० के हिन्दी के प्राध्यापक डॉ० शुकदेव सिंह ने प्राचीन पाण्डुलिपियों के आधार पर अपने शोध-प्रबन्ध में यह सिद्ध कर दिया

है कि कबीर के बीजक की मूल भाषा भोजपुरी थी। उस थिसिस के प्रकाशित होने पर लोगों का तत्सम्बन्धी भ्रम दूर हो जायगा। पहले विद्यापति भी बंगला के कवि माने जाते थे। भोजपुरी क्षेत्र कबीर पंथ, सखी, सरभंग, सतनामी, दरियादासी और बावरी सन्त-सम्प्रदायों के उद्भव और विकास की भूमि है। इन सम्प्रदायों के ढेर के ढेर भोजपुरी मे पद उपलब्ध हैं। सत्रहवी सदी के सन्त धरनीदास, नवनिधिदास, शंकरदास, नायक बाबा आदि अन्य वैष्णवों ने भोजपुरी में प्रभूत पदो की रचना की है। जरूरत इस बात की है कि कोई मनस्वी विद्वान भोजपुरी के सिद्ध नाथ-सन्त साहित्य का मंथन कर उसके रत्नों को एक मंजूषा में सुसज्जित कर दे।

आधुनिक काव्य साहित्य—

भोजपुरी में आधुनिक कविता का आरम्भ अनिराज के कुँअरसिंह के चरित मे होता है जिसमें सन सत्तावन के स्वाधीनता-संग्राम का ओजस्विनी भाषा में वर्णन है। खेद है कि यह ग्रन्थ अब तक अप्रकाशित हैं। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में स्व० दूधनाथ उपाध्याय की गोविलाप छन्दावली (१८६३ ई०), तेगअली का बदमास दरपन (१८९५ ई०) और रामकृष्ण वर्मा का बिरहा (१९०० ई०) प्रकाशित हुआ। बीसवी सदी के प्रथम चरण के कवियों में उल्लेखनीय हैं—बटोहिया के रचयिता स्व० रघुवीर नारायण, जिनकी भोजपुरी रचनाएँ उनकी हिन्दी कविताओं के सग्रह 'रघुवीर पत्र-पुष्प' और 'रघुवीर रस-रंग' (१९१७ ई०) में प्रकाशित हैं। बाबू रघुवीर नारायण की एक प्रसिद्ध भोजपुरी रचना है विजयी नायक रामायण जिसमे राम-रावण युद्ध की कथा वर्णित है। प्रथम जर्मन युद्ध के समय सन १९१४ ई० में दूधनाथ उपाध्याय का 'भारती के गीत' छपा, जिसके ओजस्वी गीतो ने अगणित भोजपुरी नौजवानो को युद्ध मे भर्ती होने के लिए प्रेरित किया। फिर उनकी 'भूकप पचीसी' आयी। सन १९४८ ई० मे चम्पारन जिले के बेतिया नगर के निवासी स्व० श्यामबिहारी तिवारी 'देहाती' की देहाती-दुलकी प्रकाशित हुई। यह भोजपुरी का पहला कविता-संग्रह है, जिसमें आधुनिक विचारधारा और भावनाओं का सम्यक प्रस्फुटन हुआ है। इसके बाद से भोजपुरी में सैकड़ो सुन्दर कविता-ग्रंथ प्रकाश मे आये। इनमे अमरलत्ती] अशान्त], गाँव के ओर [अरविन्द], कोइलिया, पुरइन के फूल, सितार [प्रणयी], आसा, जीवनगीत, बिनिया-बिछिया [डा० पाडेय], चोखा, धोखा [महेन्द्र शास्त्री], आधुनिक भोजपुरी गीत, भोजपुरी के नये गीत, राहगीर के गीत [राहगीर], गुनावन, एटम के युग मे [नाथ], राही [निर्मल], सेमर के फूल, महुआबारी [मोती

बी० ए०], जिआरा बोले [नीलम], पाँख सतरंगी [जगन्नाथ], बयार पुरवइया [गहमरी], बिसराम के बिरहे [सिन्हा], रुक जा बदरा [मधुकर], हिमालय ना झुकि कबहूँ [बेमुरा], संगम [सुन्दर], तरंगिनी [श्यामसुन्दर], हरिअर-हरिअर खेत में [प्रभुनाथ], पीजड़ा, बावनी [किरण], भोजपुरी कविता कुंज [ज्ञानमंडल], माटी के महक [कन्हैया], अपना देश, चितचोर [शैदा], आदर्श भोजपुरी कविता कुंज [गोरखहरि], चित्र-विचित्र [कुबेरनाथ], हलफी [मृगेन्द्र], झुलकि बहे ना [विधुर], उमंग [परमेश्वर शाहाबादी], मधुबन [विप्र], बिगुल [मनीन्द्र], गाऊँ-गिनाऊँ [तरल], गाँव गिरान [सौमित्र] और हिमगिरि के नेवता [श्याम], लहर-लहर में सावन [डा० बसंत], भोर हो गइल [कपिल] आदि बहु चर्चित हैं। हमने जान बूझ कर उन पुस्तकों की चर्चा नहीं की है, जिनमें एक ही साथ हिन्दी और भोजपुरी दोनों भाषाओं की कविताएँ संकलित हैं। इसी प्रकार इस बात की भी चर्चा व्यर्थ ही लगती है कि सतीश्वर सहाय वर्मा 'सतीश', उमाकान्त वर्मा, योगेन्द्रनाथ शर्मा, अनिरुद्ध, जनार्दन पाण्डेय 'विप्र', हरिराम द्विवेदी, माहेश्वर तिवारी 'शलभ', मदनमोहन सिन्हा मनुज, अविनाश चन्द्र विद्यार्थी आदि भोजपुरी के अनेक कवियों की रचनाएँ प्रकाशन-व्यवस्था के अभाव में प्रकाशित नहीं हो पा रही हैं।

भोजपुरी के महाकाव्यों में हरेन्द्रदेव का 'कुँअरसिंह', स्वर्गीय दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह 'नाथ' का 'साहित्य रामायण' और चन्द्रशेखर मिश्र का 'कुँअर सिंह महाकाव्य' प्रमुख हैं, जिनमें मिश्रजी का ग्रन्थ उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत भी है। खण्ड काव्यों में कुणाल (रामबचन लाल), सुदामा यात्रा (श्याम) और भोजपुरी वीर काव्य (प्रसिद्ध नारायण सिंह) आदि उल्लेखनीय हैं। स्वामी विमलानन्द सरस्वती का एक महाकाव्य 'बउधलीला' निकट भविष्य में प्रकाश्यमान है।

कथा-साहित्य—

भोजपुरी का प्रथम उपन्यास 'बिंदिया' (रामनाथ पाण्डेय, १९५४) और प्रथम कहानी-संग्रह 'जेहल क सनदि' (सुमन, १९४८) हैं अन्य उपन्यास जिनकी यहां चर्चा की जा सकती है सेमर के फूल (सलिल) जीअन साह (विकल), रहनिदार बेटी (सुन्दर) और एगो सुबह : एगो साँझि (अनिल) आदि हैं। इसी प्रकार कहानियों के संग्रह में सेन्धी के साज (ईश्वर चन्द्र सिन्हा), खँरा पीपर कबहुँ ना डोले (विधुर), प्रेम-कथा (राधेश), बैरिन बँसुरिया (गिरजेश), बटोही (सच्चिदानन्द), भोजपुरी कहानी-संग्रह, छोटी-मोटी गाजी मियां (चन्द्रशेखर), बुढ़िवक बहार, चम्हाक चाँवड़ी (नन्दकिशोर

झा) और चिटुकी भरि सेनुर (दिव्य) आदि सुन्दर कृतियाँ होने के कारण उल्लेखनीय हैं। बनारस से निकलने वाली मासिक 'भोजपुरी कहानियाँ' ने अपने सात वर्ष के जीवन काल मे भोजपुरी के लिए लगभग साढ़े तीन हजार पृष्ठों में कथा साहित्य दिया है।

नाटक—

उन्नीसवी सदी के अन्तिम चरण मे पं० रविदत्त शुक्ल ने 'देवाक्षर चरित' एवं 'जंगल में मंगल' और पं० रामगरीब चौबे ने 'नागरी विलाप' नामक नाटक हिन्दी मे लिखे थे जिनके कुछ अक भोजपुरी में थे। सन १६४० ई० के आस-पास द्वितीय जर्मन महायुद्ध के समय जोंक, मेहरारून के दुरदसा, जपनिया राक्षस, जरमनवा के हार निहचय आदि स्व० राहुल जी के आठ नाटक प्रकाश में आये। उसी समय गोरखनाथ चौबे का उल्टा जमाना भी प्रकाशित हुआ। तब से अनेक पूर्ण नाटक, एकांकी, संगीत रूपक, रेडियो रूपक, और छाया नाट्य प्रकाशित हुए है। लोहासिह (काश्यप), सोटनसिह (ललिता कान्त शरण), बाबू कुँवरसिंह, न्याय के न्याय (स्व० दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह), शहीद मंगल पांडे (डा० पाण्डेय), बुरबक बनली (निर्भीक), वीर मंगल पांडे, मोती के धवद (विप्र), निरमोहिया (चौहान), नयकी पीढ़ी (शिवमगल सिह), सोना, जागरण, रेल-यात्रा (बिहार जन सम्पर्क विभाग) आदि अनेक नाटक उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त निर्भीक की परछाहीं (छायानाट्य), श्रीमती विंध्यवासिनीदेवी के मानव (संगीत-रूपक), अशान्ति, चन्द्रशेखर मिश्र प्रशान्त के कई एक गीत-रूपक और नृत्य-रूपक भी भोजपुरी मे प्रकाशित है। यहाँ लोक-नाट्यों की चर्चा अभीष्ट नही है।

निबन्ध साहित्य—

भोजपुरी में निबन्ध साहित्य की भी तेजी से वृद्धि हो रही है। चतुरी चाचा की चिट्ठियाँ (बेसुध), सुरतिया ना बिसरे (निर्भीक), फोकट में सैर (सत्यदेव ओझा), ऐनक (शशिबाला), रामेश्वर धाम की यात्रा (साँवलिया विहारी वर्मा) गाँधी गाथा, जीरादेई से सदाकत आश्रम तक (राधेश), धान की खेती (गगाराम), लहालोट (सलिल) आदि विविध विषयक निबन्ध ग्रन्थ इसके परिचायक है। 'के कहल चुनरी रगाल' ललित निबन्ध सग्रह मे प्रो० विवेकी राय की कलम का कमाल किसी को भी मुग्ध कर सकता है।

पत्र-पत्रिकाएँ—

इस समय भोजपुरी मे अँजोर (त्रैमासिक), भोजपुर टाइम्स, भोजपुरी कहानियाँ, भोजपुरी जनपद, भोजपुरी समाज मासिक पत्र-पत्रिकाओं का

प्रकाशन हो रहा है। श्री रघुवंश नारायण सिंह के सम्पादकत्व में करीब दस वर्षों तक भोजपुरी (मासिक) प्रकाशित होकर अब बन्द हो गयी है। अस्तंगत पत्रों में हिलोर, माटी के बोली, भोजपुरी साहित्य, पहरुआ (मासिक), पुरवइया (त्रैमासिक), भोजपुरी-वार्त्ता (दैनिक) प्रमुख हैं।

इस निबन्ध में मोटे तौर पर भोजपुरी साहित्य की प्रगति की एक झाँकी उपस्थित की गयी है। इसमे यह नही समझना चाहिये कि भोजपुरी मे इतना ही साहित्य है। ठेठ देहात में रहने के कारण भोजपुरी के सभी प्रकाशित ग्रन्थों की सूचनाएँ भी हमें नहीं मिल पातीं। हमें जितने प्रकाशनों की जानकारी है, उतने का भी समावेश इस लघुकाय लेख में नही हो पाया है। भोजपुरी में प्रति वर्ष बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं और उसके छोटे-बड़े साहित्यकारों की संख्या तीन सौ से भी अधिक है। इधर भोजपुरी को बिहार विश्वविद्यालय ने आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में मान्यता दी है और साहित्य अकादमी से उसकी मान्यता के लिए प्रयास जारी है। ●

('भोजपुरी जनपद' दिसम्बर ७०, जनवरी ७१, पृ० २५-२८)

मगही भाषा और साहित्य

—त्रिभुवन ओझा

मगही मुख्यतः प्राचीन मगध देश की भाषा है, लेकिन वर्तमान समय में यह बिहार राज्य की प्रमुख लोकभाषाओं में एक है। प्राचीन मगध देश के अन्तर्गत वर्तमान पटना जिला और गया जिला का आधा उत्तरी भाग आता है। वर्तमान समय में मगही प्राचीन मगध तक ही सीमित नहीं है। यह गया जिले के शेष भागों में तथा पश्चिम की ओर पलामू जिले के उस भाग में, जो गया जिले से मिलता है, बोली जाती है। समस्त हजारीबाग जिले में और पूरब की ओर मुंगेर तथा भागलपुर जिले के कुछ हिस्सों में भी बोली जाती है। इन समस्त भागों में मगही मूलतः एक एवं समान है, किन्तु जहाँ-तहाँ कुछ स्थानीय रूपान्तर भी इसके मिलते हैं।

इसकी पूर्वी सीमा पर मगही बंगला से मिलती है। यहाँ दोनों भाषाएँ एक दूसरे को आत्मसात् न कर सकीं। यह एक द्वि-भाषी भू-भाग है जहाँ दोनों भाषाएँ आमने-सामने अपने-अपने लोगों द्वारा बोली जाती हैं, यद्यपि न्यूनाधिक रूप में प्रत्येक एक दूसरे से प्रभावित भी है। बंगला से प्रभावित मगही के इस रूप को डॉ० ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने 'पूर्वी मगही' कहा है। पूर्वी मगही हजारीबाग जिले के दक्षिण-पूर्व भागों में, मानभूम, मयूरभंज (उड़ीसा) में, राँची जिले के दक्षिण-पूर्व भागों में तथा सरायकेला, खरसावाँ और छत्तीसगढ़ के बामरा में पायी जाती है। बंगला-भाषी मालदा जिले के पश्चिमी हिस्से पर भी मगही का प्रभाव है।

मगही उत्तर में वज्जिका से घिरी है और दक्षिण में राँची जिले की नागपुरिया से। पश्चिम में यह शाहाबाद और पलामू की भोजपुरी से घिरी है तो पूरब में बंगला से, उत्तर-पूर्व में मुंगेर और भागलपुर, सहरसा और पूर्णिया की अंगिका से और दक्षिण-पूर्व में सिंहभूम की बंगला से।

पूर्वी मगही के कई रूप हैं। प्रथम 'कुड़माली' है जो मयूरभंज और बामरा में बोली जाती है तथा चारों ओर उड़िया से घिरी है। दूसरी 'खोंटाली' कहलाती है जो पश्चिमी मालदा में बोली जाती है एवं उत्तर में वज्जिका से तथा पूर्व और दक्षिण में बंगला से परिसीमित है।

आदर्श मगही पटना, गया और हजारीबाग जिले में बोली जाती है। स्थानीय विशेषताओं के आधार पर आदर्श मगही के भी कई उपभेद—पटनिया,

सोनतरिया आदि—किये जाते हैं। उल्लेखनीय है कि आदर्श मगही के ये उपभेद उच्चारणगत विशिष्टताओं और भिन्नताओं के कारण ही हैं, इनमें कोई भाषागत मौलिक भेद नहीं है।

मगही का भाषा-वैज्ञानिक विवेचन डॉ० ग्रियर्सन ने भोजपुरी और मैथिली के साथ 'विहारी भाषा' शीर्षक के अन्तर्गत किया था। उन्होंने मगही का वंशगत सम्बन्ध मागधी प्राकृत और अपभ्रंश से माना है और भोजपुरी तथा मैथिली की उत्पत्ति भी मागधी प्राकृत–अपभ्रंश से मानी है। डॉ० ग्रियर्सन के इस निर्णय को गलत सिद्ध करने का प्रयास डॉ० जयकान्त मिश्र ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ दि मैथिली लिटरेचर' के भाग १ (पृ० सं० १७९ से २०१ तक) में किया। उन्होंने प्रतिपादित किया है कि डॉ० ग्रियर्सन ने जिसे 'विहारी भाषा' कहा है वह अपने सही अर्थ में मगही सहित मैथिली ही है। उन्होंने लिखा – 'It (Bihari means Maithili along with Magahi.' [हि० ऑफ दि मै० लि०, पृ० सं० ५६]। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भोजपुरी को बिहारी के अधिकार-क्षेत्र से बाहर किया और मगही को मैथिली की एक उपबोली माना। डॉ० मिश्र के भ्रम का एक कारण यह है कि उन्होंने केवल मैथिली को ही मागधी का मानदंड मानकर उसकी तुला पर अन्य मागधी भाषाओं को तौला है। डॉ० ग्रियर्सन के पूर्व भी कुछ लोगों की ऐसी धारणा थी कि बिहारी नाम की भाषा की बोलियों का एक ही व्याकरण आसानी से बनाया जा सकता है। परन्तु डॉ० ग्रियर्सन ने 'सेवेन ग्रामर्स ऑफ बिहारी लैंग्वेज' के प्रा० भाग, पृ० सं० १ में इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है कि बिहारी की इन बोलियों में यद्यपि काफी समानताएँ हैं तो भी प्रत्येक अपने कई क्षेत्रीय भेदों के साथ अनेक भिन्नताएँ रखती है। शब्द-भाण्डार में ये भाषाएँ बहुत ही कम भिन्न हैं। इनकी भिन्नता इनके व्याकरणिक सम्बन्धों और रूपों के कारण है।

भाषातत्त्व की दृष्टि से मगही के स्वतन्त्र अस्तित्व का समर्थन कई विद्वानों ने किया है। डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है कि "एक व्यक्ति ने यह समझते हुए कि समस्त बिहार में एक ही भाषा प्रचलित है, मुझे इसका एक स्वतन्त्र व्याकरण तैयार करने का सुझाव दिया।" इसका निराकरण करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है कि "वस्तुतः यह बात नहीं थी, बिहार की जनपदीय भाषा (बिहारी) के अन्तर्गत, सच में, तीन निश्चित बोलियाँ हैं जिनके अपने कई स्थानीय विभेद हैं।" (सें० ग्रा० बि० लैं०, प्रा० भाग—१) इतना ही नहीं अपने 'मगही व्याकरण' के प्रारम्भ में वे इस सूचना "भोजपुरी के व्याकरण

की अपेक्षा मगही के व्याकरण की आवश्यकता अधिक है" द्वारा यह सिद्ध करते है कि मगही का स्वतन्त्र अस्तित्व है, मैथिली की एक बोली मात्र वह नही है। उल्लेख्य है कि डॉ० ग्रियर्सन का 'मैथिली व्याकरण' मगही व्याकरण के प्रकाशन के पूर्व ही सन १८८२ में छप चुका था। यदि मगही मैथिली की उपबोली ही होती तो "मैथिली व्याकरण" के बाद मगही का स्वतन्त्र रूप से व्याकरण लिखने की आवश्यकता उनको न होती। डॉ० सुभद्र झा 'फार्मेशन ऑफ मैथिली लैंग्वेज' के परिचय अंश पृ० सं० ६ पर लिखते है—"मगही की स्वयं कई बोलियाँ है, अतएव इसका एक स्वतन्त्र विस्तृत अध्ययन होना चाहिए।" डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने भी 'कृषिकोश' की भूमिका मे पृ० स० २१ पर लिखा है कि "मगही और मैथिली का गठन कई अंशो मे परस्पर भिन्न है। दोनों के व्याकरण और उच्चारण मे पार्थक्य है। शब्द-रूप और क्रिया-रूप भी भिन्न-भिन्न हैं।"

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने समस्त मागधी प्रसूत भाषाओं को तीन वर्गो मे विभाजित किया है—पूर्वी मागधी, केन्द्रीय मागधी और पश्चिमी मागधी। उन्होंने बंगला, उड़िया तथा असमिया को पूर्वी मागधी के अन्तर्गत और भोजपुरी को पश्चिमी मागधी के अन्तर्गत रखा है। मैथिली, मगही को उन्होंने केन्द्रीय मागधी के अन्तर्गत रखा है।

मगही के भाषा-स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए उसकी व्याकरणिक विशिष्टताओं को सक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है :—

मगही स्वर-ध्वनियाँ निम्न प्रकार से वर्गीकृत की जा सकती है :—

१. मूल स्वर

क. अश्रुत—अ्, चर्वाह, हर्वाह आदि।

ख. ह्रस्व—अ, इ, उ

ग. दीर्घ विलम्बित—कऽ, खऽ, गऽ

घ. ह्रस्वोच्चरित दीर्घ—ऑ, मॉरलकइ
ऍ, ऍकहरा
ओ, ओझइया

ङ. दीर्घ—आ, ऊ, ई, ए, ओ

२. संध्यक्षर स्वर

क. ऐ (अइ, अए/अय्), मइल (मैल); कइल (कैल); वइर (वैर);
वएंल।वय्ल (वैल) आदि।
ऐँ (ह्रस्वोच्चरित), ऐँलकइ, गैँलकइ आदि।

ख. औ (अउ, अव्), कउआ (कौआ); मउत (मौत); घवद् (घौद)
औ (ह्रस्वोच्चरित), औधायल।

मगही में संध्यक्षर स्वर 'ऐ' और 'औ' की एक विचित्र स्थिति है। यहाँ इनका उच्चारण बहुधा स्वरानुक्रम के रूप में होता है। कहीं-कही ये 'य-श्रुति' तथा 'व-श्रुति' के रूप में भी पाये जाते है।

मगही में व्यंजन वर्णो की व्यवस्था निम्नलिखित ढंग की है :—

[क] स्पर्शी, अघोष, अल्पप्राण—क, ट, त, प
,, ,, महाप्राण—ख, ठ, थ, फ
,, सघोष, अल्पप्राण—ग, ड, द, ब
,, ,, महाप्राण—घ, ढ, ध, भ

[ख] स्प०-संघर्षी, अ०, अल्पप्राण—च—चलनी, पचपन, सच्
,, ,, महाप्राण—छ—छल, कछुआ, मराछ्
,, स०, अल्प०—ज—जर, काजर, लाज
,, ,, महा०—झ—झगर, बझका, साँझ

[ग] संघर्षी, अघोष—स—सनूक, मसाला, फूस
,, सघोष—ह—हर, राहर, चाह (चाय)

[घ] अनुनासिक, अल्पप्राण—ङ्, ञ्, न्, म्—नरम, चनन, मसान; मचान, दमाद, काम
,, महाप्राण—न्ह, म्ह—सेन्ह, गम्हार

[ङ] पार्श्विक, सघोष, अल्पप्राण—ल—लार, कलघुल, लाल
,, महाप्राण—ल्ह

[च] लुण्ठित, स०, अल्पप्राण—र—रसिया, मरम, घर
,, महाप्राण—र्ह

[छ] उत्क्षिप्त, स०, अल्पप्राण—ड़
,, महाप्राण—ढ़
[ज] अर्धस्वर—च् व्—कयलन, नया, केवड़ा, हावा (हवा)

– – – –

'ङ्' का उच्चारण वेङ्, भाङ्, लाङ्हन आदि शब्दो मे सुना जाता है। उच्चारण मे 'ञ्' अनुनासिक 'यँ' की भाँति होता है। वस्तुतः 'ञ्' के सही-सही उच्चारण को लिपिबद्ध करना अत्यन्त कठिन है। इसीलिए मगही के लिखित साहित्य मे 'भुइञा' को भुइयाँ तथा 'नञ्' (नही) को 'नइँ' या 'नै' लिखा जाता है। तालव्य-सघर्षी व्यंजन के साथ इनका सयोग होने पर उच्चारण मे यह 'न' से अभिन्न हो जाता है, यथा—चञ्चल, चंचल या चन्चल, कञ्जा, कंज या कन्ज आदि। ङ्ह, न्ह, म्ह को क्रमशः ङ्, न्, म् के साथ 'ह' का सयुक्त रूप भी माना जा सकता है।

मगही में मात्रा-व्यवस्था और शब्दोच्चारण सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि उपान्त्याक्षर के पूर्व के किसी अक्षर का कोई मूल या संध्यक्षर स्वर दीर्घ रूप मे नही रह सकता; अर्थात् उसका ह्रस्वीकरण हो जाता है। डॉ० ग्रियर्सन ने इसे Rule of short antepenultimate अर्थात् ह्रस्वउपधा-पूर्व का नियम कहा है। यह नियम निम्नांकित है :—

[क] शब्दान्त से तृतीय अक्षर पूर्व के दीर्घस्वर का ह्रस्वीकरण यथा—जूता + वा = जुतवा; एक + रा = ऍकरा, आग + इया = अगिया।

[ख] शब्दान्त से तृतीय अक्षर पूर्व का कोई दीर्घ अक्षर व्यंजनागम के साथ ह्रस्व हो जाता है, यथा—सीखब—सिखलक, देखन—देखलक।

[ग] शब्दान्त से तृतीय अक्षर पूर्व के वाद का भी दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है, यथा—देखैतिओ, वोंलौलकइ इत्यादि। यत्र-तत्र इस नियम के अपवाद भी मिल जाते हैं।

मगही में सज्ञा-शब्दो के तीन रूप पाये जाते है—लघु, गुरु और अतिरिक्त। उदाहरणार्थ नीचे लिखे जाते ह :—

लघु	गुरु	अतिरिक्त
राजा + वा	रजवा	....
माली + आ	मलि (या) आ + वा	मलियवा
सातु + आ	सतु (या) आ + इआ	सतुइआ
नाऊ + आ	नउ (वा) आ + वा	नउअवा

पाँड़े +इआ/पँड़इया
उआ पँड़उआ
भादो+इआ भदोइआ
मरद+आ मरदा+वा मरदावा
बात +इआ बति (या) आ
बैल +आ बैला+वा बैलवा

गुरु और अतिरिक्त रूपों के निर्माण-क्रम में लघु या गुरु रूप के अन्त्य अथवा उपान्त्याक्षर के दीर्घ स्वर को आवश्यकतानुसार ह्रस्व करना पड़ता है। शब्दकोशों में लघु रूप वाले शब्द ही पाये जाते हैं। गुरु रूप के प्रयोग में उपेक्षा या अनादर अथवा निश्चय का भाव होता है। अतिरिक्त रूपों के प्रयोग में प्रयोगकर्त्ता की मानसिक लापरवाही अथवा उसका प्यार व्यंजित होता है।

मगही में वचन दो हैं—एकवचन और बहुवचन। बहुवचन बनाने में –न,–नि,–न्ह,–न्हि अथवा–अन,–अनि,–अन्ह,–अन्हि प्रत्ययों का प्रयोग होता है, यथा—लड़िकन, बुतरूअन, लड़िकन्ह, बेटन, बेटन्ह इत्यादि। समूहसूचक शब्दों से भी बहुवचन का अर्थ प्रकट किया जाता है, यथा—तूँ लोग (तुम लोग), लड़िकन सब, सभ लड़िकन (सभी लड़के) इत्यादि। एक सामान्य नियम यह है कि संज्ञा-पदों के पूर्व संख्यावाचक विशेषण होने से वचन को लेकर उनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता, यथा—'सीसा के चार गिलास फूट गेल।'

प्राचीन कारक-विभक्तियों के अवशेष मगही में करणकारक और अधिकरण कारक के शब्द-रूपों में दिखाई पड़ते हैं ये अवशिष्ट अंश—ए, और 'ए', 'अहि' हैं। उदाहरणार्थ—

करणकारक—

लाजे बनिओ न निकलल—लाज से बात भी नहीं निकली।
लाजे गड़ँ गेलूँ, लाज से गड़ गया।
ऊ ओकरा लातें मुक्के अइँडुवेलकइ–उसने उसे हाथ-पैर दोनों से मारा।

अधिकरणकारक—

आन्हर कुत्ता बतासे भूँके—अंधा कुत्ता हवा पर भूँकता है।
माथे तेल अउर माँगे सेनूर—माथ में तेल और माँग में सिन्दूर।
बलका के जाँघे बइठवलन—बालक को जाँघ पर बैठाये।
मुँहहि बीरा पान—मुँह में पान की बीड़ा।
अन्य कारकों में भी ऐसे उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

कर्मकारक—

केभराहि (केले को) काटी-कुटी खम्भवा गढावल,
छोटे-छोटे मँड़वा बनावल। —मगही सस्कार-गीत पृ० १२८।

सम्बन्धकारक—

अगिलहि (आगे के) घोड़वा सवार भेलन चाचा।

कारकीय परसर्ग निम्नलिखित है—

कर्त्ता—....	अपादान—से
कर्म—के	सम्बन्ध—के, केर, केरा, केरी
करण—से	अधिकरण—मे, पर
सम्प्र०—के, ला, लेल, लागी, खातिर, वास्ते	

मगही मे सर्वनाम निम्नलिखित है—

	कर्त्ताकारक	सम्बन्धकारक	विकृतकारक
उत्तम पुरुष	हम	मोर, हमर, हमार	हमरा, मोरा
मध्यम पुरुष	तूँ	तोर, तोहार	तोरा, तोहरा
आदरसूचक म० पु०	अपने	अपने के	अपने से
अन्य पुरुष या दूरवर्ती निश्चयवाचक	ऊ	ओकर,उनकर,उनखर	ओह,ओकरा,उन्हकरा, उन्हका।
निकटवर्ती नि० वाचक	ई	एकर,इन्हकर,इनखर	एह, एकरा, इन्हकरा, इन्हका।
सम्बन्धवाचक	जे,जउन	जेकर,जिनकर,जिन्हकर	जेह,जेकरा,जिनका, जिनकरा।
सगतिवा० सर्वनाम	से,तउन	तेकर, तिनकर	तिनकरा,तेकरा,तिनका, तेह, तउना।
प्रश्नवा० सर्वनाम	के, कउन, की,का,कउची	केकर, किनकर किन्हकर	किनका, केकरा, काहे
अनिश्चयवा० स०	कोई,कउनो कुच्छो,कुछुओ	....	केकरो
निजवाचक म०	अपने	आपन	....

मगही मे अह धातु से व्युत्पन्न सहायक क्रियाएँ बहुत व्यापक है। √अह का 'अ' लुप्त हो जाता है तथा 'ह' काल, वचन, लिंग और प्रयोग के अनुसार विभिन्न रूप धारण करता है। वर्तमानकालिक कृदन्त-रूप क्रिया मे

-इत प्रत्यय को जोड़कर बनाया जाता है, यथा—जा+इत=जाइत, 'जा रहा', खा+इत=खाइत,खा रहा । उदाहरणार्थ—

हम जाइत ही या हम जाइ'थी—मैं जा रहा हूँ या मैं जाता हूँ ।
तूँ जाइत हें—तुम जाते हो । (अनादर)
तूँ जाइत हऽ—आप जाते हैं । (सामान्य आदर)
अपने जाइत ही—आप जाते हैं । (आदर)
ऊ जाइत हे—वह जाता है ।
उहनी जाइत हथ वे लोग जाते हैं ।

जाइत, खाइत का 'त' और 'ही' का 'ह' मिलकर 'थ' बन जाता है तब रूप 'जाइ थी' या 'खाइ थी' हो जाता है ।

खड़ी बोली हिन्दी में आदरार्थक संज्ञा और सर्वनाम पदों के आदर-प्रदर्शन के लिए बहुवचन क्रियारूपो का प्रयोग होता है किन्तु मगही में इस अभिप्राय की अभिव्यक्ति एक भिन्न क्रिया-रूपों द्वारा होती है । इस कार्य के लिए मगही में क्रियारूपों के क्रमश: तीन और दो प्रकार हैं—

क. (१) आदरसूचक (२) सामान्य आदरसूचक और (३) अति आदरसूचक ।
ख. (२) आदरसू० और (२) अनादरसूचक ।

फिर कर्त्ता और कर्म दोनों के अनुसार क्रिया-रूपों मे परिवर्तन होता है । कर्त्ता—कर्म के आदर तथा अनादर की दृष्टि से मगही मे क्रिया-रूपो की निम्नांकित कोटियाँ हैं—

१. अनादरसूचक कर्त्ता—अनादरसूचक कर्म
२. अनादरसूचक कर्त्ता—आदरसूचक कर्म
३. आदरसूचक कर्त्ता—अनादरसूचक कर्म
४ आदरसूचक कर्त्ता—आदरसूचक कर्म

उदाहरण—१ ऊ ओकरा देखलकइ—उसने उसे देखा ।
२. मँगरा उन्हका देखलइन--मगर ने उन्हें देखा ।
३. बाबूजी ओकरा देखलथि—पिताजी ने उसे देखा ।
४. बाबूजी पडितजी के देखलथीन्ह—पिताजी ने पडितजी को देखा ।

मगही क्रिया-रूपों की विलक्षणता एक दूसरे कारण से भी है । मगही मे क्रिया-रूप केवल कर्त्ता और कर्म के पुरुष मे ही प्रभावित नहीं होता वरन कर्त्ता और कर्म से सम्बन्धित अन्य शब्दों के पुरुष मे भी प्रभावित होता है ।

इसीलिए क्रियाओं के साथ पुरुष-प्रत्ययों का प्रयोग आधुनिक मगही में व्यापक और अनिवार्य है। उदाहरणार्थ—

हम तोहर या तोर बेटा के देखलिअउ—मैंने तुम्हारे बेटे को देखा।

हम उन्हकर या अपने के बेटा के देखली—मैंने अपने बेटे को देखा।

हम ओकर बेटा के देखलिअइ—मैंने उसके बेटे को देखा।

हम उन्हकर या पंडित जी के बेटा के देखलिअइन—मैंने पंडित जी के बेटे को देखा।

तूँ उन्हका मारहुन—तुम (सा० आ०) उन्हें मारो।

तूँ ओकरा मारहुक—तुम (सामान्य आदर) उसे मारो।

ध्यातव्य है कि कर्त्ता न भी रहे तो भी क्रिया-रूप को देखकर बताया जा सकता है कि कर्त्ता किस पुरुष का है, यथा—'देखलिअउ' से स्पष्ट होता है कि कर्त्ता उत्तम पुरुष का है। मगही क्रियाओं अर्थात् क्रिया-रूपों में लिंग सम्बन्धी विकार नही आया। पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों प्रकार के कर्त्ता के लिए क्रिया-रूप एक समान होते है।

मगही साहित्य—

मैथिली और भोजपुरी के लिखित साहित्य की अपेक्षा मगही का लिखित साहित्य आज भी अल्प है। मैथिली और भोजपुरी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन विद्वानो ने बहुत पहले ही प्रारम्भ किया था और उसी क्रम मे इनके साहित्य का अध्ययन-अनुशीलन भी हो चुका है। यह ठीक है कि हिन्दी, भोजपुरी और मैथिली के लोक-गीतों, लोक-कथाओं, लोक-गाथाओ और कहावतो-मुहावरो के संकलनो में मगही का भी लोक-साहित्य काफी मात्रा मे संकलित हो गया है, परन्तु मगही के सम्पूर्ण लोक-साहित्य का स्वतन्त्र संग्रह और सम्पादन-कार्य अब भी पूर्णरूपेण नहीं हो सका है। इधर हाल के कुछ वर्षो से मगही में साहित्य-सृजन के नये प्रयास जोर-शोर से बल पकड़ सके हैं और लोक-साहित्य का संग्रह-कार्य भी तीव्र गति से हो रहा है।

मगही का साहित्यिक इतिहास आठवी शताब्दी के सिद्ध कवि सरहपा, भूसुकपा आदि की रचनाओ से प्रारम्भ होता है और इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास का श्रीगणेश मगही साहित्य द्वारा ही होता है। सिद्धों की परम्परा में मध्यकाल में कई संत कवियों ने मगही भाषा में रचना की। इन कवियो में बाबा करमदास, बाबा मोहनदास, बाबा हेमनाथदास आदि अनेक कवि उल्लेख्य हैं। मध्यकाल मे ही मगही लोक साहित्य मे गोपीचन्द और राजा भरथरी की रचनाएँ मिलती हैं। साथ ही; कवि हरिनाम (पाठक बिगहा,

गया), हरिदास निरंजनी और कवि भिखेखानन्द (विहार शरीफ, पटना) के कीर्त्तन के पद प्राप्त होते हैं।

मगही भाषा-साहित्य सम्बन्धी आधुनिक प्रयास हिन्दी और मगही दोनों भाषाओं के माध्यम से हुए हैं। श्री कृष्णदेव प्रसाद की कविता 'चाँद' और 'जगउनी' का स्थान पटना विश्वविद्यालय के पद्य-संग्रह में सन् १९४२ ई० में ही प्राप्त हुआ था। मगही भाषा-साहित्य का प्रथम लेखा-जोखा प्रथम मगही साहित्य सम्मेलन, एकंगर सराय के अवसर पर किया गया तथा श्री रमाशंकर शास्त्री द्वारा लिखित 'मगही' शीर्षक पुस्तिका का प्रकाशन ६ जनवरी, १९५३ को हुआ।

मगही साहित्य का सुव्यवस्थित प्रकाशन 'तरुण तपस्वी' नामक त्रैमासिक पत्रिका के प्रकाशन से प्रारम्भ हुआ। इसमें खड़ी बोली के साथ मगही गद्य-पद्य की रचनाएँ भी निकलने लगीं। इसके सम्पादक श्रीकान्त शास्त्री थे। कुछ समय के बाद यह त्रैमासिक 'मागधी' मे रूपान्तरित हुई और कुछ दिनों तक बन्द रहकर पुनः १९५५ ई० में मगही परिषद् के तत्त्वावधान में श्रीकान्त शास्त्री और श्री रामवृक्षसिंह दिव्य' के सम्पादकत्व में पटना से निकली। लेकिन यह बहुत दिनों तक नहीं चल सकी।

सन् १९५५ ई० में बिहार मगही मंडल के तत्त्वावधान में 'मगही' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसके सम्पादक श्रीकान्त शास्त्री और ठाकुर रामबालक सिंह थे। इसने मगही साहित्य के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। लेकिन कालक्रम से यह भी बन्द हो गई। सन् १९५५-५६ ई० में औरंगाबाद (गया) से 'महान मगध' के ९-१० अंक निकले। इसी मे श्रीकान्त शास्त्री का सुप्रसिद्ध मगही नाटक 'नया गाँव' छपा था। इस पत्र के सम्पादक श्रीगोपाल मिश्र 'केसरी' थे। इसमें मगही के साथ मैथिली और भोजपुरी की रचनाएँ भी छपती थीं। सन् १९५८ ई० से एक दूसरी मासिक पत्रिका 'बिहान' प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका बिहार मगही मंडल का मुख-पत्र है जिसके सम्पादक श्रीकान्त शास्त्री और श्री राम-नन्दन जी हैं।

मगही का आधुनिक साहित्य अधिकांशतः उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं मे निहित है। कुछ स्वतन्त्र पुस्तकों का भी प्रकाशन हुआ है। बहुत से गीत-भजन ग्रामीण लोगों मे प्रचलित हैं, इनके रचयिता ग्राम कवि ही हैं। श्री रामप्रसाद पुंडरीक की मगही रचनाएँ 'पुंडरीक रत्नमालिका' के अन्तर्गत निकलीं। आपने 'गीता' और 'मेघदूतम्' का मगही रूपान्तर बिरहा छंद मे किया।

श्री सुरेश दुबे 'सरस' का कविता संग्रह 'निहोरा' भी मगही काव्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। श्री रामसिंहान विद्यार्थी कृत 'जगरना' में आधुनिक विचारधाराओं के साथ प्रेम और सौन्दर्य के शाश्वत भाव व्यक्त हुए हैं।

मगही पत्रिकाओं मे जिन लोगों की कविताएँ विशेष रूप से आकृष्ट कर सकी है उनमें श्रीकान्त शास्त्री, श्री रामनरेश पाठक, स्वर्गीय श्री सुरेश दुबे 'सरस', योगेश, श्री शेषानन्द मधुकर, प्रो० रामप्रसाद सिंह, श्री रामनरेश वर्मा, प्रो० रामनन्दन, श्री बाबूलाल मधुकर आदि उल्लेख्य है। बिहार मगही मंडल द्वारा प्रकाशित 'मगही लोकगीत' (सम्पादक—श्रीकान्त शास्त्री और प्रो० रामनन्दन), मगही कहानी सेंगरन (सम्पादक—श्रीकान्त शास्त्री और प्रो० रामनन्दन) 'आदमी आँ देवता' (लेखक—प्रो० रामनन्दन) मगही ग्रन्थ मगही साहित्य की समृद्धि के सूचक है। गया जिला मगही मंडल से भी कविताओं का एक सग्रह प्रो० रामप्रसाद सिंह के सम्पादकत्व में निकला है। 'रमरनिया' नामक उपन्यास श्रीबाबूलाल मधुकर का लिखा हुआ है जिसमे मगह क्षेत्र के ग्रामीण जीवन का सुन्दर एवं आकर्षक चित्र है। सुना है हाल ही में एक काव्य-पुस्तक श्री बाबूलाल मधुकर ने प्रकाशित करवायी है।

कहानियो मे कहानीकार श्री राधाकृष्ण जी कृत 'ए नेऊर तू गंगा जा', श्री तारकेश्वर भारती कृत 'नैना काजर', जयेन्द्र कृत 'चम्पा', रामनरेश पाठक की 'ठार कनकन', डॉ० सम्पत्ति आर्याणी की 'बोझ' ने मगही कहानी-साहित्य को विशेष रूप से समृद्ध किया है। इसके अतिरिक्त पत्रिकाओं में अनेकानेक कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं।

वैयक्तिक निबन्ध के उदाहरण डॉ० शिवनन्दन प्रसाद का 'मंजूर' और प्रो० रामनन्दन का 'परिकरमा' है। नाटकों में श्रीकान्त शास्त्री कृत 'नयागाँव' और प्रो० रामनन्दन कृत 'खड़नी' और 'कौमुदी महोत्सव' सर्वाधिक उल्लेख्य हैं। मगही भाषा के माध्यम से ज्ञानवर्द्धक निबन्धों के लेखक डॉ० विन्देश्वरी प्रसाद सिन्हा, डॉ० नर्मदेश्वर प्रसाद, श्री मोहनलाल महतो वियोगी, डॉ० सम्पत्ति आर्याणी आदि हैं।

गवेषणात्मक लेखों को प्रस्तुत करने वालों मे प्रो० कपिलदेव सिंह, श्रीकान्त शास्त्री, प्रो० रामनन्दन, श्री रमाशंकर शास्त्री, श्री परमानन्द शास्त्री, श्री राजेन्द्रकुमार यौधेय, डॉ० सम्पत्ति आर्याणी, डॉ० नागेश्वर शर्मा, डॉ० सरयूप्रसाद, डॉ० त्रिभुवन ओझा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है।

मगही भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे कई अनुसन्धित्सु विद्वानो ने शोध-कार्य सम्पन्न किया है। पटना विश्वविद्यालय ने श्रीमती (डॉ०) सम्पत्ति

आर्याणी के शोध-प्रबन्ध को मान्यता प्रदान कर एक प्रकार से मगही भाषा को गौरवान्वित किया है।

पूर्वांचल की बोलियों में मगही की सर्वाधिक प्राचीनता स्वयसिद्ध है। मगही की सन्निकटता सस्कृत; पाली, अपभ्रंश सभी से है। अशोक के शिला-लेख, बौद्ध साहित्य मगही की प्राचीनता को प्रमाणित करते हैं। राहुल जी का कथन है कि "चौथी शताब्दी में ही मगही का अपना क्षेत्र सरयू से कोशी तक तथा कर्मनाशा से कलिंग तक था। समय पाकर फिर भाषा में परिवर्तन होता गया। मागधी भाषा भाषी आस-पास के प्रदेश में जाकर बस गये। इस प्रकार आधुनिक उड़िया, बँगला, आसामी, मैथिली, भोजपुरी और मगही प्राचीन मागधी के ही रूप है।" मगही का आधुनिक साहित्य भले ही समृद्ध न हो परन्तु उसकी प्राचीन साहित्यिक निधि पुष्ट है। अब कतिपय साहित्य सेवियों के प्रयास से मगही के आधुनिक साहित्य की अनेक विधाओं में सृजन हो रहा है। कई पत्र-पत्रिकाएँ भी निकल रही है। यदि इसी उत्साह से काम होता रहा तो वह दिन दूर नही जब मगही अपने प्राचीन गौरव के अनुरूप अपना वर्तमान स्थान भी बना लेगी। मगही को मैथिली या भोजपुरी का अंग मानना भारी भूल है, वास्तव मे जैसा राहुल जी ने कहा है मैथिली और भोजपुरी को मगही का अग माना जाना चाहिये।

आधुनिक मैथिली भाषा और साहित्य

—बेचन

मैथिली मेरी मातृभाषा है, इसीलिये जाने-अनजाने लोगो का यह आग्रह हो जाता है कि साहित्यकार होने के नाते मुझे मैथिली को भी अंगीकार करना ही चाहिये। किन्तु, आज भाषा के प्रश्न को लेकर, विशेष रूप से विहार मे मैथिली को लेकर, जो समस्याएँ उत्पन्न होती रहती है—उनसे कभी-कभी वड़ी घुटन की स्थिति पैदा हो जाती है। इसमे कोई मन्देह नही कि मैथिली एक समृद्ध भाषा है, पर जहाँ तक हिन्दी को अग्रेजी के स्थान पर प्रतिष्ठित करने की समस्या है, हिन्दी के प्रतिष्ठित होने तक मैथिली को दूसरा स्थान ही दिया जायगा। आज देशभाषा हिन्दी को समृद्ध करने पर ही हम विदेशी भाषा की परतन्त्रता से मुक्ति पा सकते है।

मैथिली भाषा में सक्षम विद्वानो, मनीषियो, कवियो, उपन्यासकारो आदि की कमी नहीं है, जिनसे यह भाषा गौरवान्वित है। डा० आदित्यनाथ झा, उप-राज्यपाल, दिल्ली की अनुपम प्रवन्ध शैली, महाकवि यात्री (हिन्दी के नागार्जुन) के काव्य वैभव, प्रो० हरिमोहन झा के अनुपम औपन्यासिक शिल्प, डा० जयकांत मिश्र की आलोचना पद्धति आदि भरसक हिन्दी विद्वानो की तुलना मे अपनी मौलिकता के लिये अप्रतिम है। इतना होने पर भी यह तो निर्विवाद है कि आज भारतीय भाषाओं की समृद्धि की तुलना में मैथिली एक 'वोली' की तरह अथवा उप-भाषा की तरह लग रही है। इसके कई एक कारण है और हो सकते हैं। इनमें पहली वात तो यह है कि मैथिली ने अपनी लिपि तिरहुता को तिलांजलि देकर देवनागरी को अपना लिया। परिणाम स्वरूप मैथिली भाषा की वे मूलभूत विशेषताएँ लुप्त होने लगी जो उसे भारत की अन्य भाषाओ से अलग करती थी। लिपि की तिलांजलि के कारण भाषा का स्वरूप भी बिगड़ा और हिन्दी के अधिकाधिक शब्द मैथिली मे आने लगे। आज की मैथिली ने हिन्दी भाषा का ऐसा प्रभाव ग्रहण कर लिया है कि उसे स्वतन्त्र भाषा मानने में यदि किसी को भ्रम हो जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं। आज मिथिला के हाटों-वाजारों मे हिन्दी चल रही है भले ही वह मैथिली मिश्रित टूटी-फूटी हिन्दी ही क्यो न हो।

रचना के क्षेत्र मे भी मैथिली ने हिन्दी की परम्परा को अत्यधिक ग्रहण कर लिया है। प्रभाव दोष से सम्पूर्ण मैथिली साहित्य आक्रान्त है। दिवालिये

पाठ्य-पुस्तकों के संकलन-कर्त्ताओं ने तो जैसे मैथिली-साहित्य को कुंठित ही कर दिया है। इसके प्रमाण के लिये बिहार के विश्वविद्यालयों में स्वीकृत मैथिली की पाठ्य पुस्तकें हैं। परिणाम स्वरूप मैथिली गद्य के प्रयोग में आज की नयी पीढ़ी पिछड़ी जा रही है। उसका स्वरूप बिगड़ता जा रहा है। उपन्यास, कहानी और निबन्ध किसी भाषा की समृद्धि के परिचायक होते हैं। मैथिली में दस श्रेष्ठ उपन्यास, दस श्रेष्ठ कहानियाँ और दस श्रेष्ठ निबन्ध भी नहीं हैं। जो हैं और जिन्हें श्रेष्ठ कहने वाले कह सकते हैं, उन पर हिन्दी-अंग्रेजी और अन्य भाषाओं का असिद्ध प्रभाव बड़ा हास्यास्पद लगता है। ऐसे अभाव का भी मूल कारण प्रभाव ही है। मैथिली का लेखक दूसरी भाषाओं के पके-पकाये रचना साहित्य को मैथिली भाषा में उतार कर अपने दायित्व की इतिश्री समझ रहा है। वह विशाल मिथिला क्षेत्र की सोंधी मिट्टी की महक, बौराये हुए आम के वृक्ष और उमड़ती हुई कोशी की सतरंगी धाराओं का चित्रण करने मे आज सर्वथा असमर्थ है। भाग्यवान हिन्दी है जिसने मिथिला की गरिमा और सौन्दर्य को रेणु और नागार्जुन के उपन्यासों में पा लिया। रेणु और नागार्जुन का महत्व हिन्दी में इसीलिये है कि वे अपनी मौलिक औपन्यासिक विषय वस्तु के कारण अप्रतिम हैं। किन्तु, ऐसे महत्व-बोध का चित्रण मैथिली का, शुद्ध मैथिली का रचनाकार नहीं कर पाया। वह मधुबनी, राण्टी, लहेरियासराय, मोरंग, वीरपुर, वनगाँव, कर्णपुर, नेहरा और पूर्णिया मे प्रेरणा नहीं लेता है लेता है कलकत्ते से जहाँ वह रहता है। पात्र मिथिला के होते है, कथा कलकत्ते की और सभ्यता महानगर की। वाह रे मैथिली का रचनाकार। प्रोफेसर हरिमोहन झा को इस प्रसग में अपवाद माना जा सकता है, और वे हैं भी समादृत पीढ़ी के रचनाकार। किन्तु, वर्त्तमान पीढ़ी, विशेष रूप मे साठोत्तरी पीढ़ी की यही स्थिति है। स्व० राजकमल एवं राजमोहन झा आदि का कथा साहित्य इसका उदाहरण है।

मैथिली का आधुनिक साहित्य देखकर ऐसा लगता है कि वह कल की भाषा हो ठीक उसी प्रकार जैसे इसराइल वासी यहूदियो ने हिब्रू का उद्धार किया। आदिकाल मे मैथिली की जो प्रगति रही उसका निरन्तर विकास नही होता। सन् १९३० के बाद, विशेष रूप से स्वतन्त्रता के बाद उसके साहित्य की श्रीवृद्धि और पुनरुत्थान का नारा बडे जोरो से लगाया जाने लगा। इसका यह अर्थ नही कि इसके पूर्व मैथिली मे प्रतिभाएँ नही जन्मी। मैथिली के विद्वान सृजनरत रहे पर मैथिली को उस रूप मे कभी भी उन्होंने विकास का साधन नहीं बनाया जो आवश्यक था। आधुनिक युग मे विकास और पुनरुत्थान

की लहरों ने मैथिली साहित्य की स्वाभाविक गति को बिगाड़ कर नकली साहित्य रचना को प्रश्रय दिया। मैथिली साहित्यकारो का यह भी दावा कम नही रहा है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैसे नागार्जुन, रेणु, आरसी, दिनकर आदि मैथिली की ही देन है। इससे स्थिति और उलझती है और सिद्ध होता है कि उपर्युक्त मैथिली रचनाकारो के लिये मैथिली माता है तो हिन्दी विमाता भी नही। अतएव ये मैथिली के साथ हिन्दी की सेवा करने मे गौरव का अनुभव करते है। वस्तुत: हिन्दी को समृद्ध करने का अर्थ राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीयता को मजबूत बनाने का भी अर्थ होता है जो हिन्दी साहित्यकार कर रहे है। किन्तु, मैथिली वाले इन मोटी बातों को न समझने के कारण हिन्दी-साहित्यकारो और हिन्दी वालों के प्रति समय-असमय आक्रोश व्यक्त करते हैं जो मैथिली के लिये अहितकर सिद्ध हो रहा है। अतएव मैथिली वालों को चाहिये कि हिन्दी भाषा और हिन्दी वालो का विरोध छोडकर वे मैथिली भाषा साहित्य को समृद्ध करे जो उसके भविष्य के लिये और वर्तमान रूप को बनाने के लिये भी हितकर सिद्ध होगा। किन्तु, लगता है कि आज मैथिली का छोटा से बड़ा साहित्यकार और पत्र-पत्रिकाएँ साहित्य-सृजन का काम छोड़कर ज्यादातर मैथिली की उपेक्षा के गीत गाने लगी है। मैथिली मे वहुत कम पत्र-पत्रिकाएँ है—सच पूछा जाय तो इनमे से किसी भी पत्रिका के अपने कोई विशिष्ट स्तर नही है। उनका प्रकाशन भी वड़ी विचित्र गति से होता है। हाँ, पटना से निकलने वाली एकमात्र पत्रिका 'मिथिला मिहिर' साप्ताहिक का ही प्रकाशन निश्चित समय पर होता है। 'मिथिला मिहिर' ने मैथिली को बल दिया है, पर मैथिली भाषा भाषी पाठको के वल पर इसका प्रकाशन आधृत नही है। वल्कि इसके प्रकाशन का आधार दरभंगा महाराजा के 'इण्डियन नेशन' और आर्यावर्त ऐसे विशाल पत्र का वैभव ही है। 'मिथिला मिहिर' का प्रकाशन पहले दरभंगा से होता था, पर कई वर्षो तक वन्द रहने पर पुन: गत ग्यारह वर्षो से उसके प्रकाशन की व्यवस्था पटना से हुई। 'मिहिर' के द्वारा लेखकों की अपार संख्या का पोषण हो रहा है। मैथिली पत्रकारिता के सुन्दर प्रतिमान 'मिहिर' प्रस्तुत कर रहा है। पर मैथिली पत्रकारिता हिन्दी पत्रकारिता का शतांश भी प्राप्त नही कर सकी है।

साप्ताहिक पत्रो में अन्य कोई उल्लेख्य पत्र नही निकल रहे है। हाल ही में 'मातृवाणी' का प्रकाशन दरभंगा से प्रारम्भ हुआ है और जमशेदपुर से कुछ एक उत्साही मैथिली भाषा भाषी 'टटका' का प्रकाशन कर रहे है।

मासिक पत्रो मे 'वैदेही' का नाम लिया जा सकता है जो देर-सवेर

अपना प्रकाशन करता रहता है। कहने को तो यह पत्र गत दो दशक से निकल रहा है, पर इस पत्रिका के एक अंक का भी ऐसा स्तर नहीं है जोकि हिन्दी के किसी स्तरीय मासिक पत्रिका से तुलनीय हो। किन्तु यही क्या कम है कि "वैदेही" का प्रकाशन हो रहा है। वैसे मासिक पत्रिका के प्रकाशन की दिशा में कुछ न कुछ होता रहा है। बहुत से अच्छे पत्र निकलते रहे है, जिनमें गत दशक में प्रकाशित आखर, सोना-माटि मैथिली कविता आदि पत्रों का नाम लिया जा सकता है। हिन्दी की देखा-देखी मैथिली में भी 'मीनी' पत्रिकाएँ निकालने का फैशन जोर पकड़ता जा रहा है। अभी-अभी हाल मे एक मीनी पत्रिका का प्रकाशन किया गया है जिसका डायरीनुमा आकार प्रभावित करता है। कुछ इससे बड़े आकार में 'सन्निपात' नाम से एक मासिक संकलन का प्रकाशन पटना से किया गया है मैथिली के विकास में योगदान करते-करते मिथिला दर्शन, पल्लव, स्वदेश, मिथिला, श्री मैथिली, विभूति, मिथिला मोद, मिथिला दूत. मिथिला सेवक, चौपाड़ि, इजोत, किरण, अभिव्यंजना आदि पत्र अकाल काल कवलित हो गये। डाक्टर जयकांत मिश्र एवं डा० कृष्णकांत मिश्र ने मैथिली साहित्य के इतिहास में 'विभूति' की ऐतिहासिक भूमिका की बड़ी गौरवशाली चर्चा की है।

बाल साहित्य की मासिकी के रूप में 'बटुक' का प्रकाशन इलाहाबाद मे श्री कृष्णकांत मिश्र ने किया।

मैथिली में पहली बार "स्वदेश" नाम से दैनिक पत्र का प्रकाशन १९५५ में किया गया, जिसके सम्पादक पं० सुरेन्द्र झा 'सुमन' थे। यह पत्र ढाई महीने चलकर बन्द हो गया, जिसके केवल ६५ अंक निकल पाये। इस दैनिक पत्र के पूर्व सुमन जी ने मासिक स्वदेश निकाला, जिसके सम्पादकीय अग्रलेख मे उन्होंने मैथिली पत्रकारिता की दुरवस्था पर शोक प्रकट करते हुए लिखा—

"गत आठ-दस वर्ष की अवधि मे मैथिली में स्वतन्त्र पत्र का प्रकाशन नहीं होना अत्यन्त विस्मयजनक घटना है।"

दैनिक स्वदेश के प्रकाशन ने समस्त मिथिलांचल को प्रभावित किया और पत्रिका प्रकाशन की दिशा में नयी लहर आयी। फलतः, सीतामढी मे वैदेही, पटना से "मिथिला ज्योति" आदि पत्र निकले।

मैथिली मे आधुनिकता या आधुनिक मैथिली साहित्य का सूत्रपात पत्रकारिता से होता है, जिसकी मुख्य भूमिका कवीश्वर चन्दा झा एवं डा० जार्ज ग्रियर्सन आदि ने तैयार की। बंगला के विद्वान महामहोपाध्याय हरप्रसाद

शास्त्री, पी० सी० बागची, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, नगेन्द्रनाथ गुप्त, खगेन्द्रनाथ मित्र, विमानविहारी मजुमदार आदि ने आधुनिक मैथिली के विकास में अप्रतिम योगदान दिया।

पत्रकारिता का विकास १९०५ ई० से मैथिली में होता है जबकि "मैथिलहित साधन" नामक पत्रिका का प्रकाशन श्री मधुसूदन झा (जयपुर) के द्वारा किया जाता है। सन् १९०६ ई० में मिथिलामोद और फिर मिथिला मिहिर का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। मैंने पहले ही निवेदन किया है कि मिहिर के द्वारा मैथिली भाषा साहित्य का एक स्तर स्थिर हुआ। किन्तु, सन् १९५५ ई० से मिहिर का प्रकाशन कुछ वर्षों तक स्थगित रहा और पुनः १९५८-५९ में इनका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। मैथिली के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं कवि श्री चन्द्रनाथ मिश्र अमर ने लिखा है कि १९२५ ई० से से १९५५ तक मैथिली पत्र-पत्रिका का रंग स्थिर रहा।[1] उनमें प्रकाशित साहित्य से विभिन्न विधाओं का एक रूप मिलता है। इस प्रकार इस बीच मैथिली में उल्लेख्य साहित्य का प्रकाशन होता है जिसकी व्यापक चर्चा क्रमशः की जायगी।

सन् १९०० का अंत होते-होते मैथिली की कई और पत्रिकाएँ सामने आयी हैं, जिनमें महेन्द्र नारायण झा द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक शोध पत्रिका "मैथिली प्रकाश" शिवाकान्त पाठक द्वारा प्रकाशित "बागमती", प्रभाकर मिश्र द्वारा प्रकाशित "मिथिला भूमि", सतीशचन्द्र द्वारा प्रकाशित "स्वयंभू" तथा नये आकार में वैदेही आदि उल्लेख्य हैं।

इस सन्दर्भ मे सर्वप्रथम मैथिली में प्रकाशित श्रेष्ठ पुस्तक की चर्चा करना चाहूँगा।

मैथिली की इन रचनाओं में पहली काव्य पुस्तक नागार्जुन की सुप्रसिद्ध कृति "पत्रहीन नग्न गाछ" है जिस पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार नागार्जुन जी को प्राप्त हुआ। मैथिली में नागार्जुन "यात्री" नाम से लिखते हैं। हिन्दी में जितनी प्रतिष्ठा नागार्जुन की है, उससे कम महत्व का स्थान मैथिली में भी नहीं है। पुस्तक मे कविताएँ और गीत दोनों हैं। नागार्जुन की यह पुस्तक शिल्प, भाषा एवं विषय की दृष्टि से आधुनिक प्रयोगशीलता के सुन्दर प्रतिमान हैं। ऐसे ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थ को आकादमी पुरस्कार मिलना सर्वथा उपयुक्त है। वस्तुतः, नागार्जुन को मैथिली काव्य पुस्तक से पहले हिन्दी काव्य प्रयोग के लिये आकादमी पुरस्कार मिलना चाहिये था।

१. मैथिली आन्दोलन एवं सर्वेक्षण, पृ० ३९७।

साहित्य का इतिहास साक्षी है कि नागार्जुन को मात्र हास्य-व्यंग्य का कवि कहकर उनकी प्रतिभा को अस्वीकारा नहीं जा सकता।

हिन्दी की सेवा करने वाले वयोवृद्ध मैथिली भाषा-भाषी साहित्यकार आचार्य रामलोचन शरण ने "मैथिली रामचरित मानस" की रचना की है। मैथिली का भांडार भरने के लिये आचार्य जी का यह प्रयत्न स्तुत्य है। पुस्तक का अनुवाद बड़ा समीचीन और सुलभ है। मैं इस प्रकाशन के लिये आचार्य श्री के प्रति हार्दिक शुभकामनाएँ प्रगट करता हूँ और उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ, ताकि वे इसी प्रकार अन्य हिन्दी ग्रन्थों के सुलभ अनुवाद द्वारा मैथिली के भांडार की श्री वृद्धि करने में सक्षम होते रहें।

"बरजोरी" मैथिली के प्रौढ़ कवि श्री निशीकान्त मिश्र जी की अनुवाद रचना है, जिसमें शेक्सपियर के काव्य "दी रेप आफ ल्युकुसियम" का अनुवाद किया गया है। अनुवाद बड़ा ही सफल है। यदि इस रचना को शेक्सपियर की रचना न कहा जाय तो भरसक इससे कवि की मौलिक काव्य प्रतिभा का सहज में ज्ञान हो जायगा।

अनुवाद की इस परम्परा में श्री राजेन्द्र झा 'स्वतन्त्र' के अनुवाद राजमणि (नाटक) का भी महत्व है, जो शेक्सपियर के "एज यू लाइक इट" का अनुवाद है। इस अनुवाद को स्वतंत्र या भावानुवाद भी कहा जा सकता है। स्वतन्त्र जी ने अंग्रेजी नाटक की नायिका रोजालिन के नाम के वजन पर नाटक का नामकरण राजमणि किया है, जो सर्वथा उपयुक्त है। इसी तरह 'ओथेलो' नाटक का अनुवाद करते हुए डेसडीमोना के नाम के वजन पर नाटक का नाम देशमणि कर दिया गया है।

"कवयोवदन्ति" मैथिली के अत्याधुनिक पीढ़ी के तरुण कवि नचिकेता की काव्य-पुस्तक है। मुझे यह मानने मे तनिक भी संकोच नहीं है कि नचिकेता द्वारा इस काव्य के माध्यम से नयी कविता का भारतीयकरण करने का प्रयत्न किया गया है।

"प्रचोदयात्" मैथिली की नयी पीढ़ी के कथाकारों का कथा-संग्रह है, जिसका प्रकाशन नवतुरिया प्रकाशन, राँची से किया गया है। सभी रचनाएँ सचमुच नयी पौध (नवतुरिया) की तुतलाहट और खिच्चेपन के उदाहरण हैं। फिर भी मैथिली साहित्य की सृजन प्रक्रिया में इन रचनाओं का अपना महत्व है।

गत वर्ष १६०० मे "दो पत्र" (दू पत्र) नामक उपन्यास पर साहित्य आकादमी का पुरस्कार उपेन्द्रनाथ झा "व्यास" को दिया गया जो पेशे से इंजीनियर है पर सिद्धहस्त लेखक भी। व्यास जी सिद्धहस्त कथाकार है, पर उनकी इस औपन्यासिक रचना से हिन्दी वालों को कौन कहे मैथिली वाले भी सन्तुष्ट नही है। मैथिली के नवोदित कथाकार श्री राजमोहन झा इसे लघु उपन्यास नही कहकर, दीर्घ निबन्ध कहना ज्यादा उचित समझते हैं। जिसका शिल्प नया होते हुए भी उपन्यासकार स्वाभाविकता की रक्षा नही कर पाया है। एक दूसरे लेखक का आरोप है कि उपन्यास पर उपलब्धि के आधार पर नही बल्कि प्रयास के कारण पुरस्कार मिला है अतएव लेखक को विषय वस्तु की चिन्ता नही है।[1]

मैथिली रचना का पूर्वाभास पहले ही दिया जा चुका है। आधुनिकता का प्रभाव मैथिली कथा साहित्य पर भी पड़ा। अग्रेजी, सस्कृत और बगला कथा साहित्य से मैथिली कथा साहित्य अत्यधिक प्रभावित रहा। सस्कृत की कथा परम्परा को तो इसने ग्रहण किया ही साथ ही विहुला कथा, गोनू झा की कथा तथा लोरिक आदि की लोक कथाएँ मैथिली की अपनी मौलिक परम्परा की द्योतक है। आधुनिक मैथिली कथा साहित्य का प्रारम्भ १६३० ई० के लगभग होता है, जिसके प्रथम कथाकार के रूप मे प्रो० हरिमोहन झा का नाम लिया जा सकता है। प्रो० झा को मैथिली साहित्य का प्रेमचद कहा जा सकता है। प्रेमचंद की तरह ही मैथिली पाठकों में हरिमोहन बाबू की रचनाएँ लोकप्रिय है। कितनी फुटकल रचनाओ के अतिरिक्त प्रणम्य देवता, रंगशाला, खट्टर काका क तरंग, चर्चरी, कन्यादान, दिवरागमन आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ है। समस्त भारतीय कथा साहित्य मे हरिमोहन बाबू द्वारा सिरजा गया खट्टर काका का चरित्र एक मौलिक चरित्र है। व्यंग्य और हास्य प्रो० झा की रचना के प्राण है।

हरिमोहन बाबू के बाद मैथिली कथा रचना द्रुतगति से आगे बडी और कई एक स्वनाम धन्य कथाकारो ने इसे समृद्ध किया, जिनमे यात्री (नागार्जुन), सुमन, ईशनाथ झा आदि के नाम उल्लेख्य हैं। यात्री इनमे नयी चेतना उत्पन्न करने वाले सबसे प्रौढ कथाकार है जिनके उपन्यास पारो, नव-तुरिया, रतिकान्त की चाची आदि प्रमुख है। यात्री की ये रचनाएँ हिन्दी मे भी प्रकाशित है। वस्तुत: यात्री जी की नागार्जुन के नाम से प्रकाशित हिन्दी कथा रचना मैथिली विषय वस्तु के कारण अपनी मौलिकता के लिये विख्यात

१. सन्निपात (१) पृ० ३०।

है। नागार्जुन ने हिन्दी के साथ-साथ मैथिली में नये औपन्यासिक मूल्य स्थापित किये। नागार्जुन के "बलचनमा" के प्रकाशन से हिन्दी कथा-साहित्य में क्रान्तिकारी औपन्यासिक परिवर्तन आये। यह दुर्भाग्य है कि मैथिली वालों ने नागार्जुन के इस औपन्यासिक शिल्प को नही पहचाना। उसका मूल कारण यह है कि अभी हाल तक मैथिली पाठकों पर हरिमोहन झा का औपन्यासिक आतंक इतना अधिक था कि मैथिली के पाठक उनके औपन्यासिक मूल्यों से भिन्न किसी भी औपन्यासिक मूल्य को स्वीकार करने के लिये तैयार नही थे। अतएव नागार्जुन का उचित मूल्यांकन मैथिली मे नही हुआ। नागार्जुन ने अपनी कृतियों में मिथिला का चरित्र विकास दिखाया है। उनके सभी पात्र मिथिला से सम्बद्ध हैं जो मिथिला का व्यक्तित्व विकास करते हैं। अतएव हिन्दी में उनके चरित्रों का अध्ययन मिथिलांचल के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाता रहा जो हिन्दी उपन्यास का आज सार्वजनीन सत्य हो गया। मिथिला के किसानों, मजदूरों और निम्न मध्यवर्गीय चरित्रो की आशा-निराशा और संघर्ष का जीता जागता चित्र नागार्जुन ने मैथिली और हिन्दी दोनों उपन्यासों मे दिये हैं।

मैथिली के उल्लेख्य कथाकारों मे मायानद मिश्र, रामकिसुन झा किसुन, शैलेन्द्र मोहन झा, राजकमल, सोमदेव, राजमोहन झा, कुमार इन्द्रानंद सिंह, ब्रजकिशोर वर्मा, डा० बी० झा, ललित, कपिल, रामदेव, गंगेश गुंजन, प्रभास कुमार चौधरी आदि के नाम दिये जा सकते है।

राजकमल ने हिन्दी की तरह मैथिली मे भी अति यथार्थवाद का विकृत चित्रण किया। देहगाथा जैसे उनका अभिप्राय रहा है।

किन्तु इस बात से कतई इनकार नही किया जा सकता कि राजकमल का साहित्य मैथिली साहित्य को एक विशिष्ट अवदान है। किन्तु, हर चित्रण की एक सीमा होती है जिसकी परिधि सामाजिक मूल्यों पर आधृत होती है। यह विवाद का विषय हो सकता है कि वे सामाजिक मूल्य क्या है? कुंठा, कामचेष्टा या कामुकता का चित्रण वास्तविक जीवन-परिधि की इकाई मे आना चाहिये और आता रहा है। डी० एच० लारेंस जैसे दुर्धर्ष यथार्थवादी ने भी जिन्होने वास्तविकताओं को कोरे रूप मे अपने विश्व प्रसिद्ध उपन्यास "लेडी चेटरलीज लवर" एव "सन्स एण्ड लवर" मे चित्रत किया है, उन सारी काम चेष्टाओं को अस्वीकृत कर दिया है, जिनकी कोई सम्भावना जीवन में है ही नही। लारेंस ने सामाजिक सघटन को भी इनका एक हिस्सा माना है। अमेरिका के बिटनिको ने जीवन का ह्रास कला में और कला का ह्रास जीवन

मे दिखाने की चेष्टा की है जिसका सम्बन्ध इस बात से है कि कला-सृजन के लिये कलाकार का जीवन अनुशासित और व्यवस्थित होना चाहिये।

और अंत मे यही कहा जायगा कि यथार्थवाद और वास्तविकता के चित्रण मे राजकमल ने मध्यवर्गीय दृष्टिकोण का परिचय दिया। मध्यवर्गीय कमजोरियाँ और खूबियाँ उनके साहित्य मे है। यूरोप के मध्यवर्ग के वैषम्य-पूर्ण संघर्षमूलक एवं अनिश्चित जीवन को सभवत. ऐसे ही रचना प्रकार की आवश्यकता थी जो काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ के निकट हो। अस्तु राजकमल ने ऐसे ही दृष्टिकोण को अपनाया।

श्रीचन्द्रशेखर झा ने मैथिली कथा साहित्य पर अपने आक्रोश व्यक्त करते हुए उचित ही लिखा है—"किछु कथा के छोड़िक बाकी सभ या तर्क कथाक परिधि से बाहर अछि अथवा ततेक निम्नकोटि के अछि जे ओकरा चूल्हा मे आच पजारि लेल जाय त कोनो अनुचित नाहि।" मैथिली मे बहु चर्चित होने वाले कथाकार मायानद मिश्र के उपन्यास "बिहारि-पात-पाथर" पर श्री झा की टिप्पणी भी द्रष्टव्य है—

"बिहारि-पात-पाथर" त स्वयं अपूर्ण उपन्यास अछि तथा किछु विशेष दृष्टि से भरल सेहो अछि। उदाहरणक लेख-शीर्षक अनुपयुक्त, शैली त्रुटिपूर्ण (फणीश्वरनाथ रेणु जीक परती परिकथाक शैलीक अनुकरण अछि परन्तु असगत), चारित्रिक विश्लेषण अपूर्ण तथा पूर्ण अस्वाभाविक आओर सास्कृतिक सम्बन्धी दोष आदि। तथापि हमरा लोकनि लेखक ऽकऽ बचनक अनुसार एहि उपन्यासक दोसरा भागक लेख उत्सुकता से बाट तकेत छी।"[1]

आधुनिक मैथिली काव्य साहित्य की दशा भी प्रायः वही है जो कथा साहित्य की है। कोई भी महत्वपूर्ण कवि या कविता पुस्तक ऐसी नही है जिसका समस्त भारतीय साहित्य मे अप्रतिम स्थान हो। कहने को तो बहुत से नाम गिनाये जा सकते है पर भारतीय साहित्य के स्तर पर उल्लेख्य नही है।

उल्लेख्य कृतियो मे यात्री की काव्य पुस्तक "पत्रहीन नग्न गाछ" की चर्चा पहले ही की जा चुकी है जिस पर साहित्य आकादमी का १९६९ का पुरस्कार मिला है। कुछ अभागे पर कुठित मैथिली साहित्यकार इस पुस्तक की तुलना मे राजकमल की "स्वरगंधा" काव्य-पुस्तिका को आकादमी पुरस्कार देने की माँग गला फाड़-फाड़ कर करते है। पर यात्री और राजकमल मे

१. आधुनिक मैथिली साहित्य, पृ० ११४।

जितनी ऊँचाई का अन्तर है शायद उससे कम "स्वरगंधा" और "पत्रहीन नग्न गाछ" में भी नहीं। राजकमल के ये पृष्ठपोषक यदि राजकमल के इतने कायल हैं तो उन्हें हिन्दी में प्रकाशित राजकमल के "मुक्ति प्रसंग" के लिये भी उसी तरह शोर मचाना चाहिये। मैथिली कवियों का यही बौनापन है जो उन्हें आज भी हिन्दी कविता से भिन्न और ऊँचे धरातल तक भी नहीं ले जा सका है। मैंने पूर्व में ही निवेदन किया है कि प्रतिभाओं और वस्तुओं की कमी मैथिली में नहीं है पर कूपमंडूकता के कारण मैथिली साहित्यकार मौलिकता से बहुत दूर हैं।

आधुनिक मैथिली कविता को चार धाराओं में विभाजित किया जाता रहा है। पहली धारा के अन्तर्गत गीतमूलक रचनाओं का स्थान है। ऐसे कवियों में कवि चन्द्र, त्रिलोचन झा; छेदी झा "द्विजवर", सुमन जी, मधुप जी, ईशनाथ, यात्री, भुवन और अमर जी अति उल्लेख्य हैं।

दूसरी धारा राष्ट्रीय कविताओं की है, जिनमें भुवन जी, किरण, मधुप, यात्री-रमाकर, आरसी प्रसादसिंह, गोपेश, प्रवासी, निशिकांत मिश्र आदि प्रमुख हैं। हिन्दी के भगवतीचरण वर्मा, दिनकर, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों की कविताएँ इनकी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। तीसरी धारा प्रगतिशील कविताओं की है जिसके शुद्ध प्रगतिवादी कवि एकमात्र नागार्जुन हैं।

नागार्जुन सर्वहारा कविता की धारा को तीव्र कर देते हैं। उनमें मजदूर-वर्ग की संघर्षशील चेतना समुन्नत रूप में प्रकट हुई है। पूँजीवादी चट्टानों से टकराती, भयकर संघर्षों में तपती, मजदूर-वर्ग की हिमायत करती हुई नागार्जुन की काव्य-धारा जनवादी परम्पराओं में आगे बढ़ी है। नागार्जुन साम्राज्यवाद के सक्रांति-विनाशक प्रयत्न को एक चुनौती देते हैं।[1]

नागार्जुन की कविता मे लोकल कलर भाषा-शैली के कारण भी आ जाता है—"बाग पोखर चौर-चाँचर" इत्यादि शब्द धरती की धड़कन का परिचय देते हैं। ये शब्द कतिपय स्थलो पर कवि को स्वाभाविक ढंग से प्रयुक्त करने पड़ते हैं। क्योंकि उनके बदले हिन्दी मे कोई ऐसा शब्द नही है जो रखा जा सके। मैथिली के ऐसे बहुत सारे शब्द हैं जिनका हिन्दीकरण कठिन है। उसे उसी रूप मे नागार्जुन रखते हैं। इनकी कविता में मैथिली के मुहावरे, उपमा-उपमेय, अलंकार इत्यादि भी धड़ल्ले से प्रयोग से आते हैं।

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ० २४६।

इनकी कविता मे लीजेण्ड एव इमेज भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते है। जव नागार्जु न कहते है—

> "कैसी लगती है ....
> "पंचवर्षीय" योजना ?
> "हिडिम्बा" की हिचकी "सुरसा" की जँभाई ।"

"हिडिम्बा" और "सुरसा" दोनों को समझने के लिये पौराणिक गाथाओं का सहारा लेना होगा। ऐसा करना भी हिन्दी के भाण्डार को भरना है। वस्तुतः नागार्जु न आधुनिकता के प्रचार के लिये मैथिली और हिन्दी दोनो साहित्यो मे समान रूप से आदर की दृष्टि से देखे जायेंगे।[१]

इस धारा के अन्यान्य कवियों मे विभाकर, राजकमल और मग्यानन्द मिश्र, केदारनाथ लाभ आदि का नाम लिया जा सकता है।

मैथिली में लगभग एक दर्जन नवयुवक कवि हिन्दी की नयी कविता की वजन पर नयी कविताएँ लिख रहे है। इन कवियों मे सबसे समर्थ कवि राजकमल थे। राजकमल मैथिली और हिन्दी दोनों पर समान अधिकार रखने वाले हैं। उनकी मैथिली काव्य पुस्तक स्वरगंधा (१९५८) का रचना विधान "मुक्ति प्रसंग" (हिन्दी" में विकसित हुआ है। मैथिली मे स्वरगधा की रचना कर राजकमल ने समस्त मैथिली काव्य में एक प्रयोग किया। हालाँकि 'स्वरगधा' का काव्य-शिल्प नागार्जु न और निराला के काव्य-शिल्प से बुरी तरह प्रभावित है। यह पुस्तक शायद इसीलिये "प्रतिपदा" और "चित्रा" (यात्री) को समर्पित है। इस प्रसंग मे यात्री एव राजकमल की पक्तियाँ तुलनीय है—

> "किन्तु की
> हम बिसरि पाएव
> तरोनी सन गाम ? गड़हड़ा सन आम ?
> दीदिक इनारक पानि
> अपना पोखरिक ओ ठुट्ठ पातर जाठि
> हरिअरिक सागर जहाँ हिलकोर रहि रहि लेत
> धनहर वाध कोसक कोस।" (यात्री)

> "मौन पड़इए
> गोवर से नीपल आंगन मे पूव कोन पर तुलसी चोरा
> देवाल पर चित्रित अंकित भेना जोगिन, आतिल-पातिल शिव-गोरा
> अहिपन के सतरंग चित्र पर राखल आमक पल्लव संयुक्त घइल
> पिठार स रंजित सज्जित पौढ़ी" (राजकमल)

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ० २५०।

कुछ रचनाकारों को छोड़कर शेष रचनाकारों की मैथिली रचना हिन्दी की समकालीन कविताओं से आक्रान्त हैं। इस संदर्भ में चन्द्रशेखर झा की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—"कविताक क्षेत्र में त तेहन ने वाढ़ि आयल अछि जे कुनु कछेर जलमग्न अछि। ई प्रवाह कुमहर कए अपन रस्ता लेत से एखन कहब अनिश्चित। मैथिली कविता पूर्ण संक्रमणकाल (ट्रानजीशन पीअरड) में गुजरि रहल अछि। मध्वारिक वेग जहाँ तनेक ने कवि लोकनि फरि गेलाह अछि जे कविताक नामो आब वदनाम भए रहल अछि। कलकत्ता मे त कवि आब "बुरिबक" क पर्याय बनि गेल अछि। हिन्दीक "नई कविता" तथा "प्रयोगवादी" कविताक अन्धाधुन्ध अनुकरण मैथिली में होयवाक कारणे कविता कामिनीक हायन्धेर सम द्रुटि रहल छेन्हि। स्वयं हिन्दी साहित्य में अखन "नई कविता" एक विवादास्पद विषय बनल अति तखन मैथिली मे ई कहाँ तक उसन भय सकत कहब कठिन अछि।"[१]

कवि नचिकेता के "कवयो वदन्ति" की चर्चा हो चुकी है। उन्होंने अत्याधुनिक पीढ़ी के कवियों को सुन्दर काव्य-मंच "मैथिली कविता" के द्वारा दिया है, जिसमें नयी और समादृत पीढ़ी के कवि भी सहयोग दे रहे हैं। अत्याधुनिक पीढ़ी के हस्ताक्षरों में शालिग्राम, सुकान्त, हंसराज, रामानन्द रेणु, गंगेश गुंजन, वीरेन्द्र मल्लिक, सोमदेव, कीर्तिनारायण मिश्र, हरिनारायण मिश्र, कान्तिनाथ ठाकुर, उपेन्द्र दोषी आदि के नाम उल्लेख्य हैं।

"आखर" मासिक पत्रिका में प्रकाशित "कन्या" के अन्तर्गत "कतेक खंड : एक मन" में आकाशवाणी (पटना) के गंगेश गुंजन ने अच्छे प्रयोग किये हैं।

उपन्यास और कविता की तुलना में आधुनिक मैथिली नाट्य साहित्य की दशा और भी दयनीय है। आधुनिक ही क्यों, मैथिली नाट्य साहित्य की उपलब्धि ही सन्तोषजनक नहीं है। नाटककार के रूप में कोई ऐसी प्रतिभा मैथिली में नहीं है, जिसकी तुलना हिन्दी के जयशंकर प्रसाद, हरेकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र और रामकुमार वर्मा आदि नाटककारों से की जा सके। जो उल्लेख्य नाटककार हैं वे मैथिली साहित्य की अन्यान्य विधाओं में भी लिख रहे हैं। इन रचनाकारों में प्रो० तन्त्रनाथ झा, प्रो० हरिमोहन झा, योगानन्द झा, किरण जी, ईशनाथ झा, आनन्द झा, सुधांशु शेखर चौधरी गोविन्द झा आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इस सन्दर्भ में यथोलिखित विचार उल्लेख्य है—

---

१. आधुनिक मैथिली साहित्य, पृ० ११५।

"मैथिली में नाटकक एतेक अभाव अछि जे कहत नहिं जाय। कहबाक लेल अनेको किताव प्रकाशित भेल अछि मुदा रंगमंचक योग्य एकोटा नहिं अछि। ईशनाथ झा जीक चीनीक लड्डू, उगना तथा पं० गोविन्द झा जीक "वसात" यदि आधुनिक नाटकस निकालि देल जाय त मैथिलीक रंगमंच अन्हार भए जायत। येह् तीन नाटक मच योग्य अछि। नव पर जतेक लिखल गेल अछि से सभ ततेक अनैतिक, अनाकर्षक तथा कठिनाई से पूर्ण अछि जे मंच पर खेलल नहिं जा सकेछ। हरिश्चन्द्र जीक एकांकी "छीक" अवश्य उत्तम अछि तथा हुनका मे नाटक खिलबाक प्रतिभा छेन्ह। ईशनाथ जीक बाद एहि प्रकारक प्रतिभाक परिचय देनिहार कियो नहिं भेलाह। तखन आगा देजक चाही। श्रीविद्यानाथ राय जीक "विद्यापति" किछु त्रुटि रहितो खेलवा योग्य अछि।

हरिमोहन झा जीक किछु एकांकी अछि मुद्रा मंचक खेल आकर्षक तथा उपयोगी नहि। शाकुन्तल, मृच्छकटिक, विक्रमोर्वशीय तथा उत्तर रामचरित्र आदि नाटक केवल पठनीय अछि दर्शनीय नहिं तथा आधुनिक रुचि स पूर्ण भिन्न। सम्प्रति मैथिली नाटकक भविष्य अंधकार पूर्ण अछि। हँ, प्रतिभा सम्पन्न लेखक लोकनि यदि ध्यान देथि तए किछु आशा कएल जा सकेत।"[1]

आधुनिक मैथिली नाट्य साहित्य का आरम्भ सन् १९०४ मे पं० जीवन झा के "सुन्दर संयोग" नाटक की रचना से होता है। पं० जीवन झा ने मैथिली नाट्य साहित्य में नवीनता का प्रयोग किया। हालाकि मध्यकालीन साहित्य दृष्टि का वे सर्वथा त्याग नही कर पाये। प० जीवन झा ने नाटक मे यथार्थता का प्रयोग कर स्वाभाविकता का समावेश किया। इसके पूर्व मैथिली मे किर्तनिया नाटकों की बड़ी समृद्ध परम्परा रही पर यह कभी भी लोकप्रिय नही हुआ। नाटक लोक कला है जिसकी रगमचीय सफलता आवश्यक है। इस दृष्टि से मैथिली नाटक बराबर असफल रहे। मिथिलाचल मे हिन्दी नाटक ही खेले जाते रहे है। ठेठ मिथिला के गाँवो मे भी यही दशा है। शायद इसीलिये मैथिली नाटको का विकास अबाध गति से नही हुआ। यदि आवश्यकता होती तो साहित्यकार इस ओर ज्यादा दिलचस्पी लेते। हाँ, पाठ्य-पुस्तको के रूप में विभिन्न विश्वविद्यालयों मे स्वीकृत कराने के लिये ही वस्तुत: कुछ एक नाटको का सृजन आज भी हो रहा है जो उल्लेख्य नही और जिनमे बड़े घटिया किस्म के साहित्यिक विषय वस्तु का प्रयोग किया जाता रहा है।

अन्य विधाओं की तरह मैथिली नाटक भी हिन्दी नाटक का पिछलगुआ

---

१. आधुनिक मैथिली साहित्य, पृ० ११६।

रहा और उसकी छाया में विकसित होता रहा। आधुनिक मैथिली नाटक के निर्माता पं० जीवन झा भी इससे प्रभावित रहे।

इस प्रकार मैथिली नाटक का आधुनिक साहित्य जो लगभग ६० वर्षों का है, मात्र सात-आठ नाटकों को लेकर ही उल्लेख्य है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित मैथिली सन्दर्भ द्रष्टव्य हैं—

"एहि प्रकारे मैथिली नाटकक आधुनिक साहित्यक ५८ वर्ष (१९०४-६२) मध्य गणना-योग्य सात-आठ नाटकक कठिनता से नामोल्लेख कएल जा सकैत अछि आ एहि नाटकक प्रकाशन काल पर ध्यान देल जाए त दुइ महत्त्व पूर्ण नाटकक मध्यक समय एतेक दीर्घ रहैत अछि यथा—"सुन्दर संयोग" आ "मिथिला नाटक" मध्य १६ वर्ष, "चीनीक लड्डू" ओ वसातक क मध्य २०-२१ वर्ष जे कदाचित कोनो उत्तम मैथिली नाटकक प्रकाशन मरुभूमि मे दूबि जनम बाक सदृश बूझि पड़ैत अछि। एकांकी रचनाक सम्बन्ध मे अवश्य किछु आशाक स्थान अछि।"[1]

मैथिली आलोचना और निबन्ध की स्थिति भी आशाजनक नहीं है। वस्तुतः आलोचना साहित्य की महानता महान आलोच्य कृतियों के सृजन पर ही निर्भर करती है। हालांकि मैथिली में कतिपय आलोचक ऐसे हैं जिनमें पर्याप्त शक्ति और सम्भावनाएँ हैं। डॉ० जयकान्त मिश्र का नाम पहले ही लिया जा चुका है। डॉ० उमेश मिश्र, डॉ० सुभद्र झा आदि ऐसे नाम हैं, जिन्होंने मैथिली के शोध-साहित्य को पर्याप्त बल दिया। यों तो मैथिली आलोचना का विकास भी बीसवीं शताब्दी में ही हुआ। प्रो० रमानाथ, प्रो० जयदेव मिश्र, नरेन्द्रनाथ दास, पं० बलदेव मिश्र, प्रो० आनन्द मिश्र, प्रो० सुरेन्द्र झा "सुमन", प्रो० बुद्धिधारी सिंह, रमाकान्त झा, उमानाथ झा, प्रो० दामोदर ठाकुर, प्रो० भक्तिनाथ सिंह ठाकुर, प्रो० शैलेन्द्र मोहन झा आदि के नाम उल्लेख्य हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर आलोचकों में अमर जी, डॉ० ब्रजकिशोर वर्मा, डॉ० शिवशंकर झा 'कान्त', बालगोविन्द झा व्यथित, सुधांशु शेखर चौधरी, प्रो० मायानन्द मिश्र, डॉ० दुर्गानाथ झा श्रीश, प्रो० रामदेव झा, कीर्तिनारायण मिश्र, प्रो० हरिनारायण मिश्र, कुलानन्द मिश्र, आदि के नाम उल्लेख्य है।

इस प्रसंग में मैं पुनः "आधुनिक मैथिली साहित्य" नामक पुस्तक से निम्नलिखित अवतरण उद्धृत करना चाहूँगा—

---

१. अभियान, पृ० २७।

"मैथिली साहित्यक लेल आलोचना एक अनजान वस्तु अछि। एकर कारण आलोचकक कमी तथा पत्र-पत्रिका मे आलोचनाक लेल स्थानाभाव। बिना आलोचना के साहित्य मे ने कोनो धारा निश्चित होइत छैक आने विकासे। परन्तु खेदक बात जे आलोचनाक एकोटा -स्तम्भ कोनो पत्रिका मे नहि अछि तथा ने कोनो समालोचनाक अन्य प्रकाशने। अधिक से अधिक लेखक व्यंग लेख लिखिकए—अपन मोनक भाव व्यक्त करैत छथि।

जहाँ तक निबन्धक प्रश्न अछि ओहि दिशा में कोनो खास प्रगति नहि भए रहल अछि। विचारात्मक लेखक जेकर सर्वथा अभाव अछि। केवल किछू विद्यार्थी तथा प्रोफेसर लोकनि लेकचरक लेख तैयार कयल गेल नाटक आधार पर किछु राजनैतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक लेख तैयार कएलेत छथि ते विशेपकर कए मौलिकताक अभाव रहेत अछि।"[१]

मैथिली मे निबन्धों का अभाव तो है ही कुछ ललित निबन्ध प्रो० प्रफुल्लकुमार मौन, गंगानन्द, गंगापति सिंह, प्रो० लक्ष्मीपति सिंह, ताराकांत प्रकाश, प्रो० परमानन्द झा, प्रो० विभाकर, प्रो० शैलेन्द्र मोहन झा आदि ने लिखे हैं। कुछ रिपोर्ताज के भी अच्छे प्रयोग किये गये है, जो 'मिथिला मिहिर' साप्ताहिक में ज्यादातर छपे है।

एक मात्र मिथिला मिहिर ही मैथिली की ऐसी पत्रिका है जिसके द्वारा मैथिली का रूप सही रूप मे देखा जा सकता है। और शायद उसका यह रूप बड़ी चिन्ता देता है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि आज ज्यादातर मैथिली विद्वान और रचनाकार साहित्य रचना से अधिक मैथिली के जनगणना में मातृभाषा लिखवाने, आकादमी में स्थान दिलाने और सविधान मे स्वीकृत कराने की चिन्ता ज्यादा करते है। कहने का अर्थ यह है कि आज मैथिली मे आन्दोलन अधिक हो रहा है, सृजन और सर्जन की ओर ध्यान बहुत कम है। यदि स्थिति यही रही तो मैथिली स्वतः भाषा का झुनझुना मात्र बनकर रह जायगी।

---

१. आधुनिक मैथिली साहित्य, पृ० ११६।

"सात फूल"
अंगिका के प्रथम गद्य का नमूना

—ओमप्रकाश पाण्डेय 'प्रकाश'

"सात-फूल'—अंगिका के प्रथम गद्य का नमूना है।' यह मान्यता प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु की रही है।

'अंगिका' प्राचीन जनपद 'अंग' अर्थात् वर्त्तमान में समस्त भागलपुर प्रमण्डल की लोकभाषा है। इसे हिन्दी की एक लोकभाषा, उपभाषा अथवा विभाषा कहेंगे, जो मालदह जिले के भी कुछ भागों तक में बोली जाती है।

महाभारत काल में महाप्रतापी कर्ण को दुर्योधन ने इसी 'अंगदेश' का नरेश बनाया था। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार भगवान शंकर की कोपाग्नि में कामदेव का अंग इसी क्षेत्र में भस्म हुआ, अतः यह अंग कहलाया। वैसे, राजा सगर के समकालीन राजा बलि की पत्नी सुदेष्णा से महर्षि दीर्घतमा के अंग, वंग, कलिंग, सुह्म एवं पौण्ड्र—ये पाँच पुत्र हुए, जिन्होंने अपने नाम पर पृथक्-पृथक् राज्य बसाये। सर्वाधिक प्रतापी 'अंग' ही हुए, जिन्होंने अपने नाम पर 'अंग-देश' की स्थापना की। 'अंग' के राजनीतिक, धार्मिक एवं सारस्वत उत्कर्ष के प्रचुर वर्णन—वेद, ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, आरण्यक, पुराण आदि के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी मिलते हैं।

प्रसिद्ध कवि प० परमानन्द पाण्डेय ने 'अंगिका' (साहित्य-शोध-त्रैमासिक १–१) के अपने सम्पादकीय में कहा है—

"अष्टाध्यायी की काशिका वृत्ति के अनुसार अंग-जनपद की भाषा का प्राचीन नाम आंगी था। इसकी अपनी लिपि भी थी। 'ललित विस्तर' में वर्णित ६४ लिपियों में चतुर्थ स्थान अंग लिपि का ही है। आज भी शिला-लेखों में यह लिपि प्राप्य है।

डॉ० ग्रियर्सन ने प्रमादवश भागलपुर-प्रमण्डल की लोकभाषा को 'छीका-छीकी' लिखा है। परन्तु, यह नाम कृत्रिम है। अंगिका को 'छीका-छीकी' कहना, भोजपुरी को 'बाटे-बाड़े' कहना जैसा भ्रामक है। वास्तव में, आंगी का विकसित नाम अंगभाषा हुआ, किन्तु महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इसको 'अंगिका' कहा और अब यही नाम प्रचलित हो गया है।"

ऐनरेय ब्राह्मण में, राजा अंग द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ करने का भी वर्णन मिलता है—

अंगः समन्तं सर्वतः पृथ्वीं जयन् ।
परीयायाश्वेन च मेध्यनेज इति ।। (३६—८—२२)

अति प्राचीन काल से ही यह विद्या का भी केन्द्र रहा है। इसी गौरवमय अंग की भाषा अगिका मे विरचित 'सात फूल' अगिका की सात मौलिक कहानियों का संग्रह है। 'सात फूल' आधुनिक अगिका की प्रथम कृति है, जिसके रचनाकार हैं—श्री परमानन्द पाण्डेय। 'सात फूल' का प्रकाशन, प्रख्यात भाषाशास्त्री स्व० गदाधर प्रसाद अम्बष्ठ, श्री रामलखन प्रसाद एवं कथाकार पाडेय के प्रयत्न से बिहार सरकार के समाज-शिक्षा-बोर्ड द्वारा सन् '६२ ई० मे हुआ।

'सात फूल' पर साहित्य दधीचि आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा था कि लोक साहित्य के प्रकाशन से क्षेत्रीय अथवा जनपदीय भाषाओ के तुलनात्मक अध्ययन में बडी सुविधा होगी। भाषा-विज्ञान के अध्येताओ के लिए ऐसी पुस्तको का विशेष महत्त्व है। इन कथाओ मे लोक-मानस का स्वाभाविक चित्र अंकित मिलता है। पाण्डेय जी ने अन्यान्य जनपदो के लेखको का पथ-प्रदर्शन किया है।

'सात फूल' की प्रस्तावना लिखी हुई है, भाषा शास्त्र के जाने-माने विद्वान स्व० गदाधर प्र० अम्बष्ठ की। प्रस्तावना अत्यन्त ही गवेषणापूर्ण लिखी हुई है, जिससे कि साहित्यिक शोध करने वालों को अंगिका के अनुशीलन मे अभीष्ट सहायता मिलेगी। 'सात फूल' को एक साथ ही कई बड़े-बड़े साहित्य-कारो ने अगिका की प्रथम कृति मानी है। इसके पहले किसी ने आधुनिक अगिका मे कुछ नही लिखा था। अब तो दर्जनो पुस्तके रची जा चुकी है। इसकी प्रायः सभी कहानियाँ १९५० ई० के पूर्व की लिखी हुई है। सात फूल के कवर पृष्ठ पर स्व० राष्ट्रकवि डॉ० रामधारी सिंह दिनकर, डॉ० भुवनेश्वर नाथ 'माधव' आदि की भी सम्मति छपी है।

सात फूल की सात कहानियो के नाम है—नासमझी के फऽल, हरू-मगलू, किरपिनीरऽ धन खोटाँ खाब, आब अछैते बाव ने लाग, पाप लिखतौ, जेन्हे करनी—तेन्हे भरनी और रांगाधारी बावा।

कहानी तो सभी उच्चकोटीय है, भाषा मे भी काफी माधुर्य है। 'सात फूल' की कहानियों मे कुछ तो एक ओर ऐसी हैं जो किसी भी विकसित भाषा के आधुनिकतम साहित्य के निकट जाती लगती है और दूसरी ओर कुछ ऐसी

भी कहानियाँ हैं जिनमें अंगिका के परम्परागत लोक-साहित्य की आत्मा सुरक्षित है और जिनमें अंगिका का अपना व्यक्तित्व उभरा है। मुहावरों और कहावतों की तो मानो भरमार हो गयी है।

"असली मरद जे होय छै एके माँग में सेनूर दै छै।" पहली कहानी में ही एक स्थल पर दिया गया उलाहना भी देखें—"हाय रे बाबू! है त राकसिन छै रे! है मुरदा खाय छै! हाय रे बापू! यह कनिमैन हमरा कप्पारऽ में बथैली छेली!"

'सातफूल' की पाँचवीं कहानी 'पाप लिखती!' में, जोकि कृति की सर्वश्रेष्ठ कहानी ही मानी जा सकती है, शब्द-चित्र तो पराकाष्ठा पर ही जैसे पहुँचा हुआ है—

"किसुनपुर के लछमी पंडित क के नै जानै छै? बस्ती भरीं में सतनारायन के कथा सें चंडीपाठ तलक सबकन हिनिए करै छैन। नाटऽ-घोटऽ आदमी गहुँमा रंग, कसलऽ गोल सरीर, माथा पर गायखुर परमान टीकऽरऽ झोंपऽ, भरी कपार चन्नन, गुल्लर रंग आँख, पानऽ खिल्ली रंग नाक, भुट्टी भिराय क छाँटलऽ मोंच, बोंटलऽ दाढ़ी, गल्ला में आपनऽ हाथऽ रऽ बनैलऽ तुलसी के कंठी आरो माला, मोटिया के मिरजै, कान्हा पर राम नामा चद्दर, ठेहुना पर धोती, चमरखानी जुत्ता, एक हाथों काँखऽ तर पोथी पतरा दोसरऽ हाथो बोकडी लाठी आरो थुबुल-थुबुल चाल! दस रस्सी दूरै सें देखी क चीन्ही ल कि लछमी पंडित आवै छै। हिनकऽ बाबूजी धरमनाथ पंडित के जोड़ा है दिगार मे कोय पंडित नै छेलै। जेन्हे धरमी तेन्हे विदोमन! आरो चेहरा त भगमानजी आपन्हे हाथऽ से मिरजनै छेलैन। जे सब आदमी हुनका देखल छेलै से कही छै कि ओन्हऽ आदमी फेरू नै देखलकै। से बूढ़ा पंडित जी बहुते उपाय करलकात कि हुनकऽ लछमी नाथ भी पढ़ी-लिखी क नाम कर। लेकिन कि लछमी के मन चटमारी मे नै लागलै। पढ़ुआ बुतरू सिनी क देखी क हिनी बहऽ रंग भडकै जेना कि रंगलऽ कपड़ा देखी क बिल्हामऽ।"

कहानी 'पाप लिखती' में ही एक दूसरा प्रसंग देखे, जबकि पाँच-छः चोर-डकैत घर में घुसे हैं और पडित जी पर भाले तने हैं। उस वक्त भी पंडित जी उन लुटेरो से सिर्फ एक मिनट की मोहलत माँगते हैं—गोपाल जी की अन्तिम पूजा कर लेने के लिए। तभी पूजा करते-करते स्वतः पंडित जी भाव-विह्वल होकर फूट पड़ते हैं—"हे गोपाल जी! आब तोरऽ धाम जाय रहलऽ छियौन।..... आ... ज तलक कंकरो बद नै कर....लि .. यै। कोन

जनम के पाप छेलऽ से है अका··· ल मिरतू ।······ विधवा······ बराह्मनी क देखिहऽ । ओकरऽ साँय-बेटा ··· सब तोही ·········"

अन्तिम कहानी 'रांगाधारी बाबा' के आरम्भ मे ही कथाकार पाडेय की कथोपकथन-पद्धति की निपुणता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई नजर आती है—

"आज सुक्कुरऽ के हटिया छेकै नी ! खैनियो हमरऽ ओराम गेलै—खैनी के बटुआ झाड़ी क हेमन बोललै—"अरे रधुआ ? देखै त उतर वारी घरऽ मे एक धो पत्ता छौ रे ?"

"की हो बाबू ! खैनी ? अच्छा देखैछि हौन ।"

× × ×

"जै रांगाधारी बाबा, सबके कलियान करिहऽ तें पीछू हमरो भला करिहऽ—गोड़ लाग तूनू ।"

"रांगाधारी कोन गोसाँय होय छै बाबू ।"

"अरे, बाप मत पूछ । हिनी बड़ी कड़ा गोसाँय छैन ।"

प्रसिद्ध आलोचक प्रो० डॉ० दीनानाथ 'शरण' ने लिखा है—

"सात-फूल की कहानियों में वास्तव मे सात विभिन्न फूलो की गध-गरिमा है ।······ ये कहानियाँ अंगिका के आरम्भिक गद्य का सर्वप्रथम नमूना चाहे जो हो, किंतु पढ़ने पर वही बात मन में आती है जो 'सूरदास' के बारे में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कही थी । ऐसा लगता है कि 'सात-फूल' की गद्य-शैली अंगिका की चली आती हुई प्रांजल परम्परा की प्रथम लिखित उदाहरण कृति है । ······गद्य-शैली मे प्रवाह है, रोचकता है, जो कहानी की शैली का अनन्य आकर्षण है और वह स्वाभाविकता जो हमें अनायास प्रेमचन्द की कला की याद दिलाती है । ···· ग्राम्य-जीवन से ली गई कथा-वस्तुओ मे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी प्रवृत्ति स्पष्ट विदित होती है ।

मात्र कौतूहल या सस्ता मनोरंजन श्रेय की बात है, 'सात-फूल' के कथाकार का अभीष्ट नही । जीवन-वास्तव की सहज अभिव्यक्ति के साथ-साथ जीवनोन्नयन के लिए सदेश-सकेत 'सात-फूल' के सौरभ को अवश्य स्थायित्व प्रदान करते है । "पाप लिखतौ" या "हरू-मंगलू" कोई भी कहानी अपवाद नही है ।

ये कहानियाँ केवल प्रथम गद्य के श्रेय से ही विभूपित न होगी अपितु इन्हें वह साहित्यिक स्थापना भी प्राप्त होगी जिसकी ये सचमुच अधिकारी है ।"

वास्तव में 'सात-फूल' के पराग में जो कला अन्तर्निहित है, उसके लिए 'मोपाँसा' की पंक्तियाँ सटीक लगती हैं—

An artist does not present a banal photography of life rather he presents a picture of life which is richer, fuller, sober and more comprehensive than reality itself.

अर्थात् एक कलाकार जीवन का सामान्य चित्र ही प्रस्तुत न कर ऐसा चित्र उपस्थित करता है जो यथार्थ से भी अधिक समृद्ध, पूर्ण संयत एवं अधिक व्यापक होता है।

अंगिका एवं अंगिकेतर बिहारी भाषाओं के परसर्ग

—डॉ० तेजनारायण कुशवाहा,
एम. ए. पी-एच. डी., आयुर्वेदाचार्य
गांधीनगर ईशीपुर. (भागलपुर)

प्रत्यय से हम सभी परिचित हैं। परसर्ग उसी प्रत्यय की एक कोटि है। उसे कारक विभक्ति, कारक प्रत्यय और कारक चिह्न भी कहते है। हम यहाँ अंगिका और अंगिकेतर बिहारी भाषाओं के परसर्गो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं।

अगिका में कारकीय अभिप्रायो की अभिव्यक्ति के लिए परसर्गो का प्रयोग होता है। अंगिका की तरह खड़ी बोली, मैथिली, मगही, भोजपुरी, बज्जिका एवं नेपाली में भी परसर्ग चिह्न अथवा परसर्गीय पदावलियाँ मिलती है।

कर्त्ता परसर्ग—

अंगिका कर्त्तरि प्रयोग प्रधान भाषा है और खड़ी बोली हिन्दी कर्मणि प्रयोग प्रधान भापा। इसलिए अंगिका मे कर्त्ता के अभिप्रायो को व्यक्त करने के लिए कोई परसर्ग नही मिलता। यही स्थिति मैथिली, मगही, भोजपुरी और बज्जिका की भी है; क्योंकि ये भाषाएँ भी कर्त्तारि प्रयोग प्रधान भाषाएँ है। लेकिन अगिका कर्त्ता मे कहीं-कहीं 'एँ' परसर्ग का प्रयोग चलता है। यथा—'सोहनें खैलकै।' 'राजेन्द्रें फूल चढैलकै।' मैथिली में कर्त्ता कारक के चिह्न स्वरूप 'ए' की विरल स्थिति मिलती है। यथा—'अनि मनमथे मन वेधल वाने।' यहाँ 'मनमथे' मे 'ए' परसर्ग सुरक्षित है। नेपाली में कर्त्ता 'ले' प्रचलित है।

कर्म परसर्ग—

अंगिका में 'के', 'कें', 'कैं' और 'कैं' कर्म परसर्ग व्यवहृत होते है। जैसे—'ऊ वेकसूर इन्सान के मारी देलकै।' 'सुनथैं गोपाल के धक्क सना लागलै।' (अंग-माधुरी, दिसम्बर '७०, पृ० १३)

तोहरऽ रामे
दशरथ के जहर दे रहल छै
लक्मणे सूर्पनखा के लेल
रावण के घर सीता के पहुँचाय आवं छै।

—(मधुकर गंगाधर, वही पृ० ८)

खड़ी बोली में कर्म चिह्न 'को' प्रचलित है।[१] अंगिका में उसी 'को' परसर्ग का 'के', 'के', 'कैं' 'कै' और 'कैं' रूप प्रयुक्त होता हैं। मैथिली,[२] मगही[३], भोजपुरी[४] और वज्जिका[५] मे भी 'को' परसर्ग का 'के' रूप ही प्रचलित है। मैथिली कर्म कारक में 'कैं' और 'कइँ' भी चलते हैं। नेपाली में 'लाई' कर्म परसर्ग का प्रयोग होता है।

करण-अपादान परसर्ग—

करण-अपादान के लिए अंगिका में 'से' और 'सें' का प्रयोग चलता है। जैसे—

आरू सीता (?)
रावण सें लवकुश जनमावै छै।

(—मधुकर गंगाधर अं० भा०, दि० '७०)

रौदा से हटली छांव रे! —(अंगलता, सौंतारी, ते० कु०)

खड़ी बोली में इन दोनों कारकों के लिए 'से' चलता है।[६] मैथिली,[७] मगही,[८] भोजपुरी[९] और वज्जिका[१०] में भी करण-अपादान कारक परसर्ग 'से'

---

१. मैंने राम को बुलाया। दोपहर को राम आयेगा।
२. उ राम के बजेलकं।
३. रामरतिया बड़का भोरउवा के महुआ चुने ला चल आवल हल।
—(रमरतिया, बाबूलाल मधुकर)
४. उ अपना लड़की के बोलावंऽ। लड़कन के मिठाई दे दऽ।
५. .... विद्यालय के ....
६. हाथ से खाओ। पेड़ से पत्ता गिरा। मीरा से इड़ा अच्छी है।
७. उर्वशी अत्यन्त स्नेह सँ मेनका सँ पूछल। मेनका नभोमंडल सँ भूतल पर उतरलीह। —मेनका—राजेश्वर झा
८ हँसुआ से हाथ तरास देवई। —रमरतिया—बाबूलाल मधुकर
९. हमरा से किताव ले लऽ तोहरा ले सुन्दर बाड़ें। भूखे मर गईल। फूलन कियारी गमकति बा।
१०. .... विद्यालय से ....

और 'सें' चलते हैं। मैथिली में 'से' और 'सँ', मगही में 'सती' और भोजपुरी में 'ले', 'एँ', 'अन', 'अन्हि' जैसे परसर्ग भी प्रचलित हैं।

सम्प्रदान परसर्ग—

अंगिका सम्प्रदान में 'ले', 'लै', 'के लेल', 'लेल', लागि', 'खातिर' और 'वास्ते' परसर्ग व्यवहृत होते हैं। जैसे—

'चल्हें वहे रंग जांव रे
इतिहासऽ में करैले नांव रे .. '

—अंगलता, सौंतारी

'गीता किनका लेल लिखवैभ
माओ के लेल ?
या याह्या के लेल ?'

—असंभावना, मधुकर गंगाधर

'तोरे लागि कमावें छियो वेटा !'
'हमरा खातिर आम लेन्हें अइहऽ।'

खड़ी बोली में सम्प्रदाय के लिए 'को' और 'के लिए' परसर्गों का प्रयोग होता है।[1] मैथिली,[2] भोजपुरी,[3] वज्जिका[4] और नेपाली के सम्प्रदान में खड़ी बोली का 'को' परसर्ग का किंचित् परिवर्तित रूप 'के' का व्यवहार होता है। 'ला', लेल', 'लागि' मैथिली और मगही[5] दोनों में खूब चलते हैं। वज्जिका मे 'ला' 'लेल', मगही में 'लगी', 'त्रदे', 'वास्ते', 'खातिर' भी मिलते है। नेपाली[6] मे 'लाई' और 'काना' सम्प्रदाय परसर्ग प्रचलित हैं।

सम्बन्ध परसर्ग—

अगिका सम्बन्ध मे 'रऽ', 'केरऽ', 'क', 'केरॉ, 'केरी' परसर्गों का व्यवहार होता है। यथा—

---

१. वालकों के लिए आम लाना। वह लाने को गया।
२. शिशु के लेल आम लानलकिन।
३. उ आम के गइल वाड़ें।
४. ...... विद्यालय ला (अथवा विद्यालय लेल अथवा विद्यालय के)......।
५. अहो रामा काहे ला वढ़इलऽ वढ़इलऽ लामी केसियाअें रामा।

—रमरतिया-वाबूलाल मधुकर, १२२

ई लेल हम्मर वात मानऽ। —वही १२४

६. अनमोल भनी जसलाई यहा दिच्छन् उत्तम स्थान।

—सि० च श्रेष्ठ, उर्वशी, ५०

'यक्षऽ केरऽ कनक वलिया
हाथ सें खूलि गेलै ।'

—गं० प्र० अम्बष्ठ, अंगिका १

'धनमारऽ रोपनी लगि गेलै दाय हे ।'

(तें० कु०, वही)

अंगिका के सम्बन्ध परमर्ग खड़ी बोली सम्बन्ध परमर्ग 'का', 'के', 'की' के परिवर्तित रूप ही हैं। मैथिली[1] में 'क', 'केर', 'केरा'; मगही[2] में 'क', 'के', 'केर', 'केरा', 'केरी'; भोजपुरी[3] में 'क', 'के'; वज्जिका[4] में 'के', 'कर' नेपाली[5] में 'को', 'का', 'की' सम्बन्ध कारकीय परसर्गों के द्वारा शब्दों के कारकीय अभिप्राय व्यक्त होते हैं।

अधिकरण परसर्ग—

अंगिका अधिकरण में 'में', 'पर','प', 'ए' परसर्ग प्रचलित हैं। यथा—

'मन में एके बात दुल्हनियाँ
गोरी छै की कारी छै ।'

— (सूरो : पंसोखा)

'सूइया हेनऽ सोझऽ मायऽ पर बोझऽ'

—(चकोर : विसाखा)

'ऊ सँलऽ प विरह दुख सें दूबरऽ देह होलें ।'

—(गदाधर प्र० अम्बष्ठ, अंगिका-१)

भोजपुरी अधिकरण परमर्ग भी ये ही हैं।[6] खड़ी बोली मे अधिकरण कारक के लिए 'में', 'पर' चलते हैं तथा इस आलेख की कथित भाषाओं मे खड़ी बोली के इन्हीं दोनो अधिकरण परसर्गों के परिवर्तित रूप उपयोग मे

१. 'उर्वशीक तथ्यपूर्ण वाणी कें सूनि तिलोत्तमा पुनि उपहासक मुद्रा में बजलीह —' —(राजेश्वर झा : मेनका)

२. महुआ के पेड़तर सगरे पीअर-पीअर मोती जइसन महुआ के दाना छितराइल हल । —(वावूलाल मधुकर : रमरतिया)

३. राम के लड़की के किताब । रमुआक बेटी ।

४. ···· ·· विद्यालय के ······ । विद्यालय कर (?)

५. राम का छोरा आए ।
खुशियाली को हरियालीमा
मेरो प्राण रमाओस । —(सिद्धिचरण श्रेष्ठ : उर्वशी, ४६)

६. घर में किताब घ दऽ । माथा पर टोपी लगालऽ ।

लाये जाते है। जैसे—मैथिली[1] में 'में', 'मँ', 'मा'; मगही[2] मे 'मे', 'मेर', 'मो', 'पर'; वज्जिका[3] में 'मे', 'पर', तथा नेपाली[4] में 'मा', 'म्हा', 'म्ही'।

सम्बोधन परसर्ग (?)—

अगिका मे सम्वोधन कारक के लिए कोई परसर्ग नही है। जिस प्रकार खड़ी वोली मे सम्वोधन का अभिप्राय व्यक्त करने के लिए अव्यय प्रतीको का व्यवहार होता है, उसी प्रकार अंगिका मे 'हे, 'हेरे', 'हेगे', 'हेग्गे' का व्यवहार होता है। इनमे पहले दो पुरुप सूचक अव्यय है और अन्तिम दो स्त्री-सूचक। 'हे', 'हेरे' स्त्रियों के लिए भी चलते है। यथा—

'रोहिनी हे ! तोहें त बड़ी कुलवन्ती छऽ।

—रंजन सूरिदेव

होरे, ससरी गिरलै रे नागा लोहावास घऽर रे !

—विहुला-विसहरी

माय गे, खैबऽ, हेगे, तरकारी भेलै।

मैथिली[5] मे 'हे', 'रे'; मगही[6] मे 'अहो', 'ये हो', 'अगे', 'गे', 'अरे', 'अवे', 'अजी'; भोजपुरी[7] में 'हे', 'हो', 'रे', 'आये' आदि अव्यय सकेत चलते है। नेपाली[8] में भी 'हे', 'ये आदि अव्यय प्रतीक प्रचलित है।

---

१ हंसिनी कतहु बांसक वन में अनुरक्त भेल अछि ?
(मेनकाक कोर में नवजात कन्या।) —(राजेश्वर झा : मेनका)

२. रमरतिया माथा पर गगरी हाथ में डोल लेके घर के ओर सोझिया गेल।
—(वा० म० : रमरतिया)

३. ·········विद्यालय में, विद्यालय पर, विद्यालय उप्पर।

४. जीवन वनमा अर्जुन गम्की
खिल्यो वेदाग वनी। —(सि० च० श्रेष्ठ : उर्वशी)
प्रति कम्पनमा प्रतिचेष्टामा
लज्जत नखरा गाँसी। (वही)

५. 'हे मेनके, विषयक संसर्ग सँ तृष्णाक बृद्धि होइछ।' —(राजेश्वर झा)

६. 'अगे वेटी, वसिया पनियां से मुहमा धोके वसिया दरवा खाके ·· ·······'
—(बावूलाल मधुकर)
'नहे, देखऽऊ रहगिरवा जे आ रहलो हे उ तोहर ससुरार के हजाम हो।'
—(वही)

७. 'हो वावू, वाजार चलऽ नऽ। रे वचिया गिलास ले ले आऊ।'

८. 'जीवन लाई कुन दण्ड तिमि दिन्छौ हे पार्थ निराला।'
'बोलबोल त्यो मर्म कहानी, ए अम्वर ए तारा।' —(सि० च० श्रेष्ठ)

अंगिका, मैथिली, मगही, भोजपुरी, बज्जिका, खड़ी बोली और नेपाली में कारकीय अभिप्रायों को व्यक्त करने के लिए अनेक परसर्गीय पदावलियों के व्यवहार भी होते है। यथा—ओर, ऊपर, आगु, ओत्ता, एत्ता, गुने, कारन, कारने, खातिर, लागि, संती, सोझा आदि।

इस प्रकार परसर्गीय अध्ययन के आधार पर अंगिका बज्जिका मे नही आती। मगही मे भी नहीं। भोजपुरी और नेपाली से तो भिन्न है ही। अगिका का सम्बन्ध खड़ी बोली हिन्दी से वैसा ही है, जैसा मैथिली, मगही, भोजपुरी, वज्जिका और नेपाली रखती है।

बिहार की जनपदीय भाषाएँ और हिन्दी

— रमण शाण्डिल्य

जनपदीय भाषा-संस्कृति के महान् संरक्षक और मर्मज्ञ स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने जनपदीय आन्दोलन के प्रवर्त्तक विद्वान् पूज्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी को लखनऊ से २३–१–४४ को लिखे गये अपने पत्र मे लिखा था—" 'जनपद' शब्द को लेकर कुछ खीचातानी इधर हिन्दी मे हुई है। मुझे इस शब्द से बिलकुल भय नही लगता। प्राचीन ग्रन्थो मे जो अनेक जनपदों के नाम है, वे सब देखे जायँ तो कुछ जनपद जिलों के बराबर होगे, कुछ आजकल की कमिश्नरी जैसे। महाजनपद कुछ-कुछ प्रान्तो का रूप भी धारण किये हुए है। राजनैतिक पहलू और पार्थक्य के भाव की ओर हमें कुछ नही कहना है। हमें तो जनपदो में बसने वाली जनता की भाषा और सस्कृति का अध्ययन करके हिन्दी-भाषा के भण्डार को भरना है और उस जनता को आत्म-स्मृति करानी है। अधिकाश जनता गाँवो मे ही बसती है, अतएव जनपदों का अध्ययन ग्रामो का ही अध्ययन है।" " वह अपनी स्वतत्र सत्ता प्राचीन काल से रखता आया है। उसमे भयभीत न होना, उसे स्वीकार करना और फिर समग्रता या एकता के भाव की प्रधानता रखना ही हमारी विशेषता होनी चाहिए। क्या प्रान्त विभाजन से देश की समग्र एकता किसी प्रकार से भी निर्बल कही जा सकती है? ऐक्य का भाव तो मातृभूमि के प्रेम मे है। जो भूमि को माता कहें, वे सब उसके पुत्र है।"

उपर्युक्त पक्तियो से हिन्दी-जगत मे शायद ही किसी को विरोध हो किन्तु २७ वर्षो बाद का भारत इतने थपेड़ो को सह चुका है, ऐसी परिस्थितियो मे फँसता रहा है कि राष्ट्रीय एकता के खडिन होने का भय नही गया है बल्कि यह भय ज्यादा गहरा हुआ है जनता और सरकार दोनो मे ही। किन्तु प्राचीन जनपदो के आधार पर राज्य निर्माण के सपनो को सरकार की ढुलमुल नीतियो के कारण बल ही मिला है। सास्कृतिक उद्देश्य तो लुप्त ही हो गया है।

मैं यहाँ 'खीचातानी' नही करना चाहता किन्तु बिहार मे चल रहे भाषाई-ऊहा-पोह से हिन्दी-ससार को परिचित कराना चाहता हूँ। जनपदीय भाषाओ का आन्दोलन बिहार में ३६-३७ वर्ष पुराना है। पाश्चात्य भाषाविद्

जार्ज ग्रियर्सन का जो भी दृष्टिकोण रहा हो, पर समस्त बिहार की जनभाषाओं की पहचान, नामकरण और विवरण देने में वे असमर्थ रहे। आज जब उनके निष्कर्षों, विचारों और विवरणों से अलग कुछ प्रकाश में आ रहा है तो भाषाई-ऊहा-पोह स्वाभाविक है। जनपदीय भाषाओं के उत्थान सम्बन्धी आन्दोलन को जहाँ-जहाँ राजनीति का जामा पहनाया गया है वहाँ-वहाँ समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

मैं यहाँ बिहार के मैथिली विस्तारवाद और उससे आतंकित अन्य जनपदीय भाषाओं की स्थिति का लेखा-जोखा प्रारम्भ में दूँगा। पूर्व काल में बिहार कई छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। यथा—'मगध', 'अंग', 'वज्जि', 'मल्ल' और 'मिथिला'। दक्षिण बिहार में आस्ट्रो-एशियाटिक और द्राविण कुल की जातियों का वास था जिनकी संस्कृतियाँ, स्व-भाषाएँ थीं और आज भी हैं। बिहार से अलग एक राज्य का निर्माण ये जातियाँ करना चाहती हैं जिसका नाम 'झारखण्ड' होगा।

देश में राज्य-निर्माण की प्रक्रिया जब जोरों से चली तो बिहार के दरभंगा जिला के राजनीतिज्ञ महत्वाकांक्षा की आग में झुलसने लगे। 'मिथिला' नाम से अलग राज्य बनाने का स्वप्न सामने आया। दरभङ्गिया मन्त्रियों की सिफारिश और बंगला भाषाशास्त्री डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के अथक प्रयत्नों से जब 'मैथिली' को साहित्य अकादमी में स्थान प्राप्त हो गया तो 'मिथिला' राज्य का स्वप्न देखने वालों को काफी बल मिला। वैसे डॉ० चटर्जी के प्रयत्न से ही १९१९ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'मैथिलीसीट' की स्थापना हुई थी। उन्हीं चटर्जी महाशय की कृपा का फल है कि 'मगही' को साहित्य अकादमी की मान्यता मिल गई। पर भोजपुरी और बिहार की अन्य जनपदीय भाषाएँ उस लाभ से अब भी वंचित हैं। मैथिली और मगही को जिस प्रकार साहित्य अकादमी में मान्यता दी गई है क्या ब्रजभाषा बुन्देली, पाँचाली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, अवधी, भोजपुरी, वज्जिका, अंगिका, सन्थाली, मुण्डा, हो, उराँव आदि भाषाएँ समर्थ नहीं ? समर्थ नहीं भी हो, जनपदीय संस्कृति की वाहिनी इन भाषाओं की अब तक उपेक्षा क्यों ? राज्य और केन्द्र सरकारों की मिली-भगत के कारण ही इनकी उपेक्षा होती रही है। आज जब सरकार एक जन भाषा को मान्यता देती है, लाभ के अनेक अवसर प्रदान करती है तो इनके समकक्ष अन्य जनभाषाएँ क्यों नहीं अपना अधिकार माँगेंगी ? क्यों नहीं सभी जनभाषाओं को एक साथ मान्यता दी जाती अब भी ?

बिहार में मैथिली की देखा-देखी से दूसरी भाषाएँ भी अधिकार-रक्षा में सचेष्ट दिखाई देने लगी हैं। एक तो मैथिली की विस्तारवादी नीति से ये सब अस्तित्व-रक्षा के लिए आतंकित सी हैं दूसरी बात कि इन्हें इसका भी भय है कि इस विकासशील युग में हम मैथिली से पीछे न रह जायँ। उत्तर बिहार के उन क्षेत्रों में जहाँ वज्जिका बोली जाती है, स्कूलों में हिन्दी को विस्थापित कर मैथिली पढ़ाने की चेष्टाएँ चल रहीं हैं। कहीं-कहीं तो हिन्दी के विकल्प में मैथिली को स्थान भी मिल गया है। और यही स्थिति अंगिका के क्षेत्र के साथ भी है। वहाँ भी हिन्दी विस्थापित की जा रही है मैथिली द्वारा।

पूर्व काल में मिथिला की सीमा कहाँ से कहाँ तक थी इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है और वर्तमान 'मिथिलांचल' में जितने बड़े क्षेत्र को समाहित किया गया है उसमें अंगिका, वज्जिका, नागपुरी, संताली आदि जनपदीय भाषाएँ बोली जाती हैं। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि मैथिली मात्र दरभंगा जिला के मधुबनी सबडिवीजन में ही बोली जाती है और प्राचीन 'मिथिला' का एक बड़ा हिस्सा आज नेपाल के अधीन है। वह भाग दरभंगा जिला से सटा उत्तर में है। वर्तमान 'जनकपुर' भी कभी मिथिला में ही रहा होगा पर आज वह २४ मील भीतर नेपाल की सीमा मे स्थित है, मैथिली साम्राज्य को छिन्न-भिन्न होता देख एक मैथिली लेखक किस प्रकार पश्चाताप के आँसू बहा रहा है वह नीचे द्रष्टव्य है—

"मैथिली कें खंडित कऽ ओकरा संकीर्ण बनयबाक क्रम में मिथिला-क्षेत्रक अन्तर्गत परिनिष्ठित मैथिली सँ भिन्न मैथिली कें अन्य बोली ओ भाषाक रूप मे अभिहित कऽ ओकरा प्रतिष्ठित करबाक अभियान कयल गेल अछि। एहि प्रसंग भागलपुर एवं मुंगेरक मैथिली कें आ मुजफ्फरपुर ओ चम्पारनक मैथिली कें आन भाषाक बोली कहि प्रचार-प्रसार कऽ मैथिली कें संकीर्ण ओ हीन देखयबाक प्रयास कयल गेल अछि। **एहि प्रवृत्तिक प्रोत्साहित होयबाक एक टा प्रधान कारण हमरा सभक अनुदारता ओ संकीर्णता अछि। दरभंगा सँ भिन्न जिलाक ब्राह्मणेतर वर्ग कें स्थान दऽ प्रतिष्ठित नहि करब तथा मात्र मधुबनीक मैथिली कें शुद्ध मानि ओकरा प्रति व्यामोह राखब—हमरा सभक संकीर्णता कईयो अवश्ये छल।**

(—मिथिला मिहिर (मैथिली साप्ता०), ८ फरवरी, १९७० पृ० ७)

उपर्युक्त वाक्यों मे स्पष्ट रूप मे स्वीकार किया गया है कि ब्राह्मणेतर लोगों की भाषा को कभी भी मैथिली नहीं स्वीकार किया गया और आज जब उसे बिहार की राजभाषा बनाये जाने, विश्वविद्यालयों मे और विद्यालयों

में शिक्षा के माध्यम बनाये जाने, संविधान की अष्टम अनुसूची में स्थान दिलाने का प्रश्न सामने आया है तो एक विशाल क्षेत्र पर इसके अस्तित्व को लादने की चेष्टाएँ हो रही हैं।

एक दूसरे स्थल पर 'मिथिला मिहिर' में एक मैथिली लेखक लिखते हैं—"मिथिलांचलक सभ ठाम भाषा में थोड़-बहुत अन्तर होइते छैक। एकर अर्थ ई नहि जे दरभंगा आ सहर्षा के छोड़ि अन्यत्रक लोक मैथिली बजिते नहि छथि। ... "एकरा सम्बन्ध में हमर विचार अछि जे मैथिलीक पत्रिका सभमें 'आंचलिकी' एक कालम सेहो रहय एवं जाहि ठामक लेखक जहिना लिखैत छथि हुनक लेख ओहिना छापल जाय।"

कितना बड़ा महाजाल फेंका गया है अन्य भाषा भाषियों के लिए! मैथिली से भिन्न जनपदीय भाषाएँ जब आज अपने विकास के लिए संकल्प लिए अग्रसर हो रही हैं तो उन्हें मैथिली की ओर से 'ऑफर' मिल रहा है। डॉ० आदित्यनाथ झा ने एक बार कहा था—"मिथिलांचल में जितनी भाषाएँ बोली जाती हैं उसे मैथिली भाषा स्वीकार किया जाना चाहिए। सहरसा, भागलपुर पूर्णियां, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, दरभंगा आदि स्थानों की भाषाएँ स्थानीय भिन्नता लिए भी मैथिली-भाषा हैं।"

इस प्रकार के विस्तारवादी मनोवृत्ति वाले मैथिली-भक्तों की बिहार में कमी नहीं है।

मैथिली की समस्या मात्र भाषा की समस्या ही नहीं है। इस विषय पर 'मिथिला मिहिर' १५ मार्च, १९७० के पृ० ३ पर उसके सम्पादक लिखते हैं—"मैथिली कें अधिकार देअयबाक लक्ष्य केवल मातृभाषाक प्रतिष्ठापना नहि अछि, एहि में आर्थिक समस्या सेहो सन्निविष्ट अछि। लोकसेवा आयोगक प्रतियोगिता परीक्षा में मैथिलीक सन्निवेश सँ जीविकाक अवसर प्राप्त भऽ सकैत अछि। मैथिलीक राजकीय मान्यतासँ वा मैथिलीकें क्षेत्रीय भाषा घोषित भेलासँ कतेक प्रकारेँ मैथिलीभाषी लोकनि कें आर्थिक लाभ भ सकैत छनि।"

जिस प्रकार मात्र एक प्रतिशत अंग्रेजी जानने वालों का शासन सम्पूर्ण भारत के ऊपर है आज भी, वही हाल मैथिली के राजभाषा बन जाने पर बिहार का होगा। अतः अमैथिलों की चिन्ता स्वाभाविक है और परिस्थिति-जन्य भी। आर्थिक विपन्नता से मात्र मैथिली भाषा क्षेत्र ही नहीं बल्कि समस्त बिहार खिन्न है। फिर तथाकथित 'मिथिलांचल' मे अन्य भाषाओं का गला घोंट कर मैथिली कैसे पनप सकती है। बिहार में तो भोजपुरी, मगही, अंगिका, नागपुरी, संताली, बज्जिका अनेक भाषाएँ हैं। क्यों वे सब राजभाषा

बनने का सपना नहीं देख सकतीं ? यदि बिहार में एक मात्र मैथिली को राजभाषा का स्थान दिया जाता है तो इससे दूसरे भाषाभाषियों की स्थिति अंग्रेजी नहीं जानने वालों जैसी नहीं हो जायेगी ? मैथिली में एम. ए. करने के पश्चात् प्रोफेसरी करने वालों की संख्या १०० से ऊपर है पर दूसरी भाषाएँ तो कॉलेज स्तर पर क्या बल्कि स्कूल-स्तर पर भी नहीं पढ़ाई जा रहीं। मैथिली तो पटना आकाशवाणी के दो-दो वर्गो (भाषा और लोकभाषा) में चोरचुकवे रास्ते से घुसी हुई है। जबकि कई जनभाषाओं को आकाशवाणी के लोकभाषा वर्ग में भी स्थान नहीं ? यह सब कितने दिनों तक चलता रहेगा। जनता का आक्रोश भीतर ही भीतर इस कदर पल रहा है कि जिसके फूटने से सर्वनाश की लपटें चारों ओर फैल जायेंगी। अतः समय से पहले आकाशवाणी को लोकभाषा सम्बन्धी अपनी नीतियों का परिष्कार कर लेना चाहिए। और यही बात विश्वविद्यालयों पर भी लागू होती है। मैथिली को अनेक जगहों में जो विशिष्ट अधिकार दिये जा रहे हैं वे किसी अनिष्ट के सूचक हैं।

मैं देख रहा हूँ कि बिहार से हिन्दी को विदा करने की राजनीति का श्रीगणेश कर दिया गया है। बिहार में अन्य भाषा-भाषी हिन्दी माध्यम से पढ़ें और मैथिली-पुत्र स्वभाषा मैथिली माध्यम से।

लोकभाषाओं को हिन्दी के समान मान लेने से क्या बिहार 'मिथिला', भोजपुर (मल्ल राज्य ?) 'वज्जि', अंग, मगध और झारखंड में विभाजित नहीं हो जायेगा ? मेरे कहने का तात्पर्य बिहार में जनपदीय भाषाओं को हिन्दी के समान राजभाषा कदापि नहीं बनाया जाना चाहिए और न ही विश्वविद्यालयों में माध्यम के तौर पर ही स्वीकृति मिलनी चाहिए। इन दोनों कार्यों के लिए हिन्दी सहज रूप से समर्थ है।

मैं यहाँ एक ऐसी घटना का उल्लेख कर रहा हूँ जिससे मैथिली की कुत्सित प्रवृत्ति का भंडाफोड़ होता है। मधुबनी सबडिवीजन में एक गाँव है— 'बैंगरा'। वहाँ के हाईस्कूल में एक मैथिल पंडित लड़कों को फुसला-फुसला कर हिन्दी के बदले मैथिली पढ़ने की दीक्षा देते रहते हैं और लड़के जो जाति के मैथिल होते हैं, हिन्दी नहीं मैथिली ही अपना विषय चुनते हैं। उस क्षेत्र के कई विद्यालयों में मैथिय हेडमास्टरों ने बाजाप्ता मैथिली को एक विषय के रूप में अपने-अपने हाईस्कूलों में रखवाया है। मैथिल लड़के मैथिली पढ़ते हैं पर उस क्षेत्र के वज्जिका भाषी छात्र को हिन्दी ही रखना पड़ता है क्योंकि मैथिली से सरल वे हिन्दी को ही समझते हैं।

वज्जिका-वैशालिका—

प्राचीन काल में 'वज्जि महाजनपद' उत्तर भारत की पाँच बड़ी शक्तियों (अवन्ति, वत्स, कोसल, मगध और वज्जि) में एक था। इतिहास साक्षी है कि मगध सम्राट अजातशत्रु के महामंत्री वर्षकार की कुमंत्रणा से ई० पू० ४८० में वज्जि-गणतंत्र का अंत हो गया था। गुप्तवंश के शासन काल में उसका सारा साम्राज्य भुक्तियों में बँटा हुआ था। सीमान्त पर होने के कारण ही इस क्षेत्र को 'तीरभुक्ति' कहा गया। तीरभुक्ति प्रान्त की राजधानी वैशाली (जो वर्तमान मुजफ्फरपुर से २४ मील पश्चिम स्थित है) नगरी ही थी। 'बनिया बसाढ़' की खुदाई से जो मुहरें, मूर्तियां एवं अन्य सामग्री प्राप्त हैं उनसे स्पष्ट है कि 'तीरभुक्ति' (जिसमें सम्पूर्ण मिथिला प्रदेश समाहित था) का अधिष्ठान वैशाली नगर ही था।

वज्जि और लिच्छवि जहाँ के शासक थे उसी ऐतिहासिक 'वज्जि महा-जनपद' की भाषा आज 'वज्जिका' है। पंडित श्री गणेश चौबे इसे 'वैशालिका' कहना ज्यादा पसन्द करते हैं। यह तो सर्व विदित ही है कि स्व० श्री राहुल सांकृत्यायन ने ही सर्व प्रथम इसका नामकरण किया था।

९-१०-१९४० ई० को श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' (भदई ग्राम निवासी) के नाम लिखे गये अपने पत्र में स्व० श्री राहुल जी ने लिखा था—
"हिन्दी उत्तरी भारत की विशेष तौर से और सारे भारत की साधारण तौर से सांस्कृतिक और साहित्यिक भाषा रहेगी। साथ ही भोजपुरी, मगही, मैथिली, अंगिका, वज्जिका जैसी भाषाएँ अपनी वर्तमान उपेक्षित अवस्था में नहीं रह सकतीं।"

श्री राहुल जी द्वारा ३०-३१ वर्ष पूर्व इन जनपदीय भाषाओं के सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी कितनी सच निकली ? लाख चेष्टाएँ करने पर भी ये भाषाएँ आज उतनी अवहेलित नहीं हैं जितनी कभी थीं। हाँ, इनमें कुछ को समय से पूर्व ही अधिक महत्व प्राप्त हो गया है।

तो वज्जिका पर श्री राहुल जी के अतिरिक्त विस्तार से विचार करने वालों में आते हैं स्व० श्री नलिनविलोचन शर्मा, डॉ० सियाराम तिवारी, डॉ० अजित नारायणसिंह 'तोमर', श्री राधावल्लभ शर्मा, श्री रामरीझन रसूलपुरी, श्रीरंग शाही, श्री रामयदार्थ शर्मा प्रो० निशान्त केतु, डॉ० अजित शुकदेव, डॉ० सीतारामसिंह 'दीन', श्री मुनीश्वर राय 'मुनीश', प्रो० उमाकान्त वर्मा, श्री योगेन्द्र राय, श्री रामजीवन शर्मा 'जीवन', प्रो० विनोदिनी शर्मा, प्रो० जयकान्त शर्मा, प्रो० वैद्यनाथ शर्मा, श्री निर्मल मिलिन्द, श्री चन्दनकृष्ण

'चद्र'। इन पंक्तियों के लेखक ने भी पत्र, लेख आदि लिखकर वज्जिका सम्बन्धी अनेकानेक तथ्यो को प्रकाश मे लाया है। वज्जिका मे ये सब लिखते भी है।

वज्जिका रचनाकारो की एक लम्बी सूची 'कल्पना' (मा०) हैदराबाद के मार्च ६९, अक २०५ में "वज्जिका—कुछ सूत्र : कुछ सन्दर्भ" शीर्षक टिप्पणी मे मैने दी थी।

वज्जिका का मूल क्षेत्र—सम्पूर्ण मुजफ्फरपुर जिला, चम्पारन के (घोडासहन, ढाका, पताही, मधुवन, पिपरा और केसरिया थाने) पूर्वी भाग, दरभगा जिला का पश्चिमी भाग, सारन जिला के परसा, मिर्जापुर, दिघवारा, सोनपुर के थाने एव कुछ और भाग, उत्तर मुंगेर का बछवारा थाना एव नेपाल के रउतहट से महोत्तरी तक के जिले है।

वज्जिका भाषा का उपर्युक्त क्षेत्र ६ हजार वर्ग मील मे फैला हुआ है एवं इसके बोलने वालों की संख्या लगभग डेढ़ करोड़ के आस-पास है।

अब तक अपनी भाषा के प्रति उदासीन वज्जि-वासी हिन्दी मे ही लिखते-पढते रहे है किन्तु अब मैथिली विस्तारवाद को मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए अपनी भाषा-संस्कृति के उद्धार के प्रति सकल्पबद्ध है। अब तक दर्जनो सुन्दर कृतियाँ वज्जिका में प्रकाशित हो चुकी है। कभी श्री रंगशाही मुजफ्फर पुर से 'वज्जिका' (मासिक) का प्रकाशन करते थे। इन दिनो उसी मुजफ्फर पुर से श्री चन्द्रमोहन 'वज्जी भारती' (सकलन पोथी अनियत कालिक), श्री देवेन्द्र राकेश 'समाद' (वज्जिका साप्ताहिक) निकालते है। इधर जमशेदपुर से श्री निर्मल मिलिन्द ने 'सनेस' (त्रैमासिक) निकालना शुरू किया है एवं इन पक्तियो के लेखक ने 'वज्जिका साहित्य' नाम से त्रैमासिक शोध संकलन 'वज्जिका संस्थान जबाही' के तत्वावधान मे प्रकाशित करना शुरू किया है। 'वज्जिका मे प्रकाशित साहित्य की जानकारी के लिए 'उत्तर बिहार' (साप्ता० पटना) के १७ अगस्त ७०, अंक ३१-३२ का अवलोकन करना चाहिए।

वज्जिका अपने भीतर अनन्त शक्ति लिए अवतरित हुई है एवं इससे वैशाली की धरती का चप्पा-चप्पा सुवासित होगा। इसके रगो मे गणतन्त्र का रुधिर वह रहा है और सम्पूर्ण वज्जिकांचल गंडकी-कमला उपत्यका की हरियाली से भर-पूर है।

अंगिका-अंगुत्तरापी—

अब मैं आता हूँ अग-जनपद की भाषा अंगिका पर। डॉ० ग्रियर्सन के शाप का प्रायश्चित आज अंगिका भी कर रही है। अपनी भाषा के सम्बन्ध

में अंगिका के समर्थ विद्वान् पंडित श्री परमानन्द पाण्डेय लिखते हैं—"अंगिका अंग-जनपद अर्थात् वर्तमान भागलपुर प्रमण्डल की लोकभाषा है। मालदह जिले के कुछ भागों में भी अंगिका बोली जाती है.......... डॉ० ग्रियर्सन ने प्रमादवश भागलपुर प्रमण्डल की लोकभाषा को 'छिकाछिकी' लिखा है। परन्तु यह नाम कृत्रिम है। अंगिका को 'छिकाछिकी' कहना भोजपुरी को 'बाटे-बाड़े' कहना जैसा भ्रामक है। वास्तव में, आंगी (अष्टाध्यायी की काशिका वृत्ति के अनुसार) का विकसित नाम अंगभाषा हुआ, किन्तु महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इसको अंगिका कहा और अब यही नाम प्रचलित हो गया है।"

अंगिका के एक दूसरे विद्वान् श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' के मतानुसार अंगिका बिहार के भागलपुर, मुंगेर, पूर्णियाँ, सहर्षा और संथाल परगना क्षेत्र की भाषा है।

अंगिका के विद्वान् अपनी भाषा की श्रीवृद्धि के लिए सतत कार्यरत हैं। अब तक कितनी ही कृतियाँ (सातफूल, किसान के जगाव, सर्वोदय समाज, अंगिका संस्कार गीत, अंगिका के फैकड़े एवं लोरियाँ, अंगिकांजलि) इसमें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन दिनों 'अंग माधुरी' (मासिक) श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' एवं 'अंगिका' (शोध त्रैमासिक) का पंडित श्री परमानन्द पाण्डेय के सम्पादकत्व में प्रकाशन हो रहा है।

अंगिका के ये स्तम्भ—डॉ० माहेश्वरी सिंह 'महेश', डॉ० कामेश्वर शर्मा, डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, डॉ० रामधारीसिंह दिनकर, श्री मधुकर गंगाधर, डॉ० कुमार विमल, डॉ० वचनदेव कुमार, श्री परमानन्द पाण्डेय, श्री नरेश पाण्डेय चकोर, डॉ० जनार्दन मिश्र, श्री जगदीश मिश्र, श्री सुरेन्द्र मिश्र, भुवनेश्वरसिंह 'भुवन', श्री अनूपलाल मंडल, श्री फणीश्वरनाथ रेणु, श्री श्रीरजन सूरिदेव, डॉ० ब्रह्मदेव मंडल, श्री हमकुमार तिवारी, पं० अयोध्या प्र० झा, श्री परमेश्वर गुप्त, श्री मोहन मिश्र 'मधुप', डॉ० अभयसिंह, श्रीमहावीरदास एम० पी०, श्री सत्येन्द्र नारायण अग्रवाल आदि किसी भी भाषा के लिए गौरव हैं।

भले ही आज अंगिका को किसी महाराज का राजाश्रय प्राप्त न हो किन्तु इसके हजारों-हजार स्नेही पुत्रों का बल ही इसे विकास के मंजिल तक पहुँचायेगा।

यहाँ स्मरणीय है कि कुछ विद्वान् सहरसा जिला और बेगूसराय अनु-मंडल की जनभाषा को 'अंगुत्तरापी' नाम से स्वीकार करते हैं। हालाँकि वह अंगिका ही है। जैसे वज्जिका को कुछ विद्वानों ने 'हाजीपुरी' कहकर प्रचारित

करना चाहा था; जो महत्वहीन रहा। डॉ० कामेश्वर शर्मा ने अंगिका को 'भागलपुरी' नाम से अभिहित किया था पर डॉ० माहेश्वरीसिंह 'महेश' अंगिका नाम ही स्वीकार करते है।

नागपुरी-सदानी—

नागपुरी भाषा की स्वतन्त्र सत्ता की ओर जनमानस का ध्यान सर्व प्रथम प्रो० केसरीकुमार ने ही खीचा था जब उनका निबन्ध 'नागपुरी भाषा और साहित्य' शीर्षक बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित हुआ। श्री विसेश्वर प्रसाद केशरी के मतानुसार—'नागपुरी मुख्यत: राँची जिले की बोली है, किन्तु इसका क्षेत्र न केवल छोटा नागपुर के शेष जिलो, अपितु मध्य प्रदेश, उड़ीसा एवं पश्चिमी बंगाल के भी कुछ भागों तक विस्तृत है।'

छोटा नागपुर कमिश्नरी के सभी जिलो, उड़ीसा के गंगापुर, बोनाइ, बामडा, क्योझर और मयूरभंज में एवं मध्यप्रदेश के जसपुर, सरगुजा आदि मे भी बोली जाती है। सदानी, सदरी, गवली, गँवारी, नगपुरिया आदि नाम भी नागपुरी के ही है।

नागपुरी-भाषा-साहित्य के लिए कुछ ईसाई पादरियो का भी योगदान कम नही है। उनके नाम है—खे० ह्विटली, बुकाउट पीटर, शान्ति नवरंगी आदि। जिनकी प्रतिभा और शक्ति का अवदान नागपुरी भाषा-साहित्य को मिल रहा है उनमे प्रमुख है—श्री योगेन्द्रनाथ तिवारी, श्री राधाकृष्ण, श्री सुशीलकुमार, श्री प्रफुल्लकुमार राय, प्रो० केसरीकुमार, प्रो० श्रवणकुमार गोस्वामी, प्रो० विसेश्वर प्र० केशरी, श्री साहनी उपेन्द्रपाल 'नहन', श्रीलक्ष्मण गोप, श्रीनिवास पानुरी, श्री विश्वनाथ खानी, श्री दुर्गानाथ राय, श्री बलदेव साहु, श्री नईमुद्दीन मिरदाहा, श्री बटेश्वर साहु आदि।

राँची मे नागपुरी-भाषा-परिषद् का गठन पहले ही किया जा चुका है। नागपुरी पत्रिका का भी प्रकाशन होता है। 'बडाइक' पत्रिका के माध्यम से श्री धनीराम बखशी ने नागपुरी की बड़ी सेवा की एवं आदिवासी (राँची) मे तो नागपुरी की रचनाएँ छपती ही रहती है। श्री सुशीलकुमार जी 'आदिवासी' के माध्यम से मात्र नागपुरी ही नही दक्षिण बिहार अन्य जनभाषाओ की भी वही सेवा कर रहे है। राँची आकाशवाणी और राँची विश्वविद्यालयो मे भी इसे स्थान प्राप्त है। इसके साहित्यकार सारी शक्ति बटोर कर इसकी विधाओ को पुष्ट कर रहे हैं।

मल्लिका (भोजपुरी)—

भोजपुरी के सम्बन्ध में पंडित श्री गणेश चौबे एक स्थान में लिखते हैं—"भोजपुरी भाषा का नामकरण शाहाबाद जिले के भोजपुर नामक गाँव के ऊपर हुआ है। मालवा के परमार राजपूतों ने इस क्षेत्र पर अपनी विजय के पश्चात् अपने पूर्वज राजा भोज के नाम पर इसे बसाया था। भाषा के अर्थ में 'भोजपुरिया' का उल्लेख सर्व प्रथम १७८९ ई० में पाया जाता है, जो काशी के राजा चेतसिंह के सिपाहियों की बोली के लिए आया है। सन् १८६८ ई०. में जॉन बीम ने भोजपुरी को हिन्दी की एक बोली बतलाते हुए अपना एक निबन्ध प्रकाशित कराया था। तब से लगभग सन् १६४० ई० तक इस भाषा का भोजपुरी नाम थोड़ी विद्वानों तक ही सीमित रहा। सन् १६४२ ई० में राहुल जी ने .... भोजपुरी भाषा को प्राचीन जनपदों के आधार पर मल्लिका और काशिका दो भागों में विभाजित किया था।..........भोजपुरी एक बड़े भू-भाग की मातृभाषा है जिसका विस्तार बिहार और उत्तर प्रदेश के सोलह जिलों में, मध्य प्रदेश के सरगुजा एवं नेपाल तराई के चार जिलों में है।"

इस प्रकार भोजपुरी दो वर्गों में बँट जाती है। उत्तर प्रदेश स्थित भोजपुरी को राहुल जी ने 'काशिका' कहना अधिक उपयुक्त समझा एवं बिहार स्थित भोजपुरी को 'मल्लिका'। छपरा का यह भाग कभी मल्ल गणराज्य के अन्तर्गत था। इस क्षेत्र की जनभाषा पर अपना विचार प्रकट करते हुए डॉ० शुकदेव सिंह लिखते हैं—"'छपरहिया' या 'मधेसी' भोजपुरी में भी कुछ ध्वनि सम्बन्धी विशेषतायें पायी जाती हैं।" इस प्रकार भोजपुरी के उपर्युक्त दोनों विद्वानों की दृष्टि में बिहार और उत्तर प्रदेश में विभाजित भोजपुरी क्षेत्र भाषा सम्बन्धी अपनी विभिन्नतायें अब भी बनाये हुए हैं।

मुझे इस लेख में बिहार स्थित भोजपुरी क्षेत्र से ही तात्पर्य है। सारन, शाहाबाद में तो भोजपुरी बोली ही जाती है इसके अतिरिक्त चम्पारन के पश्चिमी भाग में, चम्पारन से सटे नेपाल की तराई वाले कुछ जिलों में एवं छोटानागपुर कमिश्नरी के कुछ जिलों में भी बोली जाती है।

मेरी जानकारी में मैथिली के बाद बिहार में भोजपुरी ही ऐसी जन-भाषा है जो सर्व विध सम्पन्न है। भले ही मैथिली चोर दरवाजे से अनेक स्थानों में प्रवेश कर गयी हो किन्तु भोजपुरी की शक्ति पिछले ३०-३१ वर्षों में इतनी बढ़ गयी है कि अन्य जनभाषाओं के लिए यह स्थिति स्पृहणीय है। कविता, कहानी, लेख, संस्मरण, रिपोर्ताज, उपन्यास, नाटक, एकांकी, यात्रा-

साहित्य, रेखाचित्र, डायरी, चिट्ठी-पत्री आदि विधाओं में यथेष्ट रचनाएँ उपलब्ध है। आलोचना, अनुसंधान, व्याकरण, कोश आदि क्षेत्रों में साहित्यकार सृजनरत हैं।

कभी भोजपुरी (मा०, सम्पादक—श्री रघुवंश नारायण सिंह, आरा) 'भोजपुरी' (त्रै०, सम्पा० श्री महेन्द्र शास्त्री, पटना), 'गाँव-घर' (पाक्षिक, श्रीभुवनेश्वर प्र० श्रीवास्तव 'भानु', आरा) 'भोजपुरी समाचार' (स० जयदारी साहा०, पटना), 'माटी के बोली' (मासिक, स० श्री सतीश्वर सहाय वर्मा, श्री विश्वनाथ प्रसाद, छपरा), 'भोजपुरी साहित्य' (मा०, स० डॉ० जितराम पाठक, आरा) आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन विहार की धरती से ही हुआ था और आज अँजोर (त्रै०, स० श्री पाण्डेय नर्मदेश्वर सहाय) का प्रकाशन पटने से एवं 'लुकार' (अनियत कालिक, जमशेदपुर भोजपुरी साहित्य परिषद्) का प्रकाशन जमशेदपुर से भी अव भी होता है जिसके प्रत्येक अङ्क सरक्षणीय होते हैं। 'लुकार' के कई अङ्क तो शाहावाद के हाईस्कूल में १०वी-११वीं कक्षाओं मे 'भोजपुरी' रखने वाले छात्रों को पढ़ाये जाते है और 'अँजोर' को तो रूस, अमेरिका, मारिशस आदि दूसरे देशो मे वहाँ के विद्वान माँग कर पढते हैं। रूसी-भाषाविद् श्री चेर्तिशोव ने भी 'अँजोर' के कितने ही अङ्क मँगाये।

भोजपुरी भाषा साहित्य की श्रीवृद्धि मे जिन्होने अपना रक्त सुखाया है उनमे प्रमुख हैं—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, डॉ० इन्द्रदेव, डॉ० श्रीधर मिश्र, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, डॉ० सत्यदेव ओझा, डॉ० स्वर्ण किरण, डॉ० बच्चन पाठक सलिल, प्रो० चन्द्रभूषण सिन्हा, डॉ० कमला प्र० मिश्र 'विप्र', डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', स्व० श्री दुर्गाशकर सिह 'नाथ' श्री गणेश चौबे, श्री वैजनाथसिह 'विनोद', डॉ० उदयनारायण तिवारी, महा-पडित राहुल साकृत्यायन, डॉ० शुकदेव सिह, स्व० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, श्री रसिकविहारी ओझा 'निर्भीक', श्री गोरक्षहरि, डॉ० रामनाथ पाठक 'प्रणयी', श्री रामविचार पाण्डेय, डॉ० जितराम पाठक, श्री महेन्द्र शास्त्री, श्री भिखारी ठाकुर, श्री रघुवीर नारायण, श्री मनोरजन प्र० सिह, श्री ठाकुर विश्रामसिह, श्री पाण्डेय नर्मदेश्वर सहाय श्री रामेश्वर सिह 'काश्यप', श्री शिव प्र० मिश्र 'रुद्र', श्री मधुकरसिह, श्री विमलानन्द सरस्वती, श्री विवेकी राय, श्री रास विहारीराय शर्मा, श्री परमेश्वर दुवे 'शाहावादी', श्री पान्डेय कपिल, श्री अविनाशचन्द्र विद्यार्थी, प्रो० उमाकान्त वर्मा, श्री मदनमोहन सिन्हा 'मनुज', श्री विजेन्द्र अनिल, श्री पाण्डेय आशुतोष, सिपाहीसिह श्रीमन्त, श्रीरामवृक्षराम

विधुर, श्री वंशीधर प्र० वर्मा 'सुधाकर', श्री मृगेन्द्रप्रताप 'श्रमिक', श्री रामचन्द्र प्र० सिंह 'निठुर', श्री रामसेवक विकल, श्री कान्हजी सिंह 'तोमर', श्री कन्हैयासिंह 'सदय' श्री गंगाप्र० साहु, श्री शारदाचरण, महाकवि श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', श्री कलक्टरसिंह 'केसरी', पाण्डेय चन्द्रविनोद।

आज से २४ वर्ष पूर्व जिस भाषा के सम्बन्ध में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने कहा था—"हमनी के बोली में पोथी न लिखायल किछु छोटकी-छोटकी पोथुल्ली छपयिवो कपील, त एहे दू चार गो सेखा घुमनी। ...... हम न कहव कि हमनी के बोली में एगो 'पतिरिका' चाहे वकवार निकरे के चाहीं, जवना में लोग के दूसरी वात समुझावल जाय, अ नपकी घुरनकी कवितो छापल जाय।" पर आज इसी 'बोली' में इतना साहित्य प्रकाशित हुआ है कि देखकर आश्चर्य होता है।

हाँ, छः करोड़ भोजपुरी बोलने वालों की भाषा आज न साहित्य अकादमी में और न ही संविधान की अष्टम अनुसूची मे स्थान प्राप्त कर सकी है यह निश्चय ही हम सबों के लिये ग्लानि का विषय है।

मगही (मागधी)—

मगही विहार की दूसरी जनभाषा है जिसे साहित्य अकादमी की मान्यता अभी हाल ही में मिली है। मगही 'मागधी' का अपभ्रंश रूप है। विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि वैदिक साहित्य में जिस 'कीकट' देश का वर्णन मिलता है वह मगध ही है। मगही पर विचार करने के क्रम मे राहुल जी कहते हैं—चौथी शताब्दी मे ही मगही का अपना क्षेत्र सरयू से कोशी तथा कर्मनाशा से कलिंग तक था। समय पाकर फिर भाषा मे परिवर्तन होता गया। मागधी भाषा-भाषी आस-पास के प्रदेश में जाकर वस गये। इस प्रकार आधुनिक उड़िया, बँगला, आसामी, मैथिली, भोजपुरी और मगही प्राचीन मागधी के ही रूप हैं।"

मगही मुख्यतः वर्तमान गया और पटना जिलों की भाषा है। वैसे कुछ विद्वान मगही क्षेत्र को विस्तार देते हुए हजारीबाग, पलामू, मुंगेर, भागलपुर, राँची, धनबाद, मयूरभज (उडीसा), सरायकेला, खरसावाँ, वामरा (म० प्र०), मालदा (बंगाल) के कुछ हिस्से भी समाहित कर लेते है। मालदा की 'खोण्टाली' और मयूरभंज एवं वामरा की 'कुड़माली' को भी मगही के अन्तर्गत ही रखा है।

अशोक के शिला लेखो, पालि-प्राकृत साहित्य, संस्कृत साहित्य मे

मगही का प्राचीन रूप आज भी उपलब्ध है। किन्तु कुछ मैथिली विद्वान अब भी मगही को मैथिली सिद्ध करने पर तुले हुए है। उनके प्रलाप समाचार पत्रों में समय-समय पर आते ही रहते है।

मागधी प्रसूत भाषाओं पर डॉ० सुनीतकुमार चटर्जी विचार करते हुए मागधी को तीन वर्गों मे बाँटते हैं जो विभाजन अपुष्ट ही रह गया है क्योंकि उसमे कई जनभापाओं का उल्लेख छोड़ दिया गया है। उस वर्गीकरण को इस रूप में रखा जा सकता है—

पूर्वी मागधी	**केन्द्रीय मागधी**	**पश्चिमी मागधी**
|	|	|
बँगला	मगही	भोजपुरी
उड़िया असमिया	मैथिली अंगिका	बज्जिका नागपुरी

और इस प्रकार मागधी प्रसूत सभी भाषाऐं उल्लिखित हो जाती है।

मगही का आधुनिक साहित्य उतना सम्पन्न नही किन्तु प्राचीन साहित्य भरपूर है। इधर इसके आधुनिक साहित्य का भी विस्तार हुआ है। नाटक, उपन्यास, कविता, कहानी, निबन्ध, शोधकार्य आदि क्षेत्रो मे इधर काफी प्रगति हुई है। 'मागधी', 'तरुण तपस्वी', 'मगही', 'महान मगध', 'विहान', 'सुजाता', 'भोर' आदि पत्र-पत्रिकाओ की मगही-सेवा ऐतिहासिक है। अन्तिम तीन का प्रकाशन तो अव भी होता है।

यह कैसा सयोग है कि पटना विश्वविद्यालय या मगध विश्वविद्यालय में 'मगही' को अब भी स्थान नही है जवकि वही 'मैथिली' पिछले अनेक वर्षो से मालकिन वनी बैठी है। देर से ही सही, मगही भाषियो ने अपनी भाषा के लिए कार्य करना शुरू कर दिया है। वह दिन दूर नही जव मगही स्वय अपने घर की मालकिन वनेगी।

मगही भाषा साहित्य के लिए जिनका कार्य स्तुत्य है वे है—सर्वश्री डॉ० श्रीकान्त शास्त्री, ठाकुर रामवालक सिंह, कृष्णदेव प्रसाद, रमाशकर शास्त्री, रामवृक्ष सिह 'दिव्य', गोपाल मिश्र 'केसरी', रामप्रसाद पुण्डरीक, रामसिहासन विद्यार्थी, रामनरेश पाठक, स्व० सुरेश दुबे 'सरस', योगेश, शेषानन्द 'मधुकर' प्रो० राम प्र० सिह, प्रो० रामनन्दन, वावूलाल 'मधुकर' डॉ० सम्पत्ति आर्याणी, डॉ० शिवनन्दन प्रसाद, डॉ० सरयू प्रसाद, प्रो० कपिल-देव सिंह, राजेन्द्रकुमार 'यौधेय' डॉ० नागेश्वर शर्मा, डॉ० त्रिभुवन ओझा, डॉ० कल्याणेश्वरी वर्मा, डॉ० लक्ष्मण प्र० सिन्हा।

मगही का क्षेत्र ६ हजार वर्गमील से ऊपर में फैला हुआ है।

मैथिली-दरभङ्गिया—

लेख के प्रारम्भ मे मैंने मैथिली विस्तारवाद पर ही लिखा है। यहाँ मैथिली भाषा-साहित्य सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। प्रो० प्रफुल्लकुमार 'मौन' लिखते है —"मुझे हर भाषाओं के प्रति श्रद्धा है तथा बोलियों के प्रति ममता। मैं चाहता हूँ कि सभी बोलियों का अस्तित्व रहे और साहित्य साधना की क्षमता को अक्षर-जगत के सामने प्रस्तुत किया जाय। .... मैथिली एक जनभाषा है जिसमे हजार वर्षो से निरन्तर साहित्य-साधना होती चली आरही है तथा जो आज भी अन्यान्य भारतीय भाषाओं की तरह सर्जनात्मक दृष्टि से सक्षम एवं जीवन्त है। ... ... लेकिन जातीयता, क्षेत्रीयता आदि की संकीर्ण भावनाओं ने ही अब तक मैथिली-भाषा और साहित्य के उचित विकास एवं मूल्यांकन का मार्ग अवरुद्ध कर रखा है। नहीं तो मैथिली को भी वही राजकीय सम्मान प्राप्त होता जो सिंधी को अभी-अभी मिल चुका है।"

मैथिली के विद्वान् जितने बड़े क्षेत्र को 'मिथिलांचल' के अन्तर्गत मानते हैं दरअसल मैथिली उतने बड़े क्षेत्र मे बोली नही जाती। मैथिली विरोध का एक मात्र कारण यही है। दूसरी बात कि 'जातीयता' और 'क्षेत्रीयता' वाली भावना से इसका अहित ही हुआ है। क्यों नही सूर की व्रजभाषा को, तुलसी की अवधी को, कबीर की भोजपुरी को साहित्य अकादमी मे या संविधान की अष्टम अनुसूची मे स्थान मिला है? फिर मैथिली के लिए इतना हगामा क्यो? विद्यापति को हिन्दी से अलग करना क्या संकीर्णता का प्रतीक नही है! विद्यापति ने तो अपनी भाषा को 'देसिल बअना' लिखा था, 'मैथिली' नही। मैथिली का पहला प्रयोग भाषा के अर्थ मे १८०१ ई० मे कार्लब्रुक नामक विद्वान ने किया था। इससे पूर्व बेलीगत्ती ने 'तिरहूतियन' एव लोचन कवि ने अपनी पुस्तक 'राजतरंगिनी' मे 'मिथिला-अपभ्रंश' का उल्लेख किया था। किन्तु 'मैथिली' शब्द का उल्लेख पूर्वकाल मे कभी नहीं हुआ। 'मिथिला' भी देश के अर्थ मे नही, बल्कि 'नगरी' या 'पुरी' के अर्थ मे ही प्रयुक्त होती रही। 'तीरभुक्ति' तो गुप्तकाल की देन है जिसमें मात्र 'मिथिला' ही नही 'वज्जि महाजनपद' का सम्पूर्ण भाग भी सन्निहित था।

वर्तमान मे उत्तरी बिहार के देहाती इलाकों में अमैथिल मैथिली बोली के लिए 'दरभङ्गिया' का ही प्रयोग करते हैं और मैथिलों के लिए 'तिरहुतिया

वाभन' शब्द का। किन्तु दरभंगा जिला मे भी अमैथिलों की भाषा वज्जिका ही है।

'तीरभुक्ति' जिसकी राजधानी वैशाली में थी जिस तीरभुक्ति में राहुल जी के अनुसार 'गंडक; गंगा, कोसी और हिमालय से घिरा प्रदेश शामिल था' आज उसी क्षेत्र पर अपना दावा श्री राधाकृष्ण चौधरी इस प्रकार बतलाते है—"मैथिली के क्षेत्र विस्तार में मिथिला की सीमा को ध्यान मे रखना होगा—उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे गंगा, पश्चिम मे गंडक और पूरब मे कोशी। गंडक और महानन्दा के बीच के क्षेत्र मे बोली जाने वाली भाषा मैथिली थी और है।"

इतने बड़े क्षेत्र मे कई जनभाषाएँ बोली जाती है और उन सबको यहाँ सुरसा राक्षसी के समान मैथिली के उदर मे कर दिया गया है। मात्र दरभंगा जिला के मधुबनी सबडिवीजन की भाषा को इतने बड़े क्षेत्र की भाषा सिद्ध करना बुद्धि चातुर्य के अतिरिक्त और कुछ नही है।

डॉ० शुकदेवसिंह अपनी पुस्तक 'भोजपुरी और हिन्दी' के पृ० 'घ' (परिशिष्ट १) पर लिखते है—"इस प्रकार कुल मैथिली-भाषी १३० लाख के ऊपर हो जाते है। स्पष्ट ही इस सख्या मे अनेक उपबोलियों के वक्ताओ की भी सख्या जोड़ ली गई है जिसे मैथिली-भाषी जाग्रत विद्वानों की प्रतिभा का परिणाम मान लेने के सिवा किसी अन्य वितर्क का अवसर नही है।" इन्होने ही एक अन्य स्थान पर लिखा है—"शायद वह क्षण अब दूर नही, जब दरभगा की बोली मात्र को ही मैथिली कहने का सत्य उद्घाटित तथा स्वीकृत हो जाय।" (पृ० 'ग')।

श्री राधाकृष्ण चौधरी के मतानुसार मैथिली बोलने वालों की संख्या वर्तमान समय मे 'साढ़े तीन करोड़' है जबकि सही स्थिति यह है कि एक करोड़ से अधिक मैथिली भाषी है ही नहीं। आज जो मैथिली के विद्वानो, समर्थकों की स्थिति है उस पर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए डॉ० वेचन लिखते हैं—"यह दुर्भाग्य की बात है कि आज ज्यादातर मैथिली विद्वान और रचनाकार साहित्य रचना से अधिक मैथिली के जनगणना मे मातृभाषा लिखाने, अकादमी में स्थान दिलाने और संविधान में स्वीकृत कराने की चिन्ता ज्यादा करते है।"

और यह चिन्ता आज की ही नही पिछले कई वर्षों की है। साहित्य अकादमी की ओर से मैथिली की जिस कृति (पत्रहीन नग्न गाछ) पर श्री नागार्जुन जी को पुरस्कार मिला वही श्री नागार्जुन ने 'मैथिली और हिन्दी'

नाम से एक लेख १९५४ ई० ('राष्ट्रवाणी') डॉ० रामविलास शर्मा के लेख ('पाटल' जनवरी '५४) के प्रतिवाद में लिखा था उसमें इस मैथिली-पत्र का आलाप देखिए—"कल की हमारी राज्य-भाषा क्या होगी, इसका फैसला मिथिला और भोजपुर के पृथ्वी-पुत्र करेंगे, मगध के किसान इसका फैसला करेंगे, संथाल, मुंडा, ओराँव आदि आदिवासी।

सबसे अधिक चिन्ता तो —'हिन्दी की सहोदरा बोलियाँ—कुछ हद तक सहोदरा भाषाएँ—बिलकुल हारकर लुप्तप्रायः हो जाएँगी'—इस वाक्य के लेखक डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी को है जिन्हें हिन्दी के सर्वत्र प्रचलित होने की पीड़ा सता रही है। 'भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी' के पृ० १५८ पर उन्होंने १९५४ में बहुत पूर्व ही लिखा था—"पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के अधिकांश निवासियों ने भी हिन्दी को अपना लिया है, यद्यपि उनकी मातृ-भाषाएँ हिन्दी से बहुत भिन्न हैं। अब इन मातृ-भाषाओं का व्यवहार केवल घर में ही होता है। (इधर में कुछ वर्ष पूर्व उत्तर बिहार के करीब एक करोड़ मैथिली-भाषियों ने अपनी मातृभाषा को उक्त प्रदेश की मान्य भाषा स्वीकृत करवाने तथा उसे पटना विश्वविद्यालय के अन्तर्गत स्कूलों एवं कॉलिजों में उपयुक्त स्थान दिलवाने के लिए आन्दोलन शुरू किया था; कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने तो उसे मान्य भी कर लिया।) ·· ····· मिथिला में मैथिली का साहित्यिक कार्यों के लिए उपयोग होता था।" यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ही प्रथम सज्जन हैं जिनके अथक प्रयत्नों से मैथिली सर्व प्रथम कलकत्ता विश्वविद्यालय में पीछे पटना विश्वविद्यालय में एवं अब साहित्य अकादमी में स्थान प्राप्त कर चुकी है।

डॉ बेचन लिखते हैं—"बंगला के विद्वान महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, पी. सी. बागची, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, नगेन्द्रनाथ गुप्त, खगेन्द्र-नाथ मित्र बिमानबिहारी मजुमदार आदि ने आधुनिक मैथिली के विकास में अहर्निश योगदान दिये।" इनके अतिरिक्त वे इस कटु सत्य को भी स्वीकार करते हैं—"आज मिथिला के हाटों-बाजारों में हिन्दी चल रही है भले ही वह मैथिली मिश्रित टूटी-फूटी हिन्दी ही क्यों न हो। ········· उपन्यास, कहानी और निबन्ध किसी भाषा की समृद्धि के परिचायक होते हैं। मैथिली में दस श्रेष्ठ उपन्यास, दस श्रेष्ठ कहानियाँ और दस श्रेष्ठ निबन्ध भी नहीं है। ······ सन् १९३० के बाद, विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद इसके साहित्य की श्रीवृद्धि और पुनरुत्थान का नारा बड़े जोरों से लगाया जाने लगा।"

किन्तु मैथिली के ही विद्वान् श्री राधाकृष्ण चौधरी स्वीकार करते हैं—

"मैथिली में सभी प्रकार के साहित्य उपलब्ध हैं। महाकाव्य, खण्डकाव्य, चम्पू, गद्य, पद्य, कथा, आलोचना, नाटक, विविध साहित्य आदि प्राचीन काल से अब तक लिखे जाते रहे हैं। .... मैथिली की सर्वोत्कृष्ट देन है गीति-साहित्य जो उमापति (१४वीं शताब्दी) से लेकर अद्यावधि विराजमान है। अनुवाद के अतिरिक्त मैथिली में उपन्यास, कथा-साहित्य, संस्मरण, यात्रा, दार्शनिक चिन्तन के सम्बन्ध में नई रचनायें सामने आ रही हैं। .... ऐसी कोई भी विधा नहीं है जिसमें कि मैथिली में रचना न होती हो। साहित्य अकादमी से मान्यता प्राप्त हो जाने (१९६७ ई०) के बाद मैथिली में रचना की बाढ़ आगई है। यद्यपि प्रकाशन की कोई भी अच्छी व्यवस्था मैथिली में नहीं है। जो पत्र-पत्रिकायें हैं वे भी व्यक्तिविशेष या गुण विशेष के अधीन हैं और अच्छे लोगों का उससे बहुत कम सम्पर्क है। कुछ लोगों के लिए मैथिली जीविकोपार्जन का साधन है, कुछ लोगों के लिए राजनीति का और कुछ लोगों के लिए परीक्षोपयोगी बातों का। मैथिली पाठक का स्तर भी अभी अन्य भाषा की अपेक्षा नीचे है। अतः कोई अच्छी या गंभीर चीज न तो लिखी जा सकती है और यदि लिखी गई है तो अप्रकाशित पड़ी है। मैथिली के कर्णधारों के यहाँ मैथिली सबसे कम बोली और पढ़ी जाती है तथा सबसे कम मैथिली की पुस्तक खरीदी जाती है।"

मैं पहले ही उद्धरण देकर बतला चुका हूँ कि मैथिली की समस्या मात्र साहित्य-संस्कृति की समस्या नहीं है। वह निःसन्देह आर्थिक समस्या से जुड़ी हुई है। इसीलए कही 'जीविकोपार्जन', तो कहीं 'राजनीति', तो कहीं 'शिक्षा माध्यम, परीक्षा और शोध-सर्वेक्षण से अनायास जुड़ गई है।

मैथिली का लोकसाहित्य भी सम्पन्न बतलाया गया है और इस क्षेत्र मे काम करने वाले प्रमुख विद्वान हैं—सर्वश्री रामइकबालसिंह 'राकेश' डॉ० तेजनारायण लाल, डॉ० ब्रजकिशोर वर्मा, डॉ० अणिमासिंह, प्रो० राधाकृष्ण चौधरी, प्रो० प्रफुल्लकुमारसिंह, डॉ० पूर्णानन्द दास, कालीकुमार दास, ब्रजेश्वर मल्लिक, ललितेश्वर मल्लिक, जीवानन्द ठाकुर, बलदेव मिश्र, ऋद्धिनाथ झा, नन्दीपति दास आदि।

मैथिली गद्य साहित्य को सम्पन्न करने वालों में मुख्य हैं सर्वश्री गंगानाथ झा, अमरनाथ झा, पंडित बलदेव मिश्र, रामनाथ झा, परमेश्वर झा, स्व. राजकमल चौधरी, यशोधर झा, नरेन्द्रनाथ दास, भोलानाल दास, उपेन्द्र-नाथ व्यास, स्व. अच्युतानन्द दत्त, डॉ. जयकान्त मिश्र, कृष्णकान्त मिश्र, शैलेन्द्र मोहन झा अमर, किरण, शेखर, व्यथित, जयधारी सिंह, बुद्धिधारी

सिंह, सुभद्र झा, पं. राजेश्वर झा, बबुआ जी मिश्र, जनार्दन झा 'जनसीदन', म. म. मुकुन्द झा, बख्शी, डा. उमेश मिश्र, पं. नगेन्द्रकुमार, प्रो. हरिमोहन झा, रामबिहारीलाल दास, कुमार गंगानन्द सिंह आदि।

मैथिली कविता के क्षेत्र में श्रीयात्री (हिन्दी के नागार्जुन), सुमन, अमर, मधुप, किरण, किसुन, राजकमल, विभाकर, सोमदेव, मौन, मणिपद्म, जीवकान्त, प्रवासी, किसलय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हंसराज, इन्द्रकान्त, लक्ष्मीकान्त इन्दु, पं. राजेश्वर झा, कीर्तिनारायण मिश्र, वीरेन्द्र मल्लिक, मायानन्द, धीरेन्द्र आदि नाम स्मरणीय हैं।

मैथिली उपन्यास और कथा साहित्य को जिनकी देन महत्वपूर्ण है उनके नाम हैं—सर्वश्री वैद्यनाथ मिश्र, 'यात्री', हरिमोहन झा, डॉ. ब्रजकिशोर वर्मा, उमानाथ झा योगानन्द झा, उपेन्द्रनाथ झा व्यास, राजकमल, मायानन्द, जीवकान्त, प्रभासकुमार चौधरी रूपकान्त ठाकुर, किसुन, अमर, विनोद, जयनारायण मल्लिक, रमानन्द रेणु, राजमोहन झा, गणेश गुंजन, दिनेश्वरलाल 'आनन्द', सुभाषचन्द्र यादव, कमल आनन्द, छत्रानन्द, महाप्रकाश, गौरीकान्त चौधरी आदि।

मैथिली पत्रकारिता की शुरुआत जयपुर से होती है। गढ़ा-माने चौक निवासी मैथिल विद्वान पंडित श्री मधुसूदन झा ने ही जयपुर से १९०५ ई. 'मैथिल हितसाधन' नाम से मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। बाद में काशी से मिथिलामोद (मासिक), मिथिला मिहिर (मासिक) दरभंगा से, अजमेर से 'मैथिल प्रभा', अलीगढ़ से 'मैथिल प्रभाकर', श्री मैथिली', 'मिथिला' (१९२९ से ३१ ई. तक), भारती (१९३७ ई.), विभूति (३७-३८ ई.), मैथिल साहित्य पत्र (१९३७–३९ ई.), मिथिला ज्योति (४८-४९ ई.), मिथिला-सेवक (कलकत्ता) आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। पर ये सब समय से पूर्व ही कालकवलित हो गई।

इनके अतिरिक्त 'मिथिला दर्शन', 'स्वदेश', 'मिथिला दूत', 'चौपाड़ि', 'इजोत', 'किरण', अभिव्यंजना', 'आखर', 'वटुक', 'सोना माटि' आदि का प्रकाशन भी हुआ। वर्ष १९७० में 'मैथिली प्रकाश' (वै०) 'वागमती', 'मिथिला भूमि' 'स्वयंभू' 'सन्निपात' आदि का प्रकाशन हुआ है। पर इनकी स्थिति दयनीय है।

'मिथिला मिहिर' (साप्ताहिक, पटना) ही एक ऐसा पत्र है जिसने १३ सितम्बर '७० को अपनी जिन्दगी के १० वर्ष पूरे किये हैं। इसके पीछे दरभंगा महाराज की शक्ति है इसीलिए यह जीवित है और दिन-रात हिन्दी की अर्थी

सजाने में व्यस्त है। डॉ० बेचन मैथिली के इस रुख से असन्तुष्ट हैं—"हिन्दी को समृद्ध करने का अर्थ राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीयता को मजबूत बनाने का भी होता है जो हिन्दी साहित्यकार कर रहे है। किन्तु, मैथिली वाले इन मोटी बातो को न समझने के कारण हिन्दी के साहित्यकारों और हिन्दी वालों के प्रति सनक, असमय आक्रोश व्यक्त करते है जो मैथिली के लिए अहितकर सिद्ध हो रहा है। अतएव मैथिली वालों को चाहिये कि हिन्दी भाषा और हिन्दी वालो का विरोध छोडकर वे मैथिली भाषा साहित्य को समृद्ध करे।'

काश ! आज ये मैथिली-पुत्र डॉ० बेचन जैसे निष्ठावान साहित्यकार की अतरात्मा की पुकार पर ध्यान देते। मैथिली की कुछ पत्र-पत्रिकाएँ मैथिली का कितना अहित कर रही है वह नीचे की स्थिति से स्पष्ट है। जमशेदपुर से प्रकाशित होने वाले एक मैथिली पत्र 'टटका' के पृ० १ पर निम्नलिखित विज्ञापन क्या संकेत दे रहे हैं—

५० रु० इनाम

मिथिलांचल क्षेत्र में जनगणना केनिहार जे जानि क मातृभाषा मैथिली नहि लिखए, मैथिली के धोखा दिअए, ओकरा पिरनाहर कें मैथिली सेना दिश सँ ५०) इनाम देल जाएत। दरभगा, मुजफ्फरपुर, चम्पारण, भागलपुर, पूर्णिया, सहरसा, मुंगेर, संताल परगना आदि क्षेत्रके भाषा मैथिली थीक।"

अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रो पर मैथिली लादने की यह साजिश कहाँ तक सफल हुई है इसका ज्ञान जनगणना रिपोर्ट १९७१ के प्रकाशन के पश्चात् ही होगा। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि मात्र दरभगा जिला की जनभाषा ही मैथिली है अन्य जिलों—मुजफ्फरपुर मे बज्जिका, चम्पारन में भोजपुरी, भागलपुर, मुंगेर, पूर्णिया, सहरसा आदि जिलो की भाषा अगिका और परगना की भाषा संताली—अन्य जनपदीय भाषाएँ बोली जाती है। 'टटका' जैसे पत्रो के सम्पादक लाख रुपये की भी घोषणा क्यो न करे पर उपर्युक्त जनभाषाओ के अस्तित्व को वे लुप्त नही कर सकते।

मै यहाँ स्पष्ट कर दूँ कि डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल या पडित श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी द्वारा प्रवर्तित जनपदीय आन्दोलन आज ऐसे दौर मे प्रवेश कर रहा है जहाँ हिन्दी का अहित निश्चित है। जनपदीय भाषाओं मे साहित्य रचना सास्कृतिक पक्ष है किन्तु उसे उन जनपदो की सरकारी भाषा बनाना या फिर स्कूल-कॉलेजो में प्रविष्ट कराना राजनैतिक पक्ष है। यदि हम सास्कृतिक पहलू तक ही सीमित नही रहना चाहते तो फिर हिन्दी-भाषी राज्यों (बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, हिमांचल

प्रदेश) में हिन्दी कहाँ-कहाँ प्रयुक्त होगी इस सम्बन्ध में स्पष्ट घोषणा हो जानी चाहिये। और सबसे बड़ी बात जो जनपदीय भाषाओं के सम्बन्ध में है, वह यह कि इनके क्षेत्रों का सर्वेक्षण शीघ्र ही हो जाना चाहिये। यदि ऐसा नही होता है तो कितनी ही जनपदीय भाषाओं के क्षेत्रों में दूसरे जनपद की भाषाओं द्वारा उपनिवेश बसाने की योजना भी समाप्त नही होगी। तब 'बृहत्तर हरियाणा' या 'बृहत्तर दिल्ली' या 'बृहत्तर मिथिला' में कितनी ही जनपदीय भाषाएं अपना अस्तित्व खो बैठेंगी। कहीं-कहीं तो इस बृहत्तर की मनोकांक्षा भाषा-कलह भी उपस्थित करेंगी।

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १५वें अधिवेशन (फीरोजाबाद) में सभापति पद से बोलते हुए बाबू वृन्दावनदास जी ने जिस सबसे बड़े सत्य की ओर हिन्दी के मठाधीशों का ध्यान खींचा है वस्तुतः यह स्थिति आज प्रत्येक जनपदों की है—**"लोक भाषाओं के साहित्य को परिपुष्ट करने के लिये उनके क्षेत्रों में एक लहर सी चल पड़ी है। प्रत्येक लोकभाषा के क्षेत्रीय विद्वान् अपनी लोकभाषा के साहित्य को संवारना चाहते हैं।.......... वे उसके अस्त-व्यस्त साहित्य को काट-छाँट कर ठीक करना चाहते हैं। भाषा को भी व्याकरण सम्मत और साहित्य की दृष्टि से पुष्ट करना चाहते हैं। हम उन्हें ऐसा करने से रोक नहीं सकते। यदि हम हिन्दी का भला चाहते हैं तो हमें उनकी आकांक्षाओं को समझना होगा।"**

जिस पवित्र जनपदीय आन्दोलन का श्रीगणेश हिन्दी के ही अंगों को पुष्ट करने के लिए हुआ था, वही आज हिन्दी को विस्थापित कर जनपदीय भाषाओं को पदस्थापित करने के रूप में पनप रहा है। दूसरी जनपदीय भाषाएँ ऐसा कुत्सित कर्म नही भी करें किन्तु मैथिली तो बिहार में हिन्दी को पदच्युत कर रही है।

●

भोजपुरी व्याकरण और बोली-कोश: एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

—हरिश्चन्द्र प्रसाद

भोजपुरी आर्य-भाषा-परिवार की एक सशक्त भाषा है। अन्य बिहारी भाषाओं—मैथिली, मगही, अंगिका और वज्जिका की अपेक्षा इसका सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र है। यह क्षेत्र उत्तर में नेपाली, दक्षिण में उड़ीसा, पूर्व में वज्जिका और मगही तथा पश्चिम में हिन्दी की मध्यदेशीय उपभाषाओं—छत्तीसगढ़ी, बघेली और अवधी से घिरा हुआ है। इस प्रकार भोजपुरी बिहार राज्य के चम्पारन, सारन, शाहाबाद, राँची, पलामू, मुजफ्फरपुर जिले के दक्षिणी-पश्चिमी भाग (बरुराज और साहबगंज थानों के कुछ पश्चिमी गाँवों में) तथा उत्तर प्रदेश के बलिया, गाजीपुर, बस्ती, गोरखपुर, देवरिया तथा बनारस जिलों में एवं मिर्जापुर, जौनपुर और आजमगढ़ जिलों के अधिकांश भागों तथा फैजाबाद जिले के एक सीमित क्षेत्र में बोली जाती है। बहराइच जिले से लेकर चम्पारन जिले की उत्तरी सीमा पर नेपाल की तराई के निवासियों तथा अन्य प्रदेशों में वास करने वाले थारुओं की भाषा भोजपुरी ही है।[1] स्व० आचार्य मनोरंजन प्रसाद सिंह ने भोजपुरी-भाषा-भाषी जिलों का उल्लेख करते हुए लोरीछन्द की एक कविता में इस प्रकार लिखा है—

> आरे आवऽ छपरा आवऽ बलियाऽ मोतीहारी आवऽ
> राँची अउर पलामू आवऽ गोरखपुर देवरिया आवऽ
> गाजीपुर आजमगढ़ आवऽ बस्ती अउरी जौनपुर आवऽ
> मिर्जापुर बनारस आवऽ सोने के कटोरिया में
> दूध भात लेले आवऽ बबुआ के मुँह में घुटुक[2]

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इस कविता द्वारा भोजपुरी क्षेत्र का शुद्ध मानचित्र तो सामने नहीं आता, किन्तु इससे मोटे तौर पर भोजपुरी प्रदेश का परिज्ञान हो जाता है।

इसके अतिरिक्त कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, जमशेदपुर आदि औद्योगिक नगरों तथा दार्जिलिंग और आसाम के चाय-बागानों में जीविकोपार्जन के लिये

---

१. डा० ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग-५, खंड-२, पृ० ४०।

२. मासिक भोजपुरी (आरा), वर्ष—१, अंक—४, नवम्बर, १९५२ ई०।

गये भोजपुरियों की संख्या कुछ कम नहीं है—फिजी ट्रिनीडाड, मारिशस, दक्षिण अफ्रिका, केनिया, वर्मा—जैसे विदेशी राष्ट्रों में भी कृषि, मजदूरी तथा अन्य व्यवसाय-व्यापार करने के लिये प्रवासित भोजपुरी भाषा-भाषियों के अनेक गाँव बस गये हैं जिन्होंने आज भी अपनी भाषा और संस्कृति को अक्षुण रखा है।

इस प्रकार बिहार और उत्तर-प्रदेश के लगभग पचास हजार वर्गमील की परिधि में भोजपुरी बोली जाती है और देश तथा विदेश में उसके बोलने वालों की संख्या इस समय न्यूनाधिक पाँच करोड़ है। विहारी भाषाओं में, तुलना से मैथिली-भाषा-भाषियों की संख्या उससे पचास और मगही-भाषा-भाषियों की तो और कम है।

डा० ग्रियर्सन के मतानुसार भोजपुरी को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी और नागपुरिया। पश्चिमी भोजपुरी फैजाबाद, आजमगढ़, जौनपुर, पश्चिमी गाजीपुर तथा मिर्जापुर मे और दक्षिणी भोजपुरी शाहाबाद, सारन, बलिया तथा पूर्वी गाजीपुर में बोली जाती है। इसी दक्षिणी भोजपुरी को स्टैंडर्ड या आदर्श भोजपुरी भी कहा जाता है। गोरखपुर, देवरिया और बस्ती जिलों में बोली जाने वाली भोजपुरी उत्तरी भोजपुरी के नाम से अभिहित होती है। नागपुरिया मुख्य रूप से छोटा नागपुर के राँची और पलामू जिलों में बोली जाती है। प्रो० केसरीकुमार सिंह इसका विस्तार क्षेत्र बिहार राज्य के राँची, पलामू, सिंहभूम तथा हजारीबाग जिले के चतरा और रामगढ अनुमण्डल, मध्य प्रदेश के सरगुजा और यशपुर, उड़ीसा के सुन्दरगढ़, क्यूँझर और मयूरभज तथा बंगाल के पुरुलिया और मिदनापुर तक, जो बिहार की सीमा से सटे हैं, मानते हैं।[1] इसे 'सदानी' या 'सदरी' भी कहा जाता है। आदिवासी मुंडा इसे 'दिक्काजी' अर्थात् 'दिक करने वालो की भाषा' कहते हैं। इधर कुछ विद्वान बनारस की बोली को 'काशिका' बलिया की बोली को 'बल्लिका' तथा गोरखपुर की बोली को 'मल्लिका' नाम से अभिहित करने लगे है। भाषा-विभेद होने के कारण कुछ भाषा-वैज्ञानिक पश्चिमी गोरखपुर तथा बस्ती जिले की भाषा को 'सरवरिया' तथा पूर्वी गोरखपुर की भाषा को 'गोरखपुरी' नाम देते हैं।

इसके अतिरिक्त भोजपुरी की दो और उप-बोलियाँ भी हैं—(१) मधेसी और (२) थारु। मधेसी चम्पारन जिले में बोली जाती है। **पूर्व में मुजफ्फरपुर**

---

१. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के एक वार्षिकोत्सव के अवसर पर पठित मुद्रित-निबन्ध (३० मार्च, १९५८), पृ० १।

जिले की पश्चिमी मैथिली (आधुनिक नाम बज्जिका) और पश्चिम मे पूर्वी गोरखपुर जिले की गोरखपुरी भोजपुरी के बीच बोली जाने के कारण डा० ग्रियर्सन ने इसका 'मधेसी' नामकरण किया था। उनके अनुसार 'मधेसी' सस्कृत के 'मध्यदेशीय' का विकृत रूप है। इस नामकरण के पक्ष मे उन्होने दूसरा तर्क भी दिया है। उनके अनुसार चम्पारनवासियों द्वारा अपनी भाषा के लिए 'मघेसी' नामकरण दिये जाने के कारण ही उन्होने भी उसको 'मधेसी' नाम दिया है। डा० उदयनारायण तिवारी, डा० कृष्णदेव उपाध्याय, डा० विश्वनाथ प्रसाद प्रभृत भाषा शास्त्रियों ने भी डा० ग्रियर्सन द्वारा दिये गये इसी तर्क के आधार पर चम्पारन की भोजपुरी का नाम 'मधेसी' स्वीकार किया है। किन्तु चम्पारन की बोली के लिए 'मधेसी' नाम दिया जाना युक्ति-सगत प्रतीत नही होता। वस्तुत चम्पारनवासी कभी भी अपनी बोली को 'मधेसी' नाम से अभिहित नही करते। **केवल बज्जिका और गोरखपुरी भोजपुरी के बीच बोली** जाने के कारण इसका नामकरण 'मधेसी' कर दिया जाय यह भी भ्रामक होगा, क्योंकि भारत मे आर्य-भाषा-परिवार तथा अन्य भाषा परिवारो की अनेक ऐसी भाषाएँ है जो दो या अधिक भाषाओं के बीच बोली जाती है, किन्तु उनके नाम वे ही है जिनका उन पर अधिक प्रभाव है। अत: पूर्वी क्षेत्र मे बोली जाने के कारण चम्पारन की बोली को 'पूर्वी भोजपुरी' ही कहा जाना उपयुक्त होगा। लोक-साहित्य मर्मज्ञ पडित गणेश चौबे के इस विचार का मै समर्थन करता हूँ।[1] थारू भोजपुरी उत्तर प्रदेश के बहराइच जिले से लेकर बिहार राज्य के चम्पारन जिले के सीमावर्ती क्षेत्रो मे वास करने वाली थारू-जाति द्वारा प्रयुक्त होती है। नेपाल की तराई के थारुओं की अपनी कोई भाषा नही है। वे जहाँ रहते है, उस स्थान की स्थानीय बोली को अपना लेते है।

अब तक हमने भोजपुरी-भाषा के क्षेत्र-विस्तार तथा उसकी जनसख्या और विभाषाओ पर विचार किया है, अब हम उसके भाषा-वैशिष्ट्य तथा उसके बोली कोश के सम्बन्ध मे हुए शोध-कार्यो का सिंहावलोकन कर ले।

जिस प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास पुराना नहीं है, वही बात भोजपुरी के सम्बन्ध मे भी प्रवृत्त होती है। आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व अंगरेज सिविलियनो तथा मिशन-पादरियों द्वारा

---

१. "भोजपुरी भाषा और साहित्य"—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना के एक वार्षिकोत्सव के अवसर पर पठित पं० गणेश चौबे का मुद्रित भाषण (५ अक्तूबर, १९५९ ई०), पृ० ४-५।

इसका श्रीगणेश किया था। अंगरेज सिविलियन भारतीय भाषाओं का अध्ययन कर अपना शासन-सूत्र सुदृढ़ करना चाहते थे और मिशन-पादरी ईसाई-धर्म के प्रचारार्थ उसे अपना एक साधन बनाना। इसमें उन्हें बहुत अंशों में सफलता भी मिली। इस प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन से भारतीय जनता का भी बड़ा उपकार हुआ। इससे उन्हें नई प्रेरणा मिली। उनके हृदय में अपनी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने की उत्कट अभिलाषा जगी।

डा० जे० बीम्स प्रथम विदेशी विद्वान थे जिन्होंने सन् १८६७ ई० में सर्व प्रथम रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की एक गोष्ठी में 'नोट्स ऑन दि भोजपुरी डाइलेक्ट औफ हिन्दी स्पोकेन इन वेस्टर्न विहार' शीर्षक एक निबन्ध का पाठ कर आदर्श भोजपुरी का एक संक्षिप्त व्याकरण प्रस्तुत किया था। विवेचन के क्रम में उन्होंने उसमें भोजपुरी लोकगीतों के अनेक उदाहरण भी उद्धृत किये थे। वही निबन्ध दूसरे वर्ष उसी सोसाइटी की मुख-पत्रिका (जनरल) में प्रकाशित हुआ था।[1] भोजपुरी व्याकरण पर संक्षिप्त, किन्तु प्रामाणिक प्रकाश डालने वाले दूसरे अंगरेजी सिविलियन हैं—एम० एच० केलॉग। उन्होंने अपनी अविस्मरणीय कृति 'ए ग्रामर औफ दि हिन्दी लैंग्वेज' में इस भाषा की भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विस्तृत विवेचना की है।[2] यदि इसे ही हिन्दी का प्रथम व्याकरण कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस व्याकरण की आधार भाषा-भूमि है, हिन्दी प्रदेश का कुमाऊँ, अवध, रीवा भोजपुर, मगध, मिथिला आदि। भोजपुरी भाषा के व्याकरण पर विस्तार से प्रकाश डालने वाले तीसरे अंगरेज विद्वान हैं—जे० आर० डी०। सन् १८७७ में उन्होंने आजमगढ़ जिले के परिमाप और बन्दोबस्ती पदाधिकारी की हैसियत से अपनी 'सर्वे रिपोर्ट' में आजमगढ़ जिले की पश्चिमी भोजपुरी को आधार मानकर 'नोट्स औन दि डाइलेक्ट करेन्ट इन आजमगढ़' नामक एक प्रामाणिक व्याकरण लिखा है।[3] डा० ए० एफ० आर० हार्नले ने सन् १८८० ई० में 'ए ग्रामर औफ ईस्टर्न हिन्दी कम्पेयर्ड विद दि अदर इण्डियन लैंग्वेजेज' शीर्षक अपनी अमर कृति प्रकाशित कराकर पश्चिमी भोजपुरी का एक श्रेष्ठ व्याकरण

---

१. जनरल आफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, भाग—३, न्यू सीरीज (१८६८ ई०), पृ० ४८३–५०८।

२. प्रकाशक—राटलेज एण्ड केगन पाल लि०, लंदन, १८७५ ई० वि० सं० १८९३ ई०, पुनर्मुद्रण—१९५६ ई०।

३. रिपोर्ट आन दि सेटलमेंट आपरेशन्स इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ आजमगढ़ परिशिष्ट २ (इलाहाबाद, १८८१ ई०)।

प्रस्तुत किया।[1] इन्होंने इसमें पूर्वी भोजपुरी की तुलना अन्य गौड़ीय प्राकृत (मागधी) प्रसूत भाषाओं से की है। इस व्याकरण के अन्तिम पृष्ठों पर बनारसी भोजपुरी का स्वरूप प्रकट करने के लिए अनेक लोक-कथाएँ मूल रूप में संगृहीत की गई हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि डा० हौर्नले ने पश्चिमी भोजपुरी का ही 'पूर्वी हिन्दी' नामकरण किया है।

सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा० जी० ए० ग्रियर्सन द्वारा भोजपुरी भाषा और उसके लोक साहित्य के क्षेत्र में किये गये अनुसंधान कार्य अत्यन्त ही श्लाघ्य हैं। भाषा-विज्ञान सम्बन्धी उनकी पहली कृति है—'सेवेन ग्रामर्स आफ दि डायलेक्टस एण्ड सब-डायलेक्टस औफ दि बिहारी लैंगवेजेज'। यह व्याकरण आठ भागों में प्रकाशित है। इसका प्रथम भाग 'भूमिका' मात्र है और शेष सात भागों में बिहारी भाषाओं का ठोस व्याकरण लिखा गया है। इसका द्वितीय भाग शाहाबाद, सारन, चम्पारन, उत्तरी मुजफ्फरपुर और पश्चिमोत्तर प्रान्त (आजमगढ़, बनारस और जौनपुर) की बोलियों तथा उप-बोलियों पर आधारित भोजपुरी का प्रामाणिक व्याकरण है।[2] यह व्याकरण अपने में पूर्ण है। इसके अन्तिम पृष्ठों पर भोजपुरी लोक-गीतों के कुछ उदाहरण भी प्रकाशित हैं। डा० ग्रियर्सन की अद्भुत और चिरस्मरणीय कृति है—'लिंग्व-स्टिक सर्वे औफ इंडिया' इसमें भारत और पाकिस्तान की सभी भाषाओं के यथेष्ट उदाहरण सहित भाषागत विशेषताओं की सविस्तार विवेचना की गई है। इसी ग्रन्थ के खड ५, भाग २ में भोजपुरी भाषा के साथ-साथ अन्य बिहारी भाषाओं की भी मीमांसा है।[3] इसमें भोजपुरी के नामकरण, क्षेत्र-विस्तार, भाषाभाषियों की संख्या और उनकी बोलियों तथा उप-बोलियों का सविस्तार वर्णन किया गया है। इस भाषा की बोलियों तथा उप-बोलियों की भाषा विशेषता स्पष्ट करने के लिए इसमें भोजपुरी प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

भाषा विज्ञ होने के नाते डा० ग्रियर्सन ने बिहार की मैथिली, मगही और भोजपुरी क्षेत्रों और ग्रामीणों द्वारा उनके दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले हजारों शब्दों का संग्रह किया था जो 'बिहार पीजेन्ट लाइफ' के नाम से प्रकाशित है।[4] इनमें विषय क्रमानुसार शब्दों की उत्पत्ति, व्यवहार-क्षेत्र और

---

१. प्रकाशक—ट्रूबनर एण्ड कम्पनी, लन्दन, १८८० ई०।

२. प्रकाशक—दि बंगाल सेक्रेट्रियेट प्रेस, कलकत्ता, १८८४ ई०।

३. प्रकाशक—वही १९०३ ई०।

४. प्रकाशक—अधीक्षक, सरकारी मुद्रणालय, कलकत्ता, १८८५ ई०।
द्वितीय संस्करण—प्र०—सरकारी मुद्रणालय, पटना, १९२६ ई०।

एक से दूसरे क्षेत्र में समान अर्थ रखने वाले शब्दों की व्याख्या तुलना के आधार पर सँजोई गई हैं। इस विषय पर डा० ग्रियर्सन की अन्तिम प्रकाशित पुस्तक है, 'ए कौम्पेरेटिव डिक्शनरी औफ बिहारी लैंग्वेजेज'।[1] इसके दो ही भाग प्रकाशित हैं। इस बोली-कोश के लिए सामग्रियाँ जुटाने में डा० ग्रियर्सन को डा० हार्नले से सहायता मिली थी। इस शब्दावली के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इसमें बिहारी भाषाओं के शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन दोनों ही बोली-कोशों में भोजपुरी के हजारों शब्द संगृहीत हैं, गिरीन्द्रनाथ दत्त ने अपने दो लेखों के द्वारा सारन जिले में बोली जाने वाली भोजपुरी का बड़ा ही सांगोपांग व्याकरण प्रस्तुत किया है।[2]

सन् १८९६ ई० में रेव० फादर ई० एच० व्हिटली ने 'नोट्स औन दि गनवारी डाइलेक्टस आफ लोहरदगा : छोटानागपुर' नामक एक ठोस और प्रामाणिक व्याकरण का प्रणयन किया।[3] यह सदानी बोली का प्रथम व्याकरण है। अल्पकाय होते हुए भी यह व्याकरण प्रतिपादित विषय के प्रायः सभी अंगों पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है। सदानी बोली का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुस्तक के अन्त में गद्य और लोक-गीतों के कुछ उदाहरण जोड़ दिए गए हैं। एक परिशिष्ट में अंगरेजी-पर्याय के साथ सदानी के कतिपय शब्द भी संगृहीत हैं। सन् १९१४ ई० में इसी व्याकरण का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण 'नोट्स आन नागपुरिया हिन्दी' के नाम से प्रकाशित हुआ था।[4]

भोजपुरी भाषा पर पांडित्यपूर्ण सर्वांगीण गवेषणा करने का श्रेय है, प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक डा० उदयनारायण तिवारी को। इन्होंने डी० लिट्० की उपाधि के लिए शोध-प्रबन्ध तैयार करने के सिलसिले में वर्षों तक ग्रामीण क्षेत्रों में रहकर इस भाषा के विभिन्न रूपों का अध्ययन-मनन किया था। प्रायः उसी समय बलिया जिले की बोली पर आधारित

---

१. प्रकाशक—दि बंगाल सेक्रेट्रियेट प्रेस, कलकत्ता, प्रथम भाग—१८८५ ई० तथा द्वितीय भाग—१८८९ ई०।

२. (क) नोट्स ऑन दि वर्नाकुलर डाइलेक्टस स्पोकेन इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ सारन जरनल औफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग-६६, सं०-३। १८९७ ई०, पृ० १९४-२१२।
(ख) फर्दर नोट्स आन दि भोजपुरी डाइलेक्ट स्पोकेन इन सारन, भाग-६६, सं०-३। १९०४ ई०, पृ० १९४-२१२।

३. प्र०—दि बंगाल सेक्रेट्रियेट प्रेस, कलकत्ता, १८९६ ई०।

४. प्र०—बिहार एण्ड उड़ीसा गवर्नमेंट प्रिंटिंग, पटना, १९१४ ई०।

उनका भोजपुरी व्याकरण 'ए डाइलेक्ट आफ भोजपुरी' नाम से प्रकाशित हुआ।[1] इस ८३ पृष्ठीय व्याकरण में भोजपुरी भाषा सम्बन्धी बहुत सारी सामग्रियाँ उपलब्ध हैं।

सन १९४५ ई० में डा० तिवारी का 'ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेंट आफ भोजपुरी' नामक शोध-प्रबन्ध प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत हुआ।[2] यह प्रबन्ध अपने में इतना पूर्ण है कि यह शोधी विद्वानों के लिए एक प्रकार का मार्गदर्शक बन गया है। उन्होंने इसमे भोजपुरी भाषा के प्रायः सभी अंगो की विस्तृत विवेचना की है। इसी शोध-प्रबन्ध के आधार पर डा० तिवारी ने 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' नामक दूसरा महाग्रन्थ तैयार किया जिसका पाठ उन्होने सन् १९५१ ई० में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) के तत्वावधान मे आयोजित एक गोष्ठी में किया था।[3] इस ग्रन्थ में उन्होने भोजपुरी की तुलना मैथिली, मगही आदि आर्य परिवार की कई भाषाओं से करके इसकी महत्ता बतायी है। इसमे भोजपुरी व्याकरण के साथ-साथ भोजपुरी के सन्त साहित्य तथा अर्वाचीन साहित्य पर वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ की उपादेयता इतनी बढ गई है कि कितने ही विश्वविद्यालयो ने एम० ए० की उपाधि प्राप्त करने वाले छात्रों के लिए प्रादेशिक भाषाओं की पाठ्यपुस्तक के रूप में इसे स्वीकृत किया। इनके अतिरिक्त, भोजपुरी भाषा विषयक डा० तिवारी के अनेक लेख आजकल (दिल्ली), नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी), सम्मेलन-पत्रिका (प्रयाग), जनपद (काशी), भोजपुरी (आरा), हिन्दी-अनुशीलन (प्रयाग), मुरलीमनोहर-अभिनन्दन-ग्रन्थ (बलिया) आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा अभिनन्दन-ग्रन्थों में प्रकाशित है।

नागपुरिया भाषा सम्बन्धी सर्वागीण गवेषणा करने वाले हैं राँची के रे० फादर पीटर शान्ति नवरगी। उन्होंने सन १९५६ ई० में 'ए सिम्पुल सदानी ग्रामर' नामक एक व्याकरण प्रकाशित किया जिसमे उन्होने सदानी बोली की सभी महत्वपूर्ण बातो की बड़े ही सजीले ढग से व्याख्या की है।[4]

---

१. जरनल आफ दि बिहार एण्ड उड़िसा रिसर्च सोसाइटी (पटना) वर्ष २०, अंक ३-४, जुलाई-दिसम्बर, १९३४ ई०, पृ० १–३१ (परि०), वर्ष-२१, अंक १, जनवरी-मार्च, १९३५ ई०, पृ० ३३–५६ (परि०) और वर्ष-२१, अंक ३-४, जुलाई-दिसम्बर, १९६६ ई०, पृ० ५७–८३ (परि०)।

२. प्रकाशक—एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, १९६० ई०।

३ प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५४ ई०।

४. रांची से ग्रन्थकार द्वारा प्रकाशित, १९५६ ई०।

इस बोली का समग्र रूप प्रदर्शित करने के लिए पुस्तक के अन्त में एक लोक-कथा दे दी गई है। फा० नवरंगी की दूसरी कृति है—'नगपुरिया सदानी बोली का व्याकरण'[1] यह उपर्युक्त अंगरेजी व्याकरण का प्रायः छायानुवाद है। इसमें भारत के आर्य परिवार की नव भाषाओं से तुलना कर नागपुरिया बोली की विशिष्टता को स्पष्ट किया गया है।

इसके अतिरिक्त, भोजपुरी भाषा पर प्रकाश डालने वाले दो और व्याकरण हैं। पहला है, डा० शुकदेवसिंह द्वारा प्रणीत 'भोजपुरी और हिन्दी'[2] तथा दूसरा है, रासबिहारी राय शर्मा द्वारा लिखित 'भोजपुरी व्याकरण'[3]। पहला भाषा विज्ञान की दृष्टि से लिखा गया है और दूसरा विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए। पहले में खड़ी बोली, मैथिली, मगही, अंगिका, वज्जिका आदि के व्याकरणों से भोजपुरी की तुलना की गई है और दूसरे में व्यावहारिकता पर अधिक जोर दिया है। पहले का **'हिन्दी और भोजपुरी का तुलनात्मक व्याकरण'**[4] नाम से संशोधित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण हो चुका है और दूसरे का होने जा रहा है। इस क्षेत्र में भाषा-मर्मज्ञ गदाधर प्रसाद अम्बष्ठ की पुस्तिका **'बिहार की भाषाएँ और बोलियाँ'** विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[5] बिहार में बोली जाने वाली भाषाओं और बोलियों का परिचय प्राप्त करने के लिए यह पर्याप्त है। इसमें भोजपुरी की सांगोपांग व्याख्या की गई है।

पत्र-पत्रिकाओं मे भी कुछ ऐसी सामग्रियाँ प्रकाशित हैं जिससे भोजपुरी भाषा का सुस्पष्ट चित्र सामने आ जाता है। पहला लेख है—रासबिहारी राय शर्मा का 'भोजपुरी'।[6] सन १९२९ में उसका प्रकाशन लखनऊ की 'सुधा' नामक पत्रिका में हुआ था। मेरी समझ से वही भोजपुरी के सम्बन्ध मे हिन्दी में लिखा गया पहला लेख है। शर्मा जी ने उस लेख में भोजपुरी को मैथिली के बहुत सन्निकट बताया था। हाल में ही भोजपुरी वर्तनी और हिज्जे विषयक

१. वही, १९६६ ई०।

२. प्रकाशक— ऋतम्भरा, अखारा घाट, मुजफ्फरपुर, अक्तूबर, १९६० ई०।

३. प्रकाशक—राजगुरुमठ, शिवाला, वाराणसी, १९६४ ई०।

४. प्रकाशक—नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६८ ई०।

५. प्रकाशक—ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर, पटना, १९३८ ई०।

६. मासिक 'सुधा' (लखनऊ, वर्ष २, खण्ड-१, सं०-१, फरवरी, १९२९ ई०, पृ० १८-२३।

शर्मा जी का एक और महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है।[१] लालजी सिंह ने 'भोजपुरी संस्कृति' शीर्षक अपने लेख के प्रथम अर्द्धांश में भोजपुरी व्याकरण के प्रायः सभी अंगों पर वैज्ञानिक ढंग से विचार किया है।[२] विन्ध्याचलप्रसाद श्रीवास्तव ने भोजपुरी के क्रिया-पदों,[३] सर्वनामों[४] और विशेपणों[५] पर पाडित्यपूर्ण ढंग से प्रकाश डाला है। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री का लेख 'भोजपुरी भापा में प्राकृत तत्व' कई दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है।[६] नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी) मे प्रकाशित वाचस्पति उपाध्याय का लेख 'बनारसी बोली' विषय प्रतिपादन की दृष्टि से अत्यन्त श्लाघ्य है।

विश्वविद्यालयों द्वारा पी० एच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत कुछ ऐसे भी अप्रकाशित शोध-प्रवन्ध हैं जिनमें भोजपुरी की विशेषताओ की गवेषणा-पूर्ण मीमांसा की गई है। वे सर्वसुलभ नही है, किन्तु उनकी महत्ता सर्वविदित है। इस प्रकार का सन् १९४३ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत हिन्दी का पहला शोध-प्रवन्ध है, नलिनी मोहन सान्याल का 'विहारी भाषाओं की उत्पत्ति और विकास'। जहाँ तक मेरी जानकारी है, हिन्दी मे लिखित यही पहला शोध-प्रबन्ध है जो किसी विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत हुआ था। तत्पश्चात् सन् १९५१ ई० में लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा डा० विश्वनाथप्रसाद का **'फोनेटिक्स इन भोजपुरी'** शीर्षक शोध-प्रवन्ध स्वीकृत हुआ। इसमें भोजपुरी ध्वनियो का बड़े ही आकर्षक ढंग से वैज्ञानिक अध्ययन उपस्थित किया गया है। सन् १९६९ ई० में डा० वकीलसिंह बिहार विश्वविद्यालय द्वारा पी० एच० डी० की उपाधि से विभूषित किए गए। इनके शोध-प्रबन्ध का विषय था, **'चम्पारन की बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन'**। डा० सिंह ने इसमें चम्पारन

---

१. मासिक 'भोजपुरी जनपद' (बाराणसी), वर्ष २, अंक ८-९, जुलाई-अगस्त, १९७१ ई०, पृ० १५-१६।
२. त्रैमासिक 'हिन्दुस्तानी' (प्रयाग), वर्ष १६, अंक २, अप्रैल-जून, १९४६ ई०, पृ० १२०-४४।
३. त्रैमासिक 'अँजोर' (पटना); वर्ष ५, अंक १-२, अप्रैल-जुलाई, १९६४ ई०, पृ० ९-१३ वर्ष ५, अंक ३-४, अक्तूबर, १९६४, जनवरी, १९६५, पृ० २७-३१।
४. वही, वर्ष ९, अंक ३-४, अक्तूबर १९६८, जनवरी १९६९, पृ० २-७।
५. वही, वर्ष ११, अंक १-२, अप्रैल-जुलाई १९७०, पृ० १०-१३।
६. वही, वर्ष १०, अंक १-२, अप्रैल-जुलाई १९६९, पृ० २-१६ और वर्ष १०, अंक ३-४, अक्तूबर १९६९, जनवरी १९७०, पृ० २-०।

की बोली की विभिन्नताओं की नूतन ढंग से पांडित्यपूर्ण गवेषणा उपस्थित की है।

भोजपुरी के बोली कोश पर अब तक जितना काम हुआ है, यदि उसे नगण्य कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वस्तुतः यह अछूता ही है। कुछेक शोध-ग्रन्थों को छोड़कर अन्य में भोजपुरी शब्दों का संकलन प्रसंगवश ही हुआ है। सर्वप्रथम सन् १८७४ में जी० कैम्पबेल ने चम्पारन और शाहाबाद में बोली जाने वाली भोजपुरी के कुछ शब्दों और वाक्यों को अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'स्पेसिमेन्स ऑफ लैंगवेजेज ऑफ इण्डिया' में स्थान दिया था।[1] जे० आर० रीड ने अपनी 'सर्वे रिपोर्ट' के परिशिष्ट ३ में जो अलग छपा है, आजमगढ़ जिले से संकलित शब्दों को प्रकाशित कराया है।[2] एस० डब्ल्यू० फैलन के 'ए न्यू हिन्दुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी' नामक बोली कोश में भोजपुरी के कुछ शब्द सम्मिलित हैं।[3] डा० ग्रियर्सन ने बिहार के भोजपुरी भाषा-भाषी क्षेत्रों के ग्राम वासियों द्वारा प्रयुक्त होने वाले बहुत से शब्दों को अपने बहुचर्चित कोश 'बिहार पीजेन्ट लाइफ' में स्थान दिया था जिसकी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है। किन्तु भोजपुरी के विशाल शब्द-भंडार को देखते हुए इसे नगण्य ही कहा जायगा। पाँचवाँ कोश है—मिस एल मेण्ट जॉसेफ द्वारा मोतिहारी (चम्पारन) के सन्निकट के ग्रामों से संकलित तथा मोतीहारी के मिशन हाउस से प्रकाशित भोजपुरी शब्द-कोश।[4] यह कोश पाकेट-बुक साइज में मुद्रित २८ पृष्ठों का है। अध्येताओं की सुविधा के लिए संकलनकर्त्ता ने कोश के अर्द्ध भाग में भोजपुरी शब्दों के अंगरेजी पर्याय और शेष अर्द्ध भाग में अंगरेजी शब्दों के भोजपुरी पर्याय दिए हैं। कोश वर्ण क्रमानुसार नियोजित है। कोश में ७०० से अधिक शब्द नहीं हैं। डा० हरिहर प्रसाद गुप्त का 'ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली' शीर्षक बोली-कोश स्वतन्त्र रूप से भाषा-विज्ञान पर आधारित भोजपुरी का प्रथम कोश है।[5] यह एक शोध प्रबन्ध है और इसका संकलन क्षेत्र है—आजमगढ़ जिले की फूलपुर तहसील। इसी कोश पर सन्

---

१. प्रकाशक—दि बंगाल सेक्रेट्रियेट प्रेस, कलकत्ता, १८७४ ई०। क्रमशः पृ० ६० और पृ० ९५।

२. रिपोर्ट आन दि सैटलमेंट आपरेशन्स इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ आजमगढ़ (इलाहाबाद, १८८१ ई०)।

३. प्रकाशक—मेडिकल हॉल, बनारस, १८७९ ई०।

४. प्रकाशक—मिशन हाउस, मोतीहारी (चम्पारन), १९४० ई० (?)

५. प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई०।

१९५१ ई० मे उन्हे प्रयाग विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की उपाधि मिली थी। इसमे विषय क्रमानुसार शब्दों की व्युत्पत्ति और इसके हिन्दी पर्याय बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से सजाए गए है। इसमें २५०० शब्द संकलित है भोजपुरी शब्दावली से सम्बन्धित अन्तिम और महत्वपूर्ण बोली-कोश है— 'कृषिकोश'। यह दो खण्डों मे प्रकाशित है।[1] पहले के सम्पादक है—डा० विश्वनाथ प्रसाद और दूसरे के है—वैद्यनाथ पांडेय। इसमें मैथिली, मगही और भोजपुरी क्षेत्रों के ग्रामीणो द्वारा व्यवहृत कृषि सम्बन्धी प्रायः सभी पारिभाषिक शब्दो को संगृहीत किया गया है। इसका कार्य क्षेत्र केवल विहार है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा संकलित सम्पादित 'भोजपुरी ग्राम-गीत' (भाग–१) के अन्तिम पृष्ठों पर भोजपुरी के कुछ शब्द संगृहीत है।[2] त्रैमासिक 'अँजोर' (पटना) के कतिपय अंकों मे भी भोजपुरी के सैकड़ो शब्दों का संकलन किया गया है। इसका श्रेय उसके विद्वान सम्पादक पांडेय नर्मदेश्वर सहाय को है। पं० गणेश चौबे, डा० उदयनारायण तिवारी तथा डा० सत्यदेव ओझा ने भोजपुरी क्षेत्र के कुछ पेशेवरों द्वारा प्रयुक्त होने वाले सांकेतिक शब्दों का संग्रह किया है जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

इस प्रकार बोली-कोशों के इस सिंहावलोकन से यह स्पष्ट है कि यह कार्य अभी सिन्धु मे बिन्दु के समान है। हर्ष की बात है कि इधर हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् का पुनर्गठन हुआ है और 'ब्रज भारती' (मथुरा) के सम्पादक श्री वृन्दावनदास के संयोजकत्व में हिन्दी प्रदेश की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओ के बोली-कोश का कार्यारम्भ कर दिया गया है। परिषद् के आयोजन के अनुसार चम्पारन के पं० गणेश चौबे ने भोजपुरी के बोली कोश के लिए सामग्रियाँ इकट्ठी कर ली है और उन्हें विन्यस्त कर रहे है। देखे, यह कब तक मूर्त्त रूप धारण करता है।

(अँजोर, जुलाई १९७२, पृ० २-१३, कला-१३, किरिन—१-२)

---

१. प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम खंड १९५९ ई० और द्वितीय खंड १९६८ ई०।

२. प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं० २०००।

मैथिली-क्षेत्र विस्तार, संख्या और इसका अधुनातन साहित्य

—राधाकृष्ण चौधरी

भूमिका—

प्राच्य भाषाओं में मैथिली का स्थान अग्रगण्य है और इसका अपना व्यक्तित्व भी अति प्राचीन काल से चला आरहा है। यों अशोक के समय से ही प्राच्य भाषा की विशिष्टता चली आरही है और उसके पूर्व भी शतपथ ब्राह्मण में इस बात का उल्लेख मिलता है कि बिहार और पूर्व के प्रदेशों की भाषा पश्चिम से भिन्न थी। इस विशिष्ट भाषा की परम्परा में मैथिली को हम रख सकते हैं। इसके अध्ययन के लिये यह आवश्यक है कि हम उस क्षेत्र की ऐतिहासिकता को जान लें। प्राचीन मिथिला के प्राङ्गण में जैन और बौद्ध धर्म का विकास हुआ और राजनीति के क्षेत्र में प्रजातन्त्र की भावना का विकास भी। जैन और बौद्ध लोगों ने अपने धर्म के प्रसार-प्रचार में तत्कालीन जनभाषा प्राकृत और पालि का आश्रय लिया और तब से ही इस क्षेत्र में जनभाषा की परिपाटी चल पड़ी। जनभाषा का प्रयोग साधारण लोग ही करते थे और इसका प्रमाण हमें संस्कृत ग्रन्थों और नाटकों से मिलता है। मिथिला के लोग स्वभाव से घमण्डी होते थे और अपनी भाषा के प्रति जागरूक भी—इसका प्रमाण हमें विद्यापति की पुरुष-परीक्षा से भी मिलता है।

यों मैथिली की उत्पत्ति को हम ८००–१००० ई० के बीच रखते हैं परन्तु इसका वास्तविक रूप कब और कैसे स्थिर हुआ, इस सम्बन्ध में अभी विद्वानों के बीच काफी मतभेद है। १०९३ ई० नान्यदेव के नेतृत्व में मिथिला में कर्णाटवंश की स्थापना हुई और तब से मिथिला में जो साहित्यिक नव-जागरण हुआ वह अबाध गति से कई शताब्दियों तक चलता रहा। मैथिली की परिपक्वता का प्राचीनतम प्रमाण हमें **वर्ण रत्नाकर** में मिलता है और उसके साहित्यिक रूप का दर्शन **पारिजातहरण** में होता है। **पारिजातहरण** के पूर्व या उसके समकालीन '**धूर्तसमागम नाटक**' में सुरक्षित मैथिली गीत इस बात का द्योतक है कि उस रूप को प्राप्त करने में मैथिली को काफी समय लगा होगा।

क्षेत्र-विस्तार और संख्या—

मैथिली का क्षेत्र भी काफी विस्तृत रहा है और प्राचीन काल में तो इसका विस्तार और भी वृहत् था। अब भी इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि नेपाल तराई के लगभग दो सौ मील की लम्बाई मे बसने वाले लोग मैथिली बोलते है और काठमाण्डु मे मैथिली भी एक भाषा के रूप मे स्वीकृत है। मैथिली के क्षेत्र विस्तार में मिथिला की सीमा को ध्यान में रखना होगा—उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे गगा, पश्चिम मे गण्डक और पूरब में कोशी। गंडक और महानन्दा के बीच के क्षेत्र मे बोली जाने वाली भाषा मैथिली थी और है, भले ही उसकी क्षेत्रगत विशेषता क्यो न अलग हो। मैथिली मे रचित नचारी का उल्लेख **आयनी-अकबरी** मे है और **आयनी-अकबरी** से पूर्व भी उत्तर प्रदेश के एक व्यक्ति ने मैथिली मे प्रचलित नचारी का उल्लेख किया है। मैथिली के क्षेत्र निरूपण के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(क) मैथिली का शुद्ध रूप (जो दरभगा जिले के उत्तरी भाग 'पंचक्रोशी' मे) वह है जिसे बहुत कम लोग बोलते है और जो साहित्यिक रूप का आदर्श अधुना माना जाता है। कुछ लोग इस मानक रूप को लिखने का प्रयास तो करते है परन्तु सबको इसमें सफलता नही मिल पाती है और इस प्रतिमान का निर्वाह करना सभी मैथिली लेखक के लिये संभव नही है। इस रूप को मैथिली का उत्तरी रूप भी कह सकते है।

(ख) दक्षिणी क्षेत्र—दक्षिण दरभगा, पूर्वी मुजफ्फरपुर, उत्तरी मुंगेर, सहरसा और पश्चिमी पूर्णिया मे जो भाषा प्रचलित है वह शुद्ध पंचक्रोशी की भाषा से भिन्न होते हुए भी मैथिली है। इसके रूप मे थोडा परिवर्तन अवश्य है परन्तु इसकी व्यापकता इस बात का प्रमाण है—ज्यादातर मैथिली भाषी इसी क्षेत्र मे रहते है—दक्षिण दरभंगा पर उत्तर दरभंगा का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। पूर्वी मुजफ्फरपुर और उत्तरी मुंगेर की भाषा पर दिआरा क्षेत्र मे बोली जाने वाली मिश्रित भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। पूर्णिया और सहरसा की भाषा को पूर्वी मैथिली की संज्ञा दी जाती है।

(ग) पूर्वी क्षेत्र से स्पष्ट रूप से पूर्वी पूर्णिया, मालदह और दिनाजपुर का अश पड़ता है—मिथिला प्रदेश से पॉचवी और छठी शताब्दी मे ही बहुत सारे लोग असम प्रदेश गये थे और वहाँ उन्होने वैदिक सम्प्रदाय की स्थापना भी की थी। वे अपने साथ मिथिला की संस्कृति और भाषा भी ले गये होंगे और तब से शंकरदेव के समय तक मिथिला का प्रभाव असम और बगाल पर

बना रहा भाषा का स्वरूप यों हर तीन मील पर बदलता है परन्तु उसका मौलिक रूप बना ही रहता है और यही बात मैथिली के साथ भी है। पूर्णिया के रास्ते मे मैथिल लोग बंगाल और असम की ओर जाते थे और पूर्णिया प्राचीन काल में मैथिली संस्कृति का एक प्रधान केन्द्र था।

(घ) छीका-छीकी भी मैथिली का ही विकृत रूप है जो दक्षिण भागलपुर, संताल परगना और छोटानागपुर के कुछ स्थानों में बोली जाती है। छोटानागपुर के राँची और डालटेनगंज क्षेत्र में कुरमाली नामक एक भाषा है जो मैथिली-मगही का ही मिश्रित रूप है। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी का एक शिलालेख इसी भाषा में राँची से उपलब्ध है और कोई भी भाषाविद् उसे देखकर मेरे उपरोक्त मत का समर्थन कर सकते हैं। इतना ही नहीं। गोंडा प्रखण्ड के अन्तर्गत पद्मपुर नामक स्थान पर एक शिव-मन्दिर पर मिथिला-क्षेत्र में एक लम्बा लेख है जिससे यह प्रमाणित होता है कि इस क्षेत्र में अकबर के शासन काल में मैथिली-लिपि का ही प्रचलन था, इसका दूसरा प्रमाण इससे पहले का है। शेरशाह के पुत्र का एक लेख मिथिलाक्षर में सूरजगरहा (मुंगेर) से प्रकाश में आया है। सबसे महत्व की बात तो यह है सातवीं शताब्दी के मगध-शासक आदित्यसेन का मंदार अभिलेख (जो अभी देवघर मन्दिर में लगा हुआ है) भी प्राचीन मिथिलाक्षर में है। इतना प्रमाण देने का तात्पर्य केवल यह है कि प्रारम्भ में जो समस्त पूर्वी भारत की भाषा थी वह एक ही थी और उसकी अपनी-अपनी क्षेत्रगत विशेषतायें थीं। इसे बंगाली लोग 'गौड़ीय भाषा और लिपि' की संज्ञा देते हैं और मैथिल लोग मैथिली की। भाषा-विज्ञान के आधार पर यदि छीका-छीकी का अध्ययन किया जाय तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह मैथिली का प्रधान अंग है। स्थानाभाव के कारण उदाहरण देना असम्भव है परन्तु स्वर्गीय श्री भवप्रीतानन्द की पदावली का अध्ययन मेरे कथन को सिद्ध कर देगा। भवप्रीतानन्द को बंगाली और मैथिल दोनों ही अपना मानते हैं।

(ङ) पश्चिमी मैथिली का स्वरूप हमें पश्चिम मुजफ्फरपुर और पूर्वी चम्पारन में देखने को मिलता है परन्तु उस पर भोजपुरी का प्रभाव स्पष्ट है।

दरभंगा, सहरसा, नेपाल तराई आदि में शुद्ध मैथिली का प्रचलन परन्तु इन क्षेत्रों में भी श्रोत्रिय और अन्य वर्णों की बोली में विभेद देखा जा सकता है। मिथिला के जोलहा लोग जो भाषा बोलते हैं उसे 'जोलही बोली' के नाम से लोग जानते हैं। निम्नस्तरीय वर्गों की बोली को बोआलरी, खोट्ट, जोलही, देहाती आदि नाम से पुकारते हैं। शुद्ध मैथिली का प्रचलन तो मात्र

पंचक्रोशी में है, यों उत्तरी सहरसा के लोग भी शुद्ध भाषा का ही प्रयोग करते है। सम्प्रति हिन्दी, अंग्रेजी, वंगला, उर्दू, फारसी, आदि का प्रभाव भी मैथिली पर पड़ा है और विद्यापति कालीन भाषा को अव समझना सवों के लिए उतना आसान नहीं है।

मैथिली वोलने वालो की संख्या लयभग ढाई करोड़ है और यदि तराई के क्षेत्र को भी शामिल कर लिया जाय तो इसकी संख्या साढ़े तीन करोड़ से ज्यादा होगी। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी मैथिली का विशेष महत्व है क्योकि भारत और नेपाल के वीच यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान का एक माध्यम बन सकता है। १२-१३वी शताब्दी से ही मिथिला और नेपाल के बीच का यह सम्वन्ध चला आ रहा है।

अधुनातन साहित्य—

स्मरण रहे कि मैथिली साहित्य अभी भी जीवित है और दिनानुदिन इसकी प्रगति हो रही है। विभिन्न विधाओ में मैथिली में रचनाये हो रही हैं और अभी इसे भारतीय भाषाओं मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका है। स्थानाभाव के कारण इसके अधुनातम साहित्य का विवेचन तो सम्भव नही है परन्तु कुछ शव्दों मे उसका सर्वेक्षण किया जा सकता है। मैथिली मे सभी प्रकार के साहित्य उपलब्ध है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, चम्पू, गद्य, पद्य, कथा, आलोचना, नाटक, विविध साहित्य आदि प्राचीन काल से अव तक लिखे जाते रहे है—प्राचीन साहित्य का अनुवाद भी होता आरहा है। अच्युतानन्द दत्त ने महाभारत और रघुवश का अनुवाद किया है और गौरीशंकर झा ने वगला से मेघनाद-वध का। मौलिक ग्रन्थ के रूप मे वदरीनाथ झा का **'एकायाभिपरिणय'** रघुनन्दनदास का **'सुभद्राहरण'**, तन्त्रनाथ झा का **'कीचक-वध'**, डा० केदारनाथ लाल का **'भारती'**, **'लखिमारानी'** महत्वपूर्ण काव्य रचनाये है। इसके पूर्व भी महाकाव्य के क्षेत्र में मनवोध का **'कृष्णजन्म'** और चन्दा झा और लालदास के **'रामायण'** प्रसिद्ध हो चुके थे। खण्डकाव्य के क्षेत्र मे गुणवन्तलाल दास **(गजग्रहोद्धार)**, लालदास **(गंगालहरी और गणेशखण्ड)**, रघुनन्दनदास **(वीर वालक)** और ऋद्धिनाथ झा **(सति विभूति)** अपना नाम अमर कर चुके है। खण्डकाव्य में भी अनुवाद की परम्परा रही है। काशीकान्त मिश्र मधुप ने **'कांवरगीत'** और लालदास ने **'विरुदावली'** लिखकर एक नई विधा की स्थापना की है। इसके अतिरिक्त मैथिली मे सम्मर, सोहर, तिरहुति, वटगमनी, गोआलरी, रस, मान, समदाउन, लगनी, चैतावर, मलार, योग, उचिती, चौमास, नचारी, महेशवाणी, गोसाओनिक गीत आदि भी लिखे गये है और

लिखे जा रहे हैं। सोहर, बारहमासा, चौमासा आदि मिथिला में अब भी जन-प्रिय हैं। लोकसाहित्य में मैथिली काफी समृद्ध है और इसके लोकसाहित्य का सही मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है। लोरिक, बिहुला, सलहेश, दीना भद्री, सती कुमारी, नैका बंजारा, कमला, कोशी, जीवछ, डाक, व्याध आदि कथाओं से जुड़ा हुआ संगीत अन्वेषियों की प्रत्याशा में है। यों इस दिशा मे डा० व्रजकिशोर वर्मा, तेजनारायण लाल, डा० पूर्णानन्ददास और डा० अणिमा सिंह और प्रो० प्रफुल्लकुमार सिंह 'मौन' ने काफी प्रयास किये हैं परन्तु डा० व्रजकिशोर ने इन लोक साहित्यों के आधार पर जिस ढंग से मैथिली साहित्य को समृद्ध किया है उसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं है। इन पंक्तियों के लेखक ने भी 'कोशी संगीत' और राजा 'बख्तौरसिंह' के गीत का प्रकाशन आज से १५-२० वर्ष पूर्व 'स्पार्क' में किया था। मैथिली लोकसाहित्य और कंठसाहित्य भारत के किसी भी साहित्य से बराबरी कर सकता है। मैथिली की सर्वोत्कृष्ट देन है—गीति-साहित्य जो उमापति (१४वीं शताब्दी) से लेकर अद्यावधि विराजमान है।

गद्य के क्षेत्र में भी इसमें काफी प्रगति हुई है और दिनानुदिन इसका गद्य परिमार्जित होता जा रहा है। गद्य के क्षेत्र में सर्वश्री गंगानाथ झा, अमर-नाथ झा, पंडित बलदेव मिश्र, मुरलीमनोहर झा, रमानाथ झा, राजकमल, परमेश्वर झा, व्रजकिशोर वर्मा, यशोधर झा, नरेन्द्रनाथ दास, भोलालाल दास, व्यासजी, अच्युतानन्द दत्त, लक्ष्मीपति सिंह, जयकान्त मिश्र, राधाकृष्ण चौधरी, शेखर, व्यथित, कृष्णकान्त मिश्र, शैलेन्द्र मोहन झा, 'अमर', 'किरण' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कविता के क्षेत्र में यात्री, सुमन, पं० राजेश्वर झा, अमर, मधुप, किरण, किसुन, राजकमल, विभाकर, मायानन्द, श्रीश, रेणु, दीपक, 'इन्दु', 'मौन', मणिपद्म, जीवकान्त, किसलय साहित्यालंकार, 'प्रवासी', इन्द्र-कान्त, सोमदेव, 'शेखर', हंसराज, कीर्तिनारायण मिश्र, वीरेन्द्र मल्लिक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। विभाकरजी की अपनी अलग शैली और प्रथा है।

अत्याधुनिक काल में मैथिली में विभिन्न विधाओं में रचना शुरु हो चुकी है और अनुवाद के अतिरिक्त मैथिली मे उपन्यास, कथा-साहित्य, संस्मरण, यात्रा, दार्शनिक चिन्तन के सम्बन्ध में नई रचनायें सामने आ रही हैं। श्री मौन ने नेपाल तराई (मोरंग) में मैथिली साहित्य के विभिन्न प्रचलित रूपों का संकलन और प्रकाशन किया है। उपन्यास के क्षेत्र में सर्वश्री हरिमोहन झा, व्रजकिशोर वर्मा, यात्री, परमानन्द झा, उपेन्द्र झा व्यास, राजकमल, उमानाथ झा, मायानन्द मिश्र, रामानन्द रेणु, जीवकान्त, प्रभासकुमार चौधरी,

रूपकान्त, किसुन, अमर, विनोद, जयनारायण मल्लिक आदि ने अपना नाम स्थापित किया है—साथ ही इन लोगों ने गल्प साहित्य में भी अपने लिये स्थान बना लिया है। संस्मरण, यात्रा, दार्शनिक चिन्तन, इतिहास, आलोचना आदि के क्षेत्र में सर्वश्री भोलालाल दास, नरेन्द्रनाथ दास, जयधारीसिंह, वृद्धि-धारीसिंह, रमानाथ झा, शैलेन्द्रमोहन झा, हरिमोहन झा, सुभद्र झा, जगदीश चन्द्र झा, राधाकृष्ण चौधरी, पं० राजेश्वर झा, उपेन्द्र ठाकुर, कृष्णकान्त मिश्र, किरण, अमर, प्रेमशंकर सिंह, विशेश्वर मिश्र, ललितेश्वर झा, वेदनाथ झा, विश्वनाथ झा, हितनारायण झा आदि के नाम उल्लेखनीय है।

मैथिली मे नाटक, संकलन, आलोचना के अतिरिक्त अब ऐसी कोई भी विधा नही है जिसमे कि मैथिली में रचना न होती हो। साहित्य अकादमी से मान्यता प्राप्त हो जाने के बाद मैथिली में रचना की बाढ सी आगई है तथापि प्रकाशन की कोई भी अच्छी व्यवस्था मैथिली में नही है। जो पत्र-पत्रिकाऐं है वे भी व्यक्ति विशेष या गुट विशेष के अधीन है और अच्छे लोगों का उससे बहुत कम सम्पर्क है। मैथिली में ज्यादातर अच्छी रचनाये अब भी अप्रकाशित हैं। आलोचक पूर्वाग्रह से ग्रस्त है और आलोचना की सही दिशा अब तक मैथिली मे नहीं बन पाई है। कुछ लोगों के लिये मैथिली जीविकोपार्जन का साधन है, कुछ लोगो के लिये राजनीति का और कुछ लोगो के लिये परीक्षोपयोगी बातो का। मैथिली पाठक का स्तर भी अभी अन्य भाषा की अपेक्षा नीचे है। अतः कोई अच्छी या गम्भीर चीज न तो लिखी जा सकती है और यदि लिखी गई है तो अप्रकाशित पड़ी है। मैथिली के कर्णधारो के यहाँ मैथिली सबसे कम बोली और पढी जाती है तथा सबसे कम मैथिली की पुस्तक खरीदी जाती है।

यह एक पक्ष है जो अधुनातन मैथिली साहित्य के अध्ययन के सिलसिले मे विचाराधीन है। ३ करोड़ की भाषा की सम्भावनाये तो अवश्य है कारण जब मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम होने जा रहा है तो इसका विकास होगा ही और हो भी रहा है परन्तु अभी जो स्थिति है वह चिन्तनीय है। विभिन्न विषयो पर पुस्तको का अभाव है और पुस्तक लिखने वाले के समक्ष कोई उत्स किंवा प्रेरणा का कोई स्रोत भी नही दिखलाई पडता है। बिहार की सभी भाषाओं मे सशक्त और साहित्यिक भाषा होने के बावजूद इसमे अभी अभाव तो बहुत है परन्तु निराश होने की आवश्यकता नही है। इसके अध्ययन-मनन से स्पष्ट है कि इसका भविष्य उज्ज्वल है।[1]

१. (इस निबन्ध में कई स्थानो पर मै लेखक के विचारों से असहमत रहा हूँ।

लेखक ने तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर एवं बढ़ा-चढ़ा कर रखा है। जैसे—मैथिली भाषा का क्षेत्र, उसकी जनसंख्या तथा मैथिली की सुरसापरक नीति के सन्दर्भ में बहुतेरे विद्वानों का मत लेखक के मत से नहीं मिलता है। वस्तुतः शुद्ध मैथिली तो मधुबनी शहर के १० मील के घेरे में पड़ने वाले आयताकार क्षेत्र में ही प्रचलित है। मधुबनी जिला के मैथिलों को छोड़ अन्य जातियाँ उस क्षेत्र में भी मैथिली न बोलकर वज्जिका, जोलही या पूर्णिया सहरसा में अंगिका बोलती हैं।

मधुबनी के चारों तरफ १० मील के आयताकार घेरे को 'पंचकोसी' कहते हैं। मैथिलों के विवाहार्थ एक विराट शिविर सौराठ में लगता है जो पंचकोसी में ही है। —सम्पादक)

देवघर की बोली

—श्री मोहनानन्द मिश्र,
बी.ए. (आनर्स), एम.ए. द्वय

देवघर का प्राचीन नाम वैद्यनाथ क्षेत्र है। इसे वनखण्ड भी कहा जाता था। वनो से आवृत्त इस भूभाग पर कौन-सी भाषा प्रचलित थी, यह एक प्रश्नवाचक समस्या है। तथाकथित युग के लिखित इतिहास के अभाव मे उस समय की लोकभाषा का अनुमान सटीक नही बैठता है। इस क्षेत्र पर आदित्य सेनगुप्त से लेकर दक्षिण के चौल और पाल तथा सैनवश के लोगों का आधिपत्य था। वैद्यनाथ मन्दिर के शिलालेख से आदित्य सेनगुप्त की संस्कृत भाषा, हरिलाजोड़ी मे नागपालदेव तथा तपोवन मे रामपालदेव के लेख की सस्कृत भाषा की प्रधानता का भान होता है। मात्र सेनवंश के राजाओ ने लोक-भाषा के महत्व को स्थापित किया। उस समय यह स्थान जनागम से दूर था। जनजीवन का प्रचलन तो अवश्य ही रहा होगा; लेकिन व्यापक आबादी की कमी थी। ग्रीक इतिहास मे जिस सौरिया की चर्चा है, वह इसी क्षेत्र से सम्बन्धित था। सौरिया मेलर और सौरिया पहाड़िया दोनो ही यहाँ के निवासी थे; लेकिन इनकी भाषा का प्रयोगगत प्रभाव देवघर की बोली मे अदृश्य है। वर्तमान मे यहाँ की बोली आधुनिक मिलावट से सम्पृक्त है। श्री ग्रियर्सन ने तो यहाँ की बोली के सम्बन्ध मे संताली, हिन्दुस्तानी, बंगला और माल्टो की प्रधानता स्वीकार की है। संताल परगना के उत्तरी भाग मे रहने वाले सौरिया मेलर बोलते थे और दक्षिण के निवासी सौरिया पहाड़िया का प्रयोग करते थे। वर्तमान देवघर की बोली पर इसके प्रभाव को अगीकार करने मे आपत्ति नही हो सकती है। यहाँ की बोली पर बगला और मैथिली का प्रभाव पडा।

सन् १३७२ ई० के उपरान्त हरिसिंह देव के समय में दरभगा से कुछ मैथिल ब्राह्मण यहाँ आये। इस समय इनकी भाषा मैथिली ही थी जो बंगला से नाम मात्र का अलगाव रखती है। इससे पूर्व यहाँ की बोली स्थानीय पहाड़ियों के निवासियों की ही बोली थी। पठान-शासन-काल मे यहाँ की भाषा में फारसीपन का सम्मान था। सोलहवी सदी के शेषांश में मुगल वंश का शासन था। अकबर का सेनापति मानसिह बंगाल विजय के क्रम मे यहाँ आया था। इस समय शासन की भाषा फारसी थी। मानसिह की डायरी मे

इसके सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है; लेकिन बोली के रूप में मैथिली की ही प्रधानता थी, इस पर फारसी के दरमाह, हुजूर, तनख्वाह, खिदमत, मुफस्सिल, नेक, खलाह का व्यवहार चल पड़ा था।

देवघर की बोली में बंगला का समग्र-दर्शन १७०१ ई० से प्रारम्भ होता है। इस समय बंगाल के कुछ राढ़ीय ब्राह्मण भी यहाँ आये और बंगला-सह-मैथिली का मिश्रित प्रयोग प्रारम्भ हुआ। बाद में इस नगर के दक्षिण में बंगाली और पूरब की ओर मैथिलीभाषी आये। यहाँ की बोली बंगला से अधिक विन्यास ग्रहण करने लगी। आज से ३०० वर्ष के लेख में जो वाक्य विन्यास और भाषा है, उसका नमूना देखिये: "भोग दखल करू। जोत जोताऊ।" यह एक सनद की भाषा है। इस बोली में मैथिली के अतिरिक्त पूर्वी बोली का प्रयोगाभास होता है।

पलासी की लड़ाई के बाद अंगरेजों की अंगरेजी का जोर प्रारम्भ हुआ। सिंहभूम आदि क्षेत्रों से यहाँ लाकर संतालों को बसाया जाने लगा। इनकी बोली का भी प्रभाव मैथिली और बंगला पर पड़ा; लेकिन यह प्रभाव नाम मात्र का था, जैसे—

संताली		देवघर की बोली	अर्थ (हिन्दी)
जोम	....	जिमभो	भोजन करना।
ठिल्ली	....	ठिल्ली	मिट्टी का जल पात्र।
बूरसी	....	बोरसी	मिट्टी का अग्निपात्र।
बिरबान्टा	....	बीरबका	वीर पुरुष।
लुहा	....	लोहिया	सब्जी का लौह बर्तन।

संतालों के साथ यहाँ के पुरोहित वर्ग का कम सम्बन्ध था। इनके अतिरिक्त भुइयाँ घाट वालों की बोली का अलग महत्व था। देवघर के समीप करमाली और महाली नामक दो बोलियाँ भी प्रचलित थी। इन दोनों से भी देवघर की बोली कम प्रभावित नहीं है।

यहाँ की बोली में इतनी मौलिकता थी कि नवाबी शासन-काल में भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। यह कभी भी किसी के अनुरूप बनी नहीं, अपितु इसी के अनुकूल सब बनती गई।

इस क्षेत्र पर बुन्देलखण्ड के चंदेल राज्य खैरा का भी अधिकार था; लेकिन बुन्देलखण्डी का इस पर कोई भी असर नहीं हुआ।

इधर कई वर्षों के अन्तराल में देवघर की बोली में बाहरी लोगों का भी समावेश होने लगा था। देश के विभिन्न भागों से आये हुए लोगों के साथ

सम्पर्क होने के कारण मैथिली का स्थानीयकरण हो गया। बंगला तथा अन्य स्थानीय बोली के कारण जनभाषा का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित हो गया। १७६१ ई० में यहाँ मात्र दो सौ ब्राह्मणों का घर था। इस काल से १८७१ ई० तक देवघर की बोली सँवरती गई। हिन्दी का भी प्रचार होने लगा था। लिपि कयथी तथा बंगला थी लेकिन माध्यम की भाषा हिन्दी ही थी।

देवघर की बोली का विशेष विकास तब होने लगा जब १८८२ ई० से यहाँ अधिकाधिक जनागम होने लगा, क्योंकि इस समय वैद्यनाथधाम रेलवे स्टेशन बन चुका था। बोली अब आधुनिकता के रंग में रँगने लगी थी। अगरेजीनुमा वाक्य का गठन होने लगा। अन्य भाषाओ तथा बोलियों के छिटपुट शब्दों से इसका परिचय होने लगा।

वर्तमान मे सबका मोह छोड़कर एक स्वतंत्र मार्ग पर चलने लगी थी। यह मैथिली से उत्पन्न अवश्य है; लेकिन मैथिली नही है। जिस प्रकार मागधी मे उत्पन्न बंगला, मैथिली और असमी को अब मागधी भाषा की संज्ञा से नहीं सम्बोधित करते हैं अपितु उन्हें स्वतन्त्र रूप से बंगला, मैथिली और असमी कहते हैं ठीक इसी प्रकार देवघर की बोली अब एक स्वतन्त्र बोली है। यह बोली अनेक बोलियों के संघर्षो के शिशु के समान है।

ध्वनि और वाक्य-विन्यास दोनो ही दृष्टि से वह मौलिक है। इसकी लिपि देवनागरी है। लोकप्रियता के कारण इसमें सांस्कृतिक रूप का निर्माण हो रहा है। श्री भवप्रीतानन्द ओझा, श्री उमानन्द और श्री रामशंकर मिश्र पंकज प्रभृति साहित्यकार इसके सांस्कृतिक अवदान हैं। देवघर की बोली मे कुछ ऐसे प्रयोग है जिनका सम्भवतः अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है, जैसे—

देवघर की बोली	अर्थ (हिन्दी)
पन्हावे छः	गाय दूहने के पूर्व आनन्द की स्थिति।
ऐ जलत	अभिमान, गौरव।
डिडीवाडी	दो वर्ष के बच्चे की उठने-बैठने की क्रिया।
सिझल	पानी में उबला हुआ।
टिलोटिल	बच्चों का खेल विशेष।

सुतराम् देवघर की बोली एक प्रायोगिक परम्परा की बोली है। इसकी समृद्धि हो रही है। लोक बोली होने के कारण इसमें लोक साहित्य और सामाजिक उन्नयन के रचनात्मक कार्य हो रहे है।

(आदिवासी)

नागपुरी भाषा और साहित्य

—प्रो० विसेश्वरप्रसाद केशरी

छोटानागपुर की अनेक बोलियों में नागपुरी एक प्रमुख बोली है जिसे सदानी, सदरी, गउँवी, गँवारी, नगपुरिया आदि भी कहा जाता है। पँच-परगनिया, खोरठा और कुरमाली आदि इसी के किंचित् भिन्न बंगला और मगही मिश्रित रूप हैं। इसका साहित्य अत्यन्त सुन्दर, सरस और समृद्ध है। फिर भी बहुत सारे लोग इसके वास्तविक रूप एवं गरिमा से अपरिचित हैं। कारण यह है कि अभी तक इसका यथोचित अध्ययन नहीं हो सका है। मैं लगभग १२-१३ वर्षों से इसके संकलन एवं अध्ययन में निरत हूँ। इसके सम्बन्ध में मुझे जो कुछ निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं, उन्हें संक्षेप में आपके समक्ष रखूँगा।

नागपुरी भारोपीय परिवार की पूर्वी शाखा के मागधी प्राकृत से उत्पन्न एक आधुनिक लोकभाषा है। यह मूलतः छोटानागपुर के प्राचीन आर्य एवं आर्य-प्रभावित जातियों की भाषा रही है। किन्तु अब तो यह छोटानागपुर की सबसे प्रचलित भाषा (लिंगुआ फ्रैंका) बन गयी है और आदिवासी तथा गैर-आदिवासी सभी इसका समान रूप से प्रयोग करते हैं।

नागपुरी भाषा का मुख्य क्षेत्र स्थूल रूप से छोटानागपुर और उसके दक्षिण एवं पश्चिम का कुछ भू-भाग है। उड़ीसा में गांगपुर, बौनाइ, बामड़ा, क्योंझर और मयूरभंज तक तथा मध्यप्रदेश में जशपुर और सुरगुजा तक इसका प्रसार है। इस भाषा-क्षेत्र के उत्तर में मगही, पूर्व में बंगला, दक्षिण में उड़िया एवं पश्चिम में छत्तीसगढ़ी तथा भोजपुरी भाषा के क्षेत्र हैं। इस प्रकार नागपुरी लगभग २६,००० (छब्बीस हजार) वर्गमील में बोली जाती है। इस विस्तार के कारण ही नागपुरी के पूर्वी एवं पश्चिमी रूपों में सतही तौर पर कुछ अन्तर दीखता है, किन्तु इसकी तात्त्विक एकता सर्वथा असंदिग्ध है।

१९६१ की जनगणना के अनुसार नागपुरी भाषा-भाषियों की संख्या सब मिलाकर लगभग १०,१५,२८६ (दस लाख, पन्द्रह हजार, दो सौ छियासी) व्यक्ति निर्दिष्ट हैं। किन्तु यह संख्या सही नहीं लगती। अगर नागपुरी को मात्र छोटानागपुर की ग्रामीण जनसंख्या की बोली माना जाय, तो भी उसके बोलने वालों की संख्या कम-से-कम ७७,४०,८९६ (सतहत्तर लाख, चालीस हजार, आठ सौ छियानबे) व्यक्ति होनी चाहिये, क्योंकि १९६१ की जनगणना के अनुसार ही छोटानागपुर के ग्रामवासियों की संख्या ७७,४०,३९६ है।

तात्पर्य यह कि क्षेत्र-विस्तार एवं बोलने वालो की संख्या की दृष्टि से नागपुरी अपनी बहुत सारी बहनों यानी लोक-भाषाओं से किसी मानी मे कम नहीं है।

किसी भाषा का गौरव उसके साहित्य की समृद्धि से होता है। इस दृष्टि से भी नागपुरी में विस्मयजनक सामर्थ्य है। नागपुरी का समृद्ध साहित्य अपनी सम्पूर्ण विविधता के साथ सुन्दरता, सरसता एवं कलात्मकता में अद्भुत है। सबसे विस्मयजनक और विशिष्ट बात यह है कि नागपुरी मे लोक-गीतों के अतिरिक्त शिष्टगीतो की भी एक सुदृढ एवं स्वस्थ परम्परा है। इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इसके नये-पुराने कवियों एव लेखको की संख्या, जिनका हमें पता चलना है, पाँच सौ से अधिक है। इस सम्बन्ध में मेरी 'नगपुरिया कविमनक सूची' नामक पुस्तिका देखी जा सकती है। दूसरी लोक-भाषाओ मे कवि एवं लेखको की ऐसी सुदृढ़ परम्परा कम देखने को मिलती है।

नागपुरी साहित्य का सबसे कोमल और भास्वर अश है—गीत। नागपुरी गीत लाखो की संख्या मे आज भी जनकठो मे जीवित है। इन गीतों में राग-लय-रस की अनेकरूपता के साथ विषय की मोहक विविधता और भावों की आकर्षक उदात्तता भी है। नागपुरी गीतकारो ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक सभी विषयों पर अपनी दृष्टि दौड़ायी है। एक ओर राम, कृष्ण, शिव और दुर्गा तथा ईसाइयो की सगुण भक्ति धारा है, तो दूसरी ओर कबीर-पंथियों की निर्गुण उलटबासियां एवं दृष्टकूट के पद-पर्वत; एक ओर शृङ्गार की सरस उन्मादित सरिता है, तो दूसरी ओर करुणा का सागर; एक ओर जीवन की यथार्थ कटुताओं की तिक्तता है, तो दूसरी ओर हास्य की मधुरता। प्रकृति धात्री की गोद मे पली नागपुरी की इसी सौन्दर्य गरिमा से वशीभूत होकर प्रो० केसरी कुमार ने इसे 'गीतों की रानी' कहा है। नागपुरी गीतों के लिये यह उपाधि अक्षरशः सत्य है।

नागपुरी शिष्ट गीतो की परम्परा कब से शुरू हुई अभी ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। शोध अपेक्षित है। किन्तु पावस गीत के छदो को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि नागपुरी गीतो मे वीर गाथात्मक परम्परा भी रही होगी। फिर भक्तिकाल मे इसका विकास हुआ होगा, लेकिन विकास की यह रेखा इन कालो मे निश्चय ही सूक्ष्म और सक्षिप्त रही होगी। कदाचित् यही कारण है कि उन प्राचीन कवियो एव कृतियो को आज पहचानना कठिन

है। सम्भवतः इनकी बहुत-सी कड़ियाँ टूटकर अब लोक-गीतों में ढल या बिखर गयी हैं।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में नागपुरी गीतों का अप्रत्याशित विकास हुआ दीखता है। नागपुरी के सद्यः ज्ञात दिग्गज कवि इसी काल के निर्माण हैं। ऐसे कवियों में हनुमान, बरजु, जयगोविंद, कमल, सोबरन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

हनुमान, बरजु आदि की परम्परा को घासी, कंचन, दयपाल, विनन्द, गौरांगिया, मदन, दीना, अनूप आदि ने आगे बढ़ाया। इनकी प्रमुखता यह है कि इन्होंने नागपुरी गीतों की कलात्मकता की पूरी रक्षा करते हुए, लोक-भाषा के अधिक निकट लाया।

इस पीढ़ी के बाद नागपुरी गीतों को सम्पन्न करने वाले महान् गीत-कारों में जगनिवास नारायण, धनीराम बक्सी, भवप्रीता, कृपाल चन्द्र, फादर नवरंगी, लालमनमोहन नाथ आदि प्रमुख हैं। इनके गीतों में आधुनिक चेतना की उषाकालीन लाली भी दृष्टिगत होने लगती है।

नागपुरी गीतों में आधुनिक चेतना का विशेष स्फुरण द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से हुआ। इसके लोकप्रिय गीतकार शेख अलीजान, रमजान, मृत्युंजय नाथ आदि रहे हैं।

सम्प्रति नागपुरी गीतों को अपनी साधना से स्वर देने वाले विशिष्ट कलाकारों में **सहनी उपेन्द्रपाल 'नहन', लक्ष्मण गोप, श्रीनिवास पानुरी, विश्व-नाथ रवानी, दुर्गानाथ राय, बलदेव साहु, नईमुद्दीन मिरदाहा, बटेश्वर साहु, योगेन्द्रनाथ तिवारी, प्रफुल्लकुमार राय** आदि हैं। अब तो नागपुरी में सर्वथा नयी किस्म की कविताएँ भी लिखी जाने लगी हैं जिसे शुरू करने का श्रेय निस्सन्देह प्रफुल्लकुमार राय को है।

शिष्टगीतों के समानान्तर ही नागपुरी लोकगीतो की भी सरल, मधुर धारा अक्षुण्णतः प्रवाहित होती चली आ रही है और उसमें भी अब नयी चेतना का उदय होने लगा है।

गीतों की तुलना में नागपुरी का गद्य साहित्य कम समृद्ध है। नागपुरी गद्य का सबसे प्राचीन लिखित रूप यत्र-तत्र मन्दिर आदि के अभिलेखों एवं पुराने पट्टों तथा चिट्ठी-पत्रों में प्राप्य है। पुस्तक के रूप में नागपुरी गद्य का पहला प्रयोग सम्भवतः ईसाई मिशनरियों ने आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व किया। इन लोगों ने नागपुरी में अपने धर्मग्रन्थों का अनुवाद और प्रचार किया। आगे चलकर धनीराम बक्सी ने अपनी 'बड़ाइक' पत्रिका के माध्यम

से इसकी सेवा की। आज नागपुरी गद्य को सम्पन्न करने मे अनेक प्रतिभाएँ साधना-रत हैं जिनमे **फादर नवरंगी, योगेन्द्रनाथ तिवारी, राधाकृष्ण, सुशील कुमार, प्रफुल्लकुमार राय, विष्णुदत्त साहु** आदि विशेष उल्लेखनीय है। प्रफुल्लकुमार राय का 'सोनझईर' नागपुरी गद्य के इतिहास मे एक दीप-स्तभ की तरह स्मरणीय रहेगा।

सम्प्रति नागपुरी पूरे वेग से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही है। आकाशवाणी राँची, राँची विश्वविद्यालय और नागपुरी भाषा परिषद् की स्थापना और सेवाओ से इसे प्रभूत बल मिल रहा है। 'साप्ताहिक आदिवासी' यहाँ के अन्य भाषा-साहित्य के साथ इसके उत्थान मे भी यथोचित सक्रिय है। ईसाई मिशनरियो ने इसके व्याकरण लिखे है। फादर नवरंगी ने इसके व्याकरण को पूर्णता दी है, साथ ही शब्द-कोष का निर्माण भी किया है। प्रो० केसरीकुमार ने 'नागपुरी भाषा और साहित्य' नामक अपने निवन्ध के द्वारा इसका क्षितिज-विस्तार किया है। और अब तो इस पर शोध भी होने लगे है। प्रो० श्रवणकुमार गोस्वामी इसके शिष्ट साहित्य का अनुसधान कर रहे है, मैं शृङ्गार गीतों का। कई अन्य सज्जन भी इसके सकलन और अध्ययन मे निरत है। इन सब शुभ लक्षणों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि नागपुरी की महान् आत्माओं का शीघ्र ही उद्धार होगा और छोटानागपुर की उन्नति के साथ नागपुरी भाषा-साहित्य का भी उत्तरोत्तर उत्थान होता जायगा।

(आदिवासी (साप्ताहिक) १६ दिसम्बर १६६८ वर्ष २३, अंक ४३)

परिशिष्ट (१)

जनपदीय भाषाओं के कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

अंगिका—

१. मात फूल (कहानी)—श्री परमानन्द पाण्डेय ।
२. देस के वढ़ावऽ हो (कहानी) ,,
३. किसान के वढ़ावऽ (नाटक)—श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' ।
४. सर्वोदय समाज (,,) ,,
५. खेती के तरीका—श्री मेवालाल शास्त्री ।
६. अंगिका के फैकड़े एवं लोरियाँ—श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' ।
७. अंगिका जनमार ,,
८. फूल फूलैलै (कहानी संग्रह) ,,
९. अंग-लता (कविता संग्रह) ,,
१०. विशाखा (उपन्यास) ,,
११. भोरकऽ लाली (अंगिका काव्य) ,,
१२. अंगिका लोकोक्ति—डॉ० अभयकान्त चौधरी ।
१३. अंग-दर्शन —डॉ० तेजनारायण कुशवाहा ।
१४. अंगिका शब्द-कोष—सम्पा०—डॉ० अभयकान्त चौधरी एवं श्री नरेश पाण्डेय 'चकोर' ।
१५. अंगिका संस्कार-गीत—सम्पा०—वैद्यनाथ पाण्डेय एवं अन्य ।

अंगिका साहित्य के प्रमुख प्रकाशक—

शेखर प्रकाशन, बोरिंग रोड, (पश्चिम) पटना—१

नागपुरी—

१. नागपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० विसेश्वर प्र० केशरी ।
२. नागपुरी और उसके बृहद् त्रय—डॉ० श्रवणकुमार गोस्वामी ।
३. नागपुरी भाषा का संक्षिप्त परिचय—पं० योगेन्द्रनाथ तिवारी ।
४. सोनझड़र—श्री प्रफुल्लकुमार राय ।
५. रिगचिगिया ,,
६. लव-कुश चरित—श्री बलदेव साहु ।
७. दू-टाइर : बीस फूल—प्र० सम्पा०—डॉ० रामखेलावन पाण्डेय ।
८. मेघदूत (अनुवाद)—श्री श्रीनिवास पानुरी ।

९ वीर राघव चरित (पहला भाग)—श्री गौरीनन्दन शर्मा।

नागपुरी साहित्य के मुख्य विक्रेता—

(१) सिघई ब्रदर्स, कोतवाली रोड: राँची।

(२) साहित्य कुटीर, बरबा अड्डा, कल्याणपुर, धनबाद।

वज्जिका—

१. संचय—सम्पा०—प्रो० उमाकान्त वर्मा, श्री विश्वनाथ सिंह।
२. वज्जिका भाषा : मुहावरे और कहावतें—डॉ० अजित ना० सिंह 'तोमर'
३. परतछ के परमान की ? (कहानी संग्रह) ,,
४. झाँझ के झनक (लोकगीत और कविताएँ)—श्री मुनीश्वर राय 'मुनीश'
५. बूझो तो क्या (पहेलियाँ) ,,
६. वज्जि संघ और वज्जिका का लोक साहित्य ,,
७. वज्जिका लोक साहित्य : शब्द-कोष ,,
८ पनसोखा (व० गीत संग्रह)—श्री सभाजीत सिंह।
९ वज्जिका भाषा और साहित्य—डॉ० सियाराम तिवारी।
१० विहाग (गीत संग्रह)—श्री रामानन्द।
११. भोजपुरी और हिन्दी (मैथिली, मगही, वज्जिका, अंगिका और नेपाली परिशिष्ट पूर्वक)—डॉ० शुकदेवसिंह।
१२. साँच मे आँच की ? (व० नाटक)—श्री देवेन्द्र राकेश।
१३. वैशाली के लाज (एकांकी संग्रह) ,,
१४. सोना के बँसुली : माटी के गीत—डॉ० अवधेश्वर 'अरुण'।
१५ जागऽ हो वज्जी के सूतल निफिक्किर—श्री रमण शाण्डिल्य।
१६. दुरवाञ्छित ,,
१७ पिघलइत इस्पात और हिरदे के बात—सम्पा०—निर्मल मिलिन्द एवं रमण शाण्डिल्य।
१८. निर्मल के लोकगीत—सम्पा०—निर्मल मिलिन्द।
१९. हिलोर (गीत संग्रह)—श्री चन्द्रशेखर श्रीवास्तव।
२०. बजा बिगुल उत्तर पूरब में—श्री अजित ना० सिंह 'तोमर'।
२१. विहान—श्री रघुनाथ विमल।

वज्जिका साहित्य के मुख्य विक्रेता—

(१) वसुंधरा प्रकाशन, द्वारा पुस्तक मन्दिर, सीतामढ़ी।

(२) अहल्या प्रकाशन—पताही, मुजफ्फरपुर।

(३) गुप्ता पुस्तक भवन, सीतामढ़ी।

(४) लोक-संस्कृति संग्रहालय—हाजीपुर (श्री तेजप्रताप चौहान)।

भोजपुरी—

(काव्य और कविता संग्रह)

१. गो-विलाप छन्दावली—श्री दूधनाथ उपाध्याय।
२. हिलोर—श्री महेन्द्र शास्त्री।
३. धरती के गीत—सं०—श्री रमेशचन्द्र सिन्हा।
४. कोइलिया—डॉ० रामनाथ पाठक 'प्रणयी'।
५. विनिया विछिया—श्री रामविचार पाण्डेय।
६. चम्पारण के गीत—श्री बलदेव प्र० श्रीवास्तव।
७. ललकी किरिनिया के कोर—श्री गजानन प्र०।
८. धरती के गुहार—प्रो० उमाकान्त वर्मा।
९. हिमालय ना झुकी कबहूँ—श्री मुक्तेश्वरनाथ तिवारी 'बेसुध'।
१०. बबूल के फूल—श्री रमाकान्तसिंह 'रमेश'।
११. सेमर के फूल—श्री मोती।
१२. बाजे मोरा पायल—श्री गजानन प्र०।
१३. मकोलवा—महेन्द्र शास्त्री।
१४. माटी के महक—चौ० कन्हैया प्र० सिंह।
१५. भोजपुरी के कवि और काव्य—स्व.महाराज कुमार दुर्गाशंकर प्र.सिंह'नाथ'
१६. आधुनिक भोजपुरी गीत और गीतकार—स०—राहगीर।
१७ भोजपुरी के नये गीत और गीतकार ,,

(नाटक साहित्य)

१८. नयकी दुनिया—महापंडित राहुल सांकृत्यायन।
१९. जुनमुन नेता ,,
२०. मेहरारुन के दुर्दशा ,,
२१. ई हमार लडाई ह ,,
२२. देश रक्षक ,,
२३. लोहासिंह—प्रो० रामेश्वर सिंह 'काश्यप'।
२४ तीन नाटक—म० राहुल सांकृत्यायन।
२५. नया जमाना—श्री शिवचन्द्र ओझा।
२६. परिछाँहीं—श्री रसिकबिहारी ओझा निर्भीक'

(उपन्यास)

२७ बिन्दिया—रामनाथ पाण्डेय।
२८. सेमर के फूल—डॉ० बच्चन पाठक 'सलिल'।
२९. पुरी सुबह . पुरी साँझ—श्री विजेन्द्र 'अनिल'।

(कहानी संग्रह)

३०. जेहल क सनदि—स्वामी विमलानन्द सरस्वती ।
३१ भोजपुरी कहानी सग्रह—चन्द्रभूषण सिन्हा ।
३२. खैरा पीपर कबहूँ ना डोले—श्री विधुर ।
३३. छोटी मुरी गाजी मियाँ—श्री चन्द्रभूषण सिन्हा ।
३४. सरग के सीढी—श्री बेसुध ।
३५ प्रेम कथा—श्री राधेश ।

(निबन्ध संग्रह)

३६ के कहल चुनरी रँगालऽ (ललित निबन्ध)—प्रो० विवेकी राय ।
३७. जीरादेई से सदाकत आश्रम तक—श्री राधेश ।
३८ लहालोट—सम्पा०—डॉ० सलिल ।

(रेखाचित्र)

३९. सुरतिया ना बिसरे—श्री 'निर्भीक' ।
४० चतुरी चाचा की चटपटी चिट्ठियाँ, भाग—१—श्री 'बेसुध' ।
४१. ,, भाग—२ ,,
४२. फोकट में सैर (यात्रा विवरण)—सं०—डॉ० सत्यदेव ओझा ।
४३ रामेसर धाम यात्रा—सावलिया बिहारीलाल वर्मा ।

(कोश)

४४ भोजपुरी भाषा का शब्द-कोश—एल. सेट जोसेफ मिशन हाउस, मोतीहारी
४५ कहावत कोश—डा भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' और विक्रमादित्य मिश्र

भो० सा० के प्रमुख पुस्तक विक्रेता—

(१) भोजपुरी संसद, जगतगंज, वाराणसी ।
(२) जमशेदपुर भोजपुरी साहित्य परिषद्, टेल्को कॉलनी, जमशेदपुर ।
(३) भोजपुरी परिवार, पटना— ३ ।

मगही—

१. मगही-लोक-साहित्य—डॉ० सम्पत्ति अर्याणी ।
२ मगही-व्याकरण-कोश ,,
३ रमरतिया (उपन्यास)—श्री बाबूलाल 'मधुकर' ।
४ मगही-व्याकरण—डॉ० श्रीकान्त शास्त्री ।
५. मगही-साहित्य का इतिहास—डॉ० सरयूप्रसाद ।
६ मगही-परिचय कोश ,,
७ बेलपत्तर (मगही काव्य सकलन)—सं०—डॉ० श्रीकान्त शास्त्री ।

८. मगही-गद्य—डॉ० सरयूप्रसाद ।
९. मगही-ध्वनि तथा वर्तनी (निबन्ध)—डॉ० सरयूप्रसाद ।
१० बिसेसरा (उपन्यास)—राजेन्द्रकुमार यौधेय ।

प्रकाशक—(१) मगध शोध संस्थान; अम्बेर, बिहार शरीफ, पटना ।
(२) बिहार मगही मण्डल, पटना—५ ।

मैथिली—

(काव्य)

१. विद्यापति—भाग-१—राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना—४ ।
२. ,, ,, २ ,, ,,
३. कीर्तिलता—डॉ० उमेश मिश्र ।
४. कीर्ति पताका ,,
५. विद्यापति—श्री बी० बी० मजुमदार ।
६. मैथिली गीत रत्नावली—श्री बदरीनाथ झा ।
७. कीचक-वध—श्री तन्त्रनाथ झा ।
८. सावन-भादव—श्री सुरेन्द्र झा 'सुमन' ।
९ प्रतिपदा ,, ,,
१०. अर्चना ,, ,,
११ ऋतु-शृङ्गार ,, ,,
१२ झंकार—श्री काशीकान्त मिश्र 'मधुप' ।
१३. गुदगुदी—श्री चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर' ।
१४ विजय यात्रा (संकलन) ,,
१५ भारती—श्री केदारनाथ लाभ ।
१६. माटी क दीप—श्री आरसी प्र० सिंह ।
१७ चित्रा—श्री यात्री ।
१८. पत्रहीन नग्न गाछ – श्री यात्री ।
१९ पद्य प्रसून (संकलन)—मै० सा० परिषद् ।
२० कविता कुसुम (संकलन)—श्री रमानाथ झा ।
२१ दिशान्तर – श्री मायानन्द मिश्र ।
२२. ममता गावे गीत—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।
२३ तरंगंगा ,,
२४. कालध्वनि—श्री सोमदेव ।
२५. कुहकल कोइलिया—श्री प्रदीप ।

२६. थारू लोकगीत—श्री प्रफुल्लकुमार सिह 'मौन' ।
२७. सोहर और खेलौना—डॉ० अणिमा सिह ।

(उपन्यास)

२८. कन्यादान—प्रो० हरिमोहन झा ।
२९. द्विरागमन ,,
३०. नवतुरिआ—श्री यात्री ।
३१ पारो ,,
३२. बलचनमा ,,
३३. भोरुकवा ,, धीरेंद्र ।
३४. पृथ्वीपुत्र ,, ललित ।
३५. कुमार ,, उपेन्द्रनाथ झा व्यास ।
३६. दू पत्र ,, ,,
३७. बिहारि पात पाथर—श्री मायानन्द मिश्र ।
३८. नहला पर दहला ,, रूपकान्त ठाकुर ।
३९. दू कुहेसक बाट ,, जीवकान्त ।
४०. आदि कथा ,, राजकमल ।
४१. चानो दाइ ,, सोमदेव ।
४२. स्वर्णिम छाया—डॉ० अणिमासिह ।
४३ बड़की दाई—श्री सुरेन्द्र झा 'सुमन' ।

(कथा)

४४ खट्टर काकाक तरग—श्री हरिमोहन झा ।
४५. प्रणम्य देवता ,,
४६. कथा सग्रह ,, रमानाथ झा ।
४७ मोमकनाथ—स्व० रूपकान्त ठाकुर ।
४८- धूकल केरा ,,
४९ अन्हार इजोत—श्री गगेश गुंजन ।
५०. ललका पाग—स्व० राजकमल चौधरी ।

(नाटक एवं एकांकी)

५१ भूतक छाया—श्री दामोदर झा ।
५२. वचन वैष्णव—स्व० रूपकान्त ठाकुर ।
५३. लगाम ,,
५४. कण्ठहार—श्री व्रजकिशोर वर्मा ।
५५. प्रतिनिधि एकाकी—श्री अमर ।

५६ आत्म मर्यादा—प्रो० कृष्णकान्त मिश्र ।
५७. जय जन्मभूमि—श्री किरण।
५८. अंधेर नगरी—प्रो० प्रबोधनारायण सिंह ।
५९. मभा गावीक बड़द—श्री रामचन्द्र चौधरी ।
६०. अहिल्योद्धार ,, जीवनाथ झा ।

(समालोचना)

६१. मैथिली साहित्य—अजन्ता प्रेस, पटना ।
६२. मैथिली सा० प्रमुख कवि—प्रो० शैलेन्द्र मोहन झा ।
६३. मैथिलीक प्रमुख कवयित्री—डॉ० व्यथित ।
६४ कवि दर्शन ,,
६५. चन्दा झा—डॉ० ललितेश्वर झा ।
६६. विद्यापति काव्य साधना—डॉ० विश्वेमर मिश्र ।
६७. विद्यापति ,,
६८. गद्य पारिजात—प्रो० हितनारायण झा ।

(कोश एवं व्याकरण)

६९. मिथिला भाषा शब्द कोष—श्री दीनबन्धु झा ।
७०. धातु पाठ ,,
७१. मिथिला भाषा विद्योतन ,,
७२. मिथिला भाषा प्रकाश—प्रो० रमानाथ झा ।
७३. व्याकरण प्रबोध—भोलालालदास ।
७४. मैथिली सुबोध व्याकरण—प्रो० बालगोविन्द झा ।
७५. काव्य मीमांसा—भाग-१ श्री जयधारीसिंह ।
७६ ,, भाग-२ ,,
७७. अलंकार दर्पण (अर्थालंकार)—श्री सीताराम झा ।
७८. ,, (शब्दालंकार) ,,
७९. आधुनिक मै० व्याकरण ओ रचना—डॉ० बालगोविन्द झा ।

(निबन्ध)

८०. प्रबन्ध संग्रह—प्रो० रमानाथ झा ।
८१. मैथिली निबन्ध निकुंज—प्रो० परमानन्द झा ।
८२ मै० नव-निबन्धावली ,,
८३. मैथिल विभूति ओ स्मृति पर्व—प्रो० विभाकर ।
८४. मैथिली सा० निबन्धावली—श्री राधाकृष्ण चौधरी ।

(इतिहास)

८५. मैथिली भाषामय इतिहास—श्री मुकुन्द झा बक्सी।

८६. मैथिली सा० इतिहास—प्रो० धीरेन्द्र।

८७. मैथिली आन्दोलन : एक सर्वेक्षण—श्री अमर।

८८. मैथिल सस्कृति ओ सभ्यता (भाग–१, २)—म० म० उमेश मिश्र।

८९. मिथिलाक इतिहास—श्री उपेन्द्र ठाकुर।

९०. मिथिलाक सास्कृतिक लोक-चित्र-कला—श्री लक्ष्मीनाथ झा।

९१. मैथिलीक वर्तमान समस्या—प्रो० रमानाथ झा।

९२. रमानाथ झा अभिनन्दन ग्रन्थ—सम्पादक मण्डल।

प्रमुख पुस्तक विक्रेता—

ग्रन्थालय प्रकाशन, दरभंगा।

परिशिष्ट (२)

जनपदीय भाषाओं की कुछ पत्र-पत्रिकाएँ

(क) १. अंग माधुरी (मा०)—सं०—श्री नरेश पाण्डेय चकोर,
शेखर प्रकाशन, बोरिंग रोड, (पश्चिम) पटना-१

२. अंगिका (त्रै०)—सं०—श्री परमानन्द पाण्डेय।

(ख) १. नागपुरी (मा०) (अस्तंगत)

२ जय झारखंड, सम्पादक—डॉ० विसेश्वर प्र० केशरी, रामेश्वरम्।
पता—नागपुरी प्रकाशन, डालटनगंज (बिहार)।

३. आदिवासी (सा०), सं०—श्री सुशीलकुमार, काँके रोड, राँची।
(आदिवासी में भी रचनाएँ छपती हैं।)

(ग) १. वज्जिका (मा०) अस्तंगत, सं०—श्री श्रीरंग शाही।

२. समाद (सासा०), सं०—श्री देवेन्द्र राकेश, अहल्या प्रकाशन, पताही,
मुजफ्फरपुर।

३ वज्जी भारती (मा०), सं०—श्री चन्द्रमोहन, विष्णुपुर निवास,
आमगोला, मुजफ्फरपुर।

४. सनेस (मा०), स० श्री निर्मल मिलिन्द, बी. पी. एम हाई स्कूल,
बर्मा माइन्स, जमशेदपुर।

५. वज्जिका साहित्य (त्रै०), सं०—रमण शाण्डिल्य,
द्वारा—नेफा कैन्टीन, पो०-आलोंग (७९१००१)
जिला—सियाग (अरुणाचल प्रदेश)

(घ) १ भोजपुरी (सासा०), २. भोजपुरी (त्रै०), ३. भोजपुरी (मा०)
४. गाँव घर (पा०), ५ भोजपुरी समाचार (मासा०), ६. हिलोर (मा०),
७. भोजपुरी समाज (मा०), ८. भोजपुरी साहित्य (मा०), ९. भोजपुरी
वार्ता (पा०), १०. हमार बोल। इन सबों के प्रकाशन स्थगित हैं।

कुछ प्रकाशित हो रही पत्रिकाएँ :—

१. अँजोर (त्रै०), स०—पाण्डेय नर्मदेश्वर सहाय, भोजपुरी परिवार,
पटना-३

२. माटी के बोली (मा०), स—सतीश्वर सहाय वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद,
पता—नवीगंज, छपरा।

३. भोजपुरी कहानियाँ (मा०), सं०—डॉ० स्वामीनाथ सिह, अव–डॉ० रामबली पाण्डेय, भोजपुरी ससद, जगतगंज, वाराणसी।

४. चतुर्मुखी पत्रिका (त्रै०), स०—श्री कुलदीप नारायण राय 'झडप', सिकन्दरपुर, वलिया।

५. भोजपुरी जनपद (मा०), स०—श्री राधामोहन 'राधेश', भोजपुरी साहित्य मन्दिर, २७/९८ जगतगंज, वाराणसी।

६ लुकार (साइक्लोस्टाइल पत्रिका, त्रै०)—जमशेदपुर भोजपुरी साहित्य परिषद्, रोड ए, क्वा. टी/६, शमशेदपुर–४।

७. भोजपुरी लोक साहित्य (त्रै०), स०—श्री कृष्णदेव उपाध्याय एवं श्री राधामोहन 'राधेश'।

८. पुरवैया (त्रै०), स०—श्री रामबली पाण्डेय, भोजपुरी संसद, जगतगज, वाराणसी।

९. ललकार, स०—रामवचन तिवारी, सरायकेला, १४११२-२, रोड न०—१३, अनुमण्डल भोजपुरी साहित्य सम्मेलन आदित्यपुर, जमशेदपुर—१।

(ङ) १. विहान (मा०) स०—डॉ० रामनन्दन, सहायक स०–श्री मुरलीमनोहर बिहार मगही मडल, पटना ५ (बिहार)

२. भोर (मा०)—मगही साहित्य परिषद्, जमशेदपुर।

३. शोध स०—डॉ० श्रीकान्त शास्त्री, डॉ० सरयूप्रसाद।
पता—मगध शोध सस्थान, अम्वेर, विहार शरीफ, पटना।

४. सुजाता (त्रै०)—वावूलाल 'मधुकर', १०५ स्लम, ककडवाग कालनी, पटना—१

(च) **कुछ अस्तंगत पत्र-पत्रिकाएँ—**

१. मैथिल हित साधन, २. मिथिलामोद, ३. मिथिला मिहिर, ४. श्री मैथिली, ५. मिथिला, ६. मिथिला मित्र, ७. मिथिला दर्शन, ८. मिथिला सेवक, ९. पल्लव १०. अभियान।

सम्प्रति प्रकाशित हो रही पत्र-पत्रिकाएँ—

१. मिथिला मिहिर (साप्ता०) स०- श्री सुधाशु शेखर चौधरी, पटना–१

२. टटका—जमशेदपुर।

३. वटुक—एलेन गंज, इलाहावाद (उ० प्र०)।

४. आखर—कलकत्ता।

५. स्वदेश वाणी—देवघर।

६. धियापुता—लोहना, दरभंगा ।

७. नोना माटि (मा०), सं०—भारती भक्त, भारती विलयम्, मुलतानगंज, पटना–६ ।

८. वैदेही—लहेरिया सराय ।

९. मिथिला-दूत—कानपुर ।

१०. मैथिली प्रकाश—कलकत्ता ।

११. मैथिली कविता ,,

१२. मिथिला भारती—बिहार रिसर्च सोसायटी, पटना—१ ।